पेरियार के प्रतिनिधि विचार

Pramod Ranjan

▶ To cite this version:

Pramod Ranjan (Dir.). पेरियार के प्रतिनिधि विचार. 2016, 978-81-932584-6-0. ⟨hal-03754779⟩

HAL Id: hal-03754779

https://hal.science/hal-03754779

Submitted on 19 Sep 2022

HAL is a multi-disciplinary open access archive for the deposit and dissemination of scientific research documents, whether they are published or not. The documents may come from teaching and research institutions in France or abroad, or from public or private research centers.

L'archive ouverte pluridisciplinaire **HAL**, est destinée au dépôt et à la diffusion de documents scientifiques de niveau recherche, publiés ou non, émanant des établissements d'enseignement et de recherche français ou étrangers, des laboratoires publics ou privés.

Distributed under a Creative Commons Attribution - NonCommercial 4.0 International License

पेरियार
के प्रतिनिधि विचार

संपादक

प्रमोद रंजन

पेरियार

के प्रतिनिधि विचार

पेरियार
के प्रतिनिधि विचार

संपादक
प्रमोद रंजन

THE MARGINALISED PUBLICATION

प्रकाशक : **द मार्जिनलाइज्ड**
सानेवाड़ी, वर्धा, महाराष्ट्र - 442001

ई-मेल : **themarginalised@gmail.com**
संपर्क : +91-8130284314

© संपादक

प्रथम संस्करण : 2016
आईएसबीएन : 978-81-932584-6-0
शब्द-संयोजन : राजन कुमार
मुद्रक : क्विक ऑफसेट, दिल्ली - 110032

पेरियार के प्रतिनिधि विचार
संपादक : प्रमोद रंजन

RAMASAMI PERIYAR : PRATINIDHI VICHAR
Edited by Pramod Ranjan

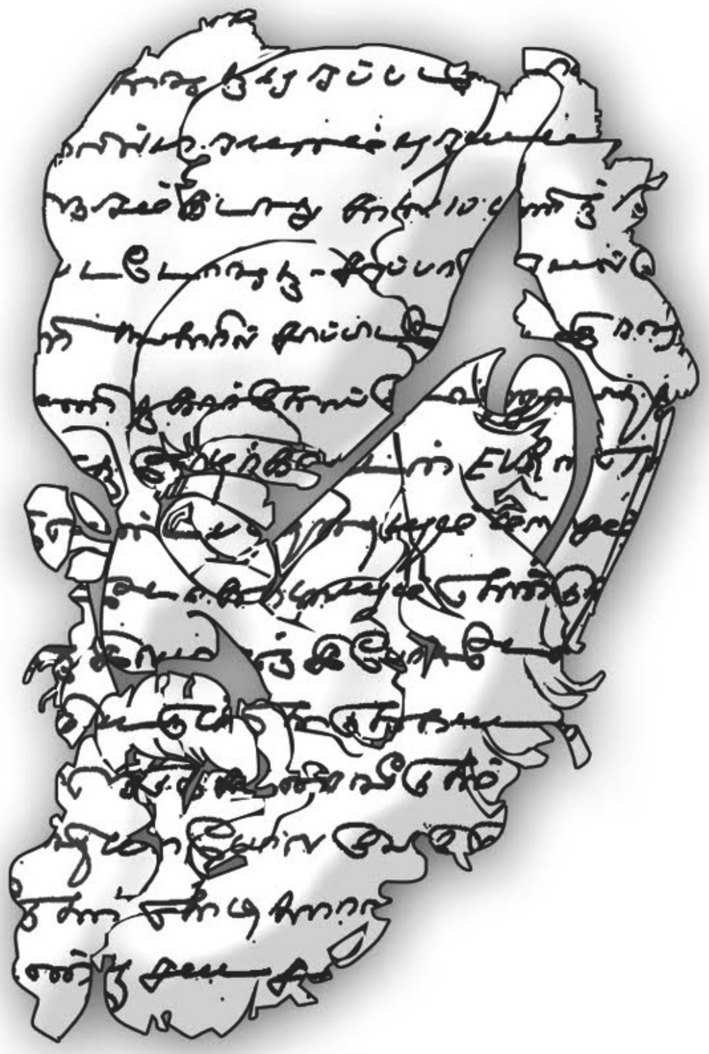

अनुक्रम

भूमिका 9

खण्ड : 1 – पेरियार की संघर्षगाथा

पेरियार : जीवन का वर्षवार लेखा-जोखा 18

पेरियार और आत्मसम्मान आन्दोलन *ब्रजरंजन मणि* 34

महिलाएं उन्हें कहती थीं पेरियार-'महान' *ललिता धारा* 44

सामाजिक परिवर्तन के आंदोलनों में पेरियार का स्थान *टी. थमराईकन्नन* 48

पेरियार की प्रासंगिकता *सत्य सागर* 52

पेरियार की दृष्टि में रामकथा *सुरेश पंडित* 56

खण्ड : 2 – पेरियार : धर्म और जाति पर

ईश्वर का अंत 68

ईश्वर की अवधारणा? 70

जाति 74

ईश्वर के बारे में 78

धर्म के बारे में 82

धर्म की अवधारणा 86

हिंदू धर्म 88

कपटपूर्ण धर्म 92

हिंदुत्व के अत्याचार 96

हिंदुत्व का दर्शन 98

ब्राह्मण धर्म (पवित्रता का धर्म) 100

धर्म 102

क्या शोषित वर्ग हिंदू हैं? 106

अस्पृश्यता 111

शोषित वर्ग के लोग कौन हैं? 114

जाति व्यवस्था 121

जाति के बारे में 123

जाति के दुष्परिणाम 126

जाति व्यवस्था की कार्य पद्धति 128
जाति व्यवस्था का क्षय हो! 132

खण्ड : 3 - पेरियार : दर्शन और समाज सुधार पर
समाज का पुनर्निर्माण 145
दर्शन शास्त्र पर भाषण 151
समाज-सुधार व सामाजिक क्रान्ति 171
जातिवाद और देवी-देवता 184
जाति और चरित्र 189
ब्राह्मणों को आरक्षण से घृणा क्यों? 192

खण्ड : 4 - सच्ची रामायण (संपूर्ण पुस्तक)
भूमिका 199
कथा प्रसंग 201
दशरथ 203
राम 207
सीता 214
लक्ष्मण 220
अन्य जन 222
रावण 227
रामायण काल के मादक पेय पदार्थ 229
राम और सीता के चरित्र 230

अनुवादक-लेखक-परिचय 247

यह किताब

हिंदी क्षेत्र के सामाजिक आंदोलनों व अकादमियों में जो नयी पीढ़ी आयी है, वह 'नास्तिक पेरियार' से परिचित है और उनके प्रति उसमें जबदस्त आकर्षण भी है, लेकिन यह पीढ़ी उनके विचारों के बारे में कुछ सुनी-सुनाई, आधी-अधूरी बातें ही जानती है। उसने वस्तुतः पेरियार को पढ़ा नहीं है।

वर्ष 2011 में दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) के भारतीय भाषा केंद्र से शोध के दौरान मुझे रामासामी पेरियार (17 सितंबर, 1879-24 दिसंबर, 1973) के विचारों को जानने की जरूरत महसूस हुई, लेकिन यह जानकर हैरानी हुई कि 'सच्ची रामायण' के अतिरिक्त उनका कोई भी साहित्य हिंदी में उपलब्ध नहीं है। उसी समय मैंने अपने तमिल सहपाठी मनीवन्नन मुरूगेसन के साथ पेरियार का सारा साहित्य हिंदी में लाने की योजना बनायी। लेकिन समस्या तमिल से हिंदी अनुवादकों की अनुपलब्धता की थी। इसी वजह से योजना आगे नहीं बढ़ सकी।

2014 के मार्च महीने में मनीवन्नन ने बताया कि पेरियार की विचारधारा से जुड़े टी. थमराई कन्नन दिल्ली आए हैं तथा मुझसे मिलना चाहते हैं। उस मुलाकात में कन्नन ने बताया कि वे हमारी द्विभाषी (हिंदी-अंग्रेजी) पत्रिका 'फारवर्ड प्रेस' से परिचित हैं तथा कोयंबतूर (तमिलनाडु) से पेरियार के विचारों पर आधारित एक पत्रिका के प्रकाशन की योजना पर काम कर रहे हैं। अक्टूबर, 2014 में उनके संगठन ने 'कत्तारू' नाम से पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। उन्होंने अक्टूबर, 2015 में अपनी पत्रिका के पहले जन्मोत्सव पर मुझे बतौर मुख्य अतिथि आमंत्रित किया।

उत्तर भारत से जो दलित-बहुजन पत्रिकाएं निकलती हैं, उनमें से अधिकांश के पीछे प्रायः कोई एक व्यक्ति मिशनरी भाव से जुड़ा होता है। कुछ मामलों में तो पत्रिका के माध्यम से स्वनामधन्य हो जाने की ख्वाहिश भी काम कर रही होती है। लेकिन कोयंबतूर में 'कात्तारू' की युवा टीम इससे बिल्कुल अलग थी। 'कात्तारू' के बावर्ची-भिश्ती-खर कन्नन ही थे, लेकिन उसके संपादक के रूप में किसी एक व्यक्ति का

नाम नहीं जाता था। सारा काम 'टीम' की ओर से किया जाता था। सबसे अधिक हैरान करने वाली बात थी, पत्रिका से निकटवर्ती गांवों-कस्बों से परिवारों का जुड़ाव। 'टीम' ने मुझे बताया कि इस पत्रिका से आसपास के गांवों के लगभग 500 परिवार जुड़े हैं। यानी, इन परिवारों का सक्रिय समर्थन इस पत्रिका को हासिल है। सम-सामयिक मुद्दों की इस वैचारिक पत्रिका में कुछ पृष्ठ इन परिवारों में होने वाले जन्म दिन, विवाह व अन्य छोटी-बड़ी उपलब्धियों, शोक समाचार आदि के संक्षिप्त समाचारों व तस्वीरों के लिए सुरक्षित थे। हिंदी की वैचारिक पत्रिकाओं में इस तरह की चीजों के प्रकाशन की कल्पना भी हम नहीं कर सकते। तमिलनाडु में पेरियार के विचारों के प्रभाव के कारण एक नया प्रगतिशील, समावेशी समाज बना है। उन्होंने अपने आंदोलन को महिलाओं से जोड़ने पर बहुत बल दिया था। इसके विपरीत उत्तर भारत में सारे जातिवाद-विरोधी आंदोलन सिर्फ पुरुषों के आंदोलन हैं। जो महिलाएं इन आंदोलनों में हमारे कंधे से कंधा मिला सकती थीं, उन्हें भी हमने विवश कर दिया है कि वे हमारे पुरुषवाद के विरोध में अपना अलग आंदोलन चलाएं। उत्तर भारत का 'दलित स्त्रीवाद' इसी का परिणाम है।

कात्तारु के जन्मोत्सव के दौरान एक बार फिर से योजना बनी कि पेरियार का कुछ साहित्य अंग्रेजी से ही अनूदित कर हिंदी में प्रकाशित किया जाए और हम तमिल साथियों के सहयोग से अनुवाद को मूल के अधिकाधिक निकट लाने की कोशिश करें। कन्नन ने मुझे कुछ ही समय बाद पांडिचेरी विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक टी. मार्क्स द्वारा अंग्रेजी में अनुदित पेरियार के लेखों व भाषणों का संग्रह 'ऑन कास्ट एंड रीलिजन' की पांडुलिपि हिंदी अनुवाद के लिए उपलब्ध करवा दी। इस किताब के **दूसरे खंड** में वह पूरी किताब संकलित है। इनके प्रकाशन की अनुमति देने के लिए हम टी. मार्क्स के आभारी हैं।

इस किताब के **तीसरे खंड** की सामग्री चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु (1874-11 मई 1952) द्वारा प्रकाशित किताब 'पेरियार ई.वी रामास्वामी नायकर' से ली गयी है। मुख्य रूप से अति पिछड़ी जातियों के बीच सांस्कृतिक-सामाजिक जागरण का आंदोलन चलाने वाले स्वामी बोधानंद (1879-1933) के शिष्य चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने लखनऊ में 'समाज सेवा प्रेस' की स्थापना की थी तथा वहां से दलित-पिछड़ों से संबंधित अनेक पुस्तक-पुस्तिकाओं का प्रकाशन 'बहुजन कल्याण माला' के अंतर्गत किया था। इस माला की 61वीं कड़ी के रूप में उपरोक्त किताब का प्रकाशन किया गया था। पेरियार 1968 में लखनऊ आए थे। जिज्ञासु जी ने किताब के 'प्रकाशकीय' में उनके आगमन का जिक्र करते हुए बताया है कि 'दो साल से अधिक हो गया जब वयोवृद्ध महापुरुष पेरियार ई वी रामास्वामी मॉइनारटीज कांफ्रेंस में लखनऊ आए थे और उनके दो भाषण हुए थे। उस समय तीन पुस्तकें अंग्रेजी में प्रसारित हुई थीं।... इन पुस्तकों को हजारों की संख्या में अंग्रेजी पढ़ी जनता ने खरीदा

था। तभी से हिंदी भाषी जनता का अनुरोध था कि राष्ट्रभाषा हिंदी में इन पुस्तकों का अनुवाद प्रकाशित हो।' वे पेरियार के लेख व भाषण थे, जिन्हें जिज्ञासु जी ने यहां 'अंग्रेजी पुस्तकें' कहा है। 1970 में इन लेखों और भाषणों को उन्होंने पुस्तकाकार प्रकाशित किया।

दयाराम जैन द्वारा अनूदित 132 पेज की यह किताब हिंदी में 'सच्ची रामायण' के अतिरिक्त पेरियार के मूल लेखन की एकमात्र प्रकाशित किताब है। जिज्ञासु जी द्वारा प्रकाशित अन्य पुस्तक-पुस्तिकाओं की भांति ही यह किताब भी पिछले 30-35 वर्षों से अनुपलब्ध है। इसकी एक प्रति 'चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु ग्रंथावली' पर काम कर रहे कंवल भारती जी के पास थी। यहां हमने उसमें से कुछ चुनी हुई सामग्री ली है। इस खंड में 'ब्राह्मणों को आरक्षण से घृणा क्यों' शीर्षक लेख अन्यत्र उपलब्ध अंग्रेजी पेरियार वांग्मय से लिया गया है।

चौथे खंड में 'द रामायणः अ टू रीडिंग' का अनुवाद संकलित है। 1959 में अंग्रेजी में प्रकाशित हुई इस किताब का हिंदी अनुवाद 'सच्ची रामायण' शीर्षक से किन्हीं रामाधार ने किया था, जो 1968 में प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशक थे अर्जक संघ से जुड़े रहे ललई सिंह यादव। दिसंबर, 1969 में उत्तर प्रदेश सरकार ने इसे हिंदुओं की धार्मिक भावनाओं को आहत करने का आरोप लगाकर प्रतिबंधित कर दिया और इसकी सभी प्रतियां जब्त कर ली। ललई सिंह यादव ने इसके खिलाफ लंबी न्यायिक लड़ाई लड़ी। सुप्रीम कोर्ट ने 16 सितंबर, 1976 के अपने फैसले में इस किताब पर प्रतिबंध को गलत बताया एवं जब्त की गयीं प्रतियां ललई सिंह को लौटाने के निर्देश दिये। लेकिन कोर्ट के आदेश के बावजूद उत्तर प्रदेश सरकार ने 'सच्ची रामायण' से 1995 तक प्रतिबंध नहीं हटाया। 1995 में प्रदेश में पेरियार को अपने प्रमुख आदर्शों में गिनने वाले कांशीराम की बहुजन समाज पार्टी (बसपा) सत्ता में आई, तब जाकर इससे प्रतिबंध हटा। इसके बावजूद आजतक इस चर्चित किताब को प्रकाशित करने का साहस किसी भी प्रमुख प्रकाशक ने नहीं दिखाया।

इसका कारण शायद यह रहा कि उत्तर भारत की दक्षिणपंथी ताकतें पेरियार का भीषण विरोध करती रही हैं। मसलन 2007 में 'सच्ची रामायण' का एक बार फिर विरोध हुआ था। उस समय बसपा उत्तर प्रदेश की सत्ता में थी और मायावती मुख्यमंत्री थीं। विपक्षी दल भारतीय जनता पार्टी ने अक्टूबर, 2007 में अपने प्रादेशिक पदाधिकारियों की एक बैठक में 'सच्ची रामायण' को फिर से प्रतिबंधित करने की मांग की तथा आरोप लगाया कि सरकार के सहयोग से बहुजन समाज पार्टी 'सच्ची रामायण' का प्रचार-प्रसार कर रही है तथा बड़े पैमाने पर इसकी बिक्री की जा रही है। उस समय विधानसभा का सत्र चल रहा था। इसलिए यह मामला मीडिया में भी खूब गूंजा। भाजपा विधानमंडल दल के नेता ओमप्रकाश सिंह का कहना था कि 'हिंदू देवी-देवताओं के विरोधी तथा द्रविड़िस्तान की मांग करने वाले अलगावादी' पेरियार रामासामी की 'सरकार

निंदा करे तथा उन्हें महापुरुषों की श्रेणी में न माने'।[1] तत्कालीन मुख्यमंत्री मायावती ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि ''बसपा तथा सरकार का पेरियार की सच्ची रामायण की बिक्री से कोई लेना-देना नहीं है। भाजपा मामले का राजनीतिकरण कर रही है।''[2]

भाजपा के विरोध और बसपा द्वारा पेरियार से रणनीतिक दूरी बना लेने की इस घटना का एक बेहद रोचक पक्ष भी था, जिसे इंडियन एक्सप्रेस की पत्रकार अलका पांडे सामने लेकर आयीं थीं। उन्होंने 7 नवंबर, 2007 को प्रकाशित अपनी रिपोर्ट के लिए पड़ताल करते हुए पाया कि जिस सच्ची रामायण के लिए भाजपा और बसपा एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप कर रहे थे, 'उसकी प्रति न भाजपा के पास उपलब्ध थी, न ही बसपा के पास। बसपा का सारा साहित्य बेचने वाले 'बहुजन चेतना मंडप' के पास भी यह किताब उपलब्ध नहीं थी।' भाजपा इस दौरान कई जगहों पर 'सच्ची रामायण' के दहन का आयोजन कर रही थी, लेकिन 'जलाने के लिए भी पार्टी के पास किताब की मूल प्रति नहीं थीं। जिसका दहन किया वह किताब के कथित आपत्तिजनक अंशों की फोटोकॉपी थी।' हालांकि भाजपा के तत्कालीन प्रदेश अध्यक्ष रामपति राम त्रिपाठी का कहना था कि 'मामला चर्चा में आने के बाद बसपा ने अपने स्टॉलों से किताब हटा दी है।' लेकिन सुश्री पांडेय ने अपनी पड़ताल में पाया कि 'सिर्फ बसपा से जुड़े स्टॉलों पर ही नहीं बल्कि पूरे लखनऊ में किसी भी दुकान पर सच्ची रामायण उपलब्ध नहीं है।' लखनऊ के सबसे बड़े पुस्तक विक्रेता 'यूनिवर्सल बुक सेलर' ने उन्हें बताया कि 'सच्ची रामायण' कभी भी बिक्री के लिए उपलब्ध ही नहीं थी।[3]

वास्तव में 'बैकवर्ड एंड मॉइनारिटी कम्युनिटीज एम्पलॉइज फेडरेशन' (बामसेफ) से जुड़े 'मूलनिवासी प्रचार-प्रसार केंद्र' तथा 'आंबेडकर प्रचार समिति' आदि ने सच्ची रामायण की लाखों प्रतियां अपने कम शिक्षित समर्थकों-कार्यकर्ताओं के बीच वितरित कीं थीं, लेकिन इसकी पहुंच न तो विश्वविद्यालयों तक हो सकी थी, न ही उन दुकानों तक, जहां कथित 'मुख्यधारा' की किताबें पढ़ने वाले लोग जाते हैं।

पेरियार के विचारों के बारे में जो कुछ भी जानकारी हिंदी के वाम-बहुजन बौद्धिक जगत के पास है, उसके आधार पर इस तबके में उन्हें लेकर एक अजीब सी असमंजस की स्थिति है। इनके बीच उनके जातिवाद-विरोधी विचारों को तो प्रायः स्वीकार्यता हासिल है, लेकिन उनके हिंदी विरोध तथा भारत से द्रविड़िस्तान को अलग करने की मांग को वे उदार मन से नहीं देख पाते। लेकिन हमें समझना चाहिए कि ये मांगें सिर्फ द्रविड़ अस्मिता से नहीं जुड़ी थीं बल्कि उस समय इनका बहुत ठोस भौतिक आधार था। आज हम देख सकते हैं कि पेरियार द्वारा शुरु किए गए विमर्शों के दबाव के कारण दक्षिण और उत्तर भारत के बीच समन्वय की स्थिति बनी है।

संपूर्ण भारत के लिए पेरियार के अवदान को समझने के लिए इस पुस्तक के

पहले खंड में ब्रजरंजन मणि, ललिता धारा, टी थमराई कन्नन, सत्य सागर और सुरेश पंडित के लेख संकलित किये गये हैं। ब्रजरंजन मणि का लेख उनकी किताब 'डीब्राह्मनाइजिंग हिस्ट्री' में संकलित है, जबकि 'पेरियार एंड वीमेन क्वेश्चन' की लेखक ललिता धारा का लेख 'महिलाएं उन्हें कहती थीं पेरियार - महान', थमराई कन्नन का लेख 'सामाजिक परिवर्तन के आंदोलनों में पेरियार का स्थान', व पत्रकार सत्य सागर का लेख 'पेरियार की प्रासंगिकता' फारवर्ड प्रेस से लिया गया है। दिवंगत सुरेश पंडित का लेख 'पेरियार की दृष्टि में रामकथा' मेरे व प्रेमकुमार मणि के संपादन में पटना से प्रकाशित पत्रिका 'जन विकल्प' के नवंबर, 2007 अंक में प्रकाशित हुआ था।

इस किताब के लिए कुछ लेखों का अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद पूजा सिंह, संजय जोठे व अमरीश हरदेनिया ने किया है। इसके अतिरिक्त 'स्त्रीकाल' के संपादक व 'द मार्जिनलाइज्ड प्रकाशन' के निदेशक मित्र संजीव चंदन व ऑल इंडिया बैकवर्ड स्टूडेंट्स फोरम, जेएनयू के संस्थापक-संयोजक अरुण कुमार तथा ग्राफिक डिजाइनर राजन कुमार ने इसे तैयार करने में जो श्रम किया है, उसके लिए आभार जैसा शब्द छोटा पड़ेगा।

उम्मीद करता हूं कि इन मित्रों के सहयोग से तैयार यह पुस्तक हिंदी पाठकों के लिए उपयोगी साबित होगी।

– प्रमोद रंजन

1. वार्ता, 25 अक्टूबर 2007
2. **ttp://news.webindia123.com/,** 26 अक्टूबर, 2007
3. इंडियन एक्सप्रेस 07 नवंबर, 2007

खण्ड - 1

पेरियार की संघर्षगाथा

पेरियार इरोड वेंकट रामासामी का युवा अवस्था का चित्र। समाज परिवर्तन के आंदोलन में उतरने से पूर्व तक वे एक बड़े व्यवसायी थे।

पेरियार : जीवन का वर्षवार लेखा-जोखा

मैं कौन हूं?

मेरा परिवार एक रुढ़िवादी परिवार है। इसने मंदिर और सराय बनवाने तथा भूखों को भोजन उपलब्ध कराने आदि का उपाय किया। परिवार के सदस्यों ने ऐसे परोपकारी कार्यों के लिए खुलकर दान भी दिया। एक ऐसे परिवार में पैदा होने के बावजूद कई लोग मुझे क्रांतिकारी और चरमपंथी कहते हैं। उनके इस विचार के पीछे कारण यह है कि मैं अपने समाज के कुछ ऐसे पहलुओं पर चोट करता हूं जो हमें नीचा दिखाते हैं। मेरा जोर इस बात पर है कि जब तक हमारा भरोसा हिंदू धर्म, हिंदू देवताओं, हिंदू शास्त्रों, पुराणों, वेदों और इसके इतिहास में है और जब तक हम इनका अनुसरण करते हैं तब तक हमारा दमन और शोषण जारी रहेगा और हम समाज की इन असमान स्थितियों से कभी उबर नहीं पाएंगे। ऐसी सड़ी हुई स्थिति से बाहर निकलने के बजाय जो केवल इनका पालन करने में लगा रहेगा भले ही वह कितनी भी बेहतर स्थिति में आ जाए, वह खुद को इस अवनति से उबार नहीं पाएगा। मेरा कहना केवल यह है कि हर वह व्यक्ति जो खुद को सुधारवादी कहता है, उसे यह समझना ही चाहिए।

(कानपुर में दिए भाषणों से 29-30-31-12-1944,
रिपब्लिक 19.1.1945)

मैंने यानी ई.वी. रामासामी ने द्रविड़ समाज के सुधार का काम अपने हाथों में लिया है और मैं इसे आत्मसम्मान और गौरव से भरे हुए समाज में बदलना चाहता हूं। मैं इस काम में पूरी तरह जुटा हुआ हूं बल्कि इसके प्रति पूर्ण समर्पित हूं। मुझमें यह सेवा करने की काबिलियत है अथवा नहीं यह बात दीगर है क्योंकि कोई और यह काम करने के लिए आगे नहीं आ रहा है। इसलिए मैं इसे करने के लिए वचनबद्ध हूं।

मेरा इसके अतिरिक्त कोई अन्य लाभ नहीं है। मैं अपनी नीतियां और योजनाएं तार्किक ढंग से तैयार करता हूं। मुझे लगता है कि मुझमें यह करने की क्षमता है। अगर कोई समाज की सेवा करना चाहता है तो इतना पर्याप्त है।

(स्रोतः पांडुलिपि)

1879 (17 सितंबर)– तमिलनाडु के इरोड कस्बे में पेरियार ई वी रामासामी का जन्म हुआ। पिता का नाम वेंकट नाइकर था जो एक लोकप्रिय व्यापारी थे जबकि मां चिन्ना थयम्मल उर्फ मुथम्मल।

1898

तेरह वर्षीया नगम्मल से विवाह। उन्होंने अपनी रूढ़िवादी पत्नी के मस्तिष्क में तार्किक विचारों के बीज बोये।

1904

वह गंगा नदी के तट पर स्थित प्रसिद्ध हिंदू तीर्थ स्थल काशी (वाराणसी) पहुंचे। वहां उनको धर्मशालाओं आदि में निःशुल्क भोजन नहीं मिल सका। पता चला कि यह सुविधा केवल ब्राह्मणों के लिये है, जबकि शेष हिंदू जातियां इससे वंचित हैं।

कुछ दिनों तक भूखे रहने के बाद इस खूबसूरत युवा ने ब्राह्मण का वेश धारण किया, कंधे पर एक यज्ञोपवीत डाला और धर्मशाला में भोजन करने जा पहुंचा। लेकिन उसकी मूछों ने उसे धोखा दे दिया। द्वारपाल ने न केवल उसे प्रवेश करने से रोक दिया बल्कि उन्हें बहुत बेरुखी से सडक़ पर धकेल दिया।

उस वक्त चूंकि भीतर भोज समाप्त हो गया था तो, खाने के जूठे पत्तल सडक़ पर फेंक दिए गए। कई दिनों की भूख से तड़प रहे रामासामी ने मजबूर होकर गली में पड़े जूठे पत्तलों से बचाखुचा खाना खाया। इस दौरान तमाम कुत्ते भी उनके साथ वही पत्तल खा रहे थे।

खाना खाते समय रामसामी की नजर सामने की दीवार पर उकेरे गए कुछ शब्दों पर पड़ी। वहां लिखा था कि उक्त धर्मशाला खासतौर पर सर्वोच्च वर्ण यानी ब्राह्मणों के लिए है। इस धर्मशाला का निर्माण तमिलनाडु के द्रविड़ वर्ण के एक अमीर व्यापारी ने करवाया था। अचानक रामासामी के मन में कुछ प्रश्न पैदा हुए। मसलन - 'जब यह धर्मशाला एक द्रविड़ व्यापारी की बनवायी हुई है तो ब्राह्मण अन्य द्रविड़ों को यहां भोजन करने से भला कैसे रोक सकते हैं? आखिर क्यों ब्राह्मण इतना क्रूर व्यवहार करते हैं कि वे द्रविड़ समेत अन्य समुदायों को भूखा मारने तक में गुरेज नहीं करते? उनकी यह जाति व्यवस्था लोगों की जान तक ले लेती है?'

उक्त प्रश्नों पर पेरियार की शंका के समाधान के लिए कोई उचित उत्तर नहीं मिल सका।

काशी में ब्राह्मणों की वजह से हुए अपमान ने पेरियार के हृदय में गहरे जख्म कर दिए। इसकी वजह से उनके मन में आर्य नस्ल तथा उसके असंख्य देवी देवताओं के प्रति गहरी घृणा पैदा कर दी।

यद्यपि काशी को ब्राह्मण सर्वाधिक पवित्र शहर मानते हैं, लेकिन यहां अनैतिक

गतिविधियां, वेश्यावृत्ति, धोखाधड़ी, लूट, भीख मांगने जैसी घटनाएं इतनी ज्यादा थीं कि पेरियार का इस तथाकथित पवित्र शहर से पूरी तरह मोह भंग हो गया। परिणामस्वरूप कुछ समय बाद अपने संन्यास पर पुनर्विचार कर वे दोबारा गृहस्थ जीवन की जानिब लौट गए। इरोड वापसी पर उनके पिता ने अपना पूरा कारोबार अपने इस दूसरे पुत्र को सौंप दिया। उन्होंने अपने सबसे बड़े व्यापारिक प्रतिष्ठान का नाम रखा : ई वी रामासामी नायकर मंडी।

1905 और उसके बाद

निःस्वार्थ समाज सेवा - ईवीआर इरोड के जानेमाने उद्योगपति तो थे ही, इसके अलावा उन्होंने निःस्वार्थ समाज सेवा करते हुए भी सार्वजनिक जीवन में अपना स्थान बनाया। एक उल्लेखनीय घटना इस प्रकार है - एक बार इरोड में प्लेग की घातक और संक्रामक बीमारी फैली। सैकड़ों लोग मारे गये और हजारों लोग अपनी जान बचाने के लिये वहां से भाग खड़े हुए। लेकिन ईवीआर ने अन्य अमीर व्यापारियों की तर्ज पर अपनी जन्मभूमि नहीं छोड़ी। प्लेग के संक्रमण से भयभीत संतानों और करीबियों द्वारा त्याग दिए जाने पर उन्होंने खुद शवों को श्मशान पहुंचाया ताकि उनका अंतिम संस्कार हो सके।

इरोड के 'बाजार स्ट्रीट' के व्यापारियों पर उनका जबरदस्त प्रभाव था। उन्होंने अपनी निष्पक्षता और सही निर्णय लेने की क्षमता की मदद से व्यापारियों के कई विवाद सुलझाये।

अपनी युवावस्था में वे तमिल विद्वान पंडितमणि अयोतिदसार से प्रभावित थे, जिन्होंने तार्किक और बौद्ध सिद्धांतों की मदद से जाति व्यवस्था और ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म की जमकर आलोचना की।

हिंदू धर्म और उसमें शामिल जाति व्यवस्था खासतौर पर द्रविड़ नस्ल के दमन के लिये ब्राह्मणों द्वारा ईजाद की गई अस्पृश्यता की क्रूरता के प्रति अपनी तमाम नफरत के बावजूद अपनी ईमानदारी और काम करने की अपनी क्षमता के कारण ईवीआर को कई सरकारी संस्थानों में माननीय पदों पर काम करने का अवसर मिला।

ब्रिटिश सरकार ने पेरियार को मानद मजिस्ट्रेट भी बनाया था। इसके अलावा जिला बोर्ड, तालुक बोर्ड, शहरी बैंक, देवस्थानम, शासकीय पुस्तकालय, युद्ध भर्ती समिति, कृषिविदों के संघ, व्यापारी संघ, महाजन स्कूल समिति समेत करीब 29 सरकारी संस्थानों में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव जैसे पद संभालने का अवसर मिला।

1918

वह इरोड नगरपालिका के चेयरमैन बने। उन्होंने कई प्रभावशाली कल्याण

योजनाओं को लागू किया। खासतौर पर पेयजल योजना को कुशलतापूर्वक क्रियान्वित किया गया। जिस समय पेरियार इरोड नगरपालिका के चेयरमैन थे, उस दौर में उनके और चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के बीच मित्रता हुई जो बाद में भारत के गवर्नर जनरल बने।

1919

श्री वरदराजुलु नायडू और श्री सी राजगोपालाचारियार ने पेरियार पर दबाव डाला कि वे महात्मा गांधी के नेतृत्त्व वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो जायें। आखिरकार पेरियार ने इरोड नगरपालिका के चेयरमैन पद से इस्तीफा दिया और वह पार्टी के सदस्य बन गये।

1920

उन्होंने 'महात्मा' गांधी द्वारा ब्रिटिश शासन के विरुद्ध शुरू किए गए असहयोग आंदोलन में जमकर भागीदारी की। महात्मा गांधी के आह्वान पर उन्होंने सभी 29 सार्वजनिक पदों से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने उस पारिवारिक कारोबार तक को बंद कर दिया जो उन दिनों भी सालाना 20,000 रुपये की आय दे रहा था। यह वह समय था जब एक स्वर्ण मुद्रा का मूल्य 10 रुपये से अधिक नहीं था। उन्होंने इरोड में पहली बार लगी धारा 144 का उल्लंघन किया और दुकानों के बाहर धरना देने के कारण गिरफ्तार किए गए। पेरियार ने गांधी को अपना नेता स्वीकार किया और उन पर भरोसा किया। इस तरह एक सच्चे अनुयाई के रूप में वह गांधी के कहे हर शब्द का पालन करते थे।

ऐसा ही एक उदारहण है हाथ से खादी का कपड़ा बुनना। जैसे ही गांधी की ओर से खादी के कपड़े पहनने का निर्देश जारी हुआ, पेरियार ने तत्काल अपने महंगे विदेशी वस्त्र त्याग दिए और खादी पहनना शुरू कर दिया। इतना ही नहीं उन्होंने अपने परिवार के सभी सदस्यों को भी केवल खादी पहनने पर मजबूर किया, जिनमें उनकी 80 वर्ष की मां भी शामिल थीं। जीवन के अब तक के सुखों को त्यागकर उन्होंने हर पहलू में सादगी को अपना लिया।

1920

शराबबंदी की नीति पर पहली बार पेरियार के घर पर ही विचार किया गया था। जब गांधी इरोड आए और उनके आवास पर रुके तो उनकी पत्नी नागाम्मल और उनकी बहन कन्नम्मल ने उन्हें बताया कि कैसे शराब पीने वाले लोग अपनी पत्नियों को बुरी तरह प्रताड़ित करते हैं। इन महिलाओं ने काफी जोर दिया कि शराबबंदी की नीति तैयार की जानी चाहिए। उन्होंने इस संबंध में एक विरोध प्रदर्शन शुरू

करने का अनुरोध भी किया।

गांधी ने इस उपयोगी सलाह को एक बार में ही स्वीकार कर लिया। उन्होंने घोषणा की कि कांग्रेस पार्टी के लोगों को देश भर में ताड़ी की दुकानों के सामने प्रदर्शन करना चाहिए और ब्रिटिश सरकार से यह मांग करनी चाहिए कि वह शराबबंदी लागू करे। गांधी ने शराबबंदी को लेकर जो निर्देश दिए उनका पालन करते हुए पेरियार ने अपने विशाल प्रांगण में से ताड़ के 500 वृक्ष कटवा दिए या उखड़वा दिए। इनसे ताड़ी निकाली जाती थी। यह उनकी प्रतिबद्धता की एक बानगी भर है।

1921

इरोड में पेरियार ने प्रदर्शनकर्ताओं का नेतृत्व किया और ताड़ी की दुकान के सामने धरना दिया। उनको गिरफ्तार किया गया और एक महीने की कैद की सजा सुनाई गई।

1922

उनकी पत्नी नागाम्मल और बहन कन्नम्मल भी बहादुरीपूर्वक इस आंदोलन में शामिल हो गयीं और उन्होंने शराब की दुकानों के सामने धरना प्रदर्शन करने वाली महिलाओं का नेतृत्त्व किया।

जब कांग्रेस की शीर्ष पंक्ति के कुछ नेताओं ने महात्मा गांधी से प्रदर्शन रोकने का आग्रह किया तो उन्होंने गंभीरतापूर्वक कहा कि यह फैसला लेना उनके हाथ में नहीं है बल्कि इरोड की दो महिलाओं के हाथ में है। उनका इशारा पेरियार की पत्नी और बहन की ओर था।

उसके बाद पेरियार, तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष बन गए। तिरुपपुर में आयोजित पार्टी के प्रांतीय सम्मेलन में उन्होंने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें कहा गया था कि द्रविड़ नस्ल के सभी 'अस्पृश्यों' को पूजा अर्चना के लिए मंदिर प्रवेश की इजाजत होनी चाहिए। लेकिन कांग्रेस कमेटी के ब्राह्मणों ने इस प्रस्ताव को पारित करने पर आपत्ति जताई। जाति की इस समस्या से नाराज पेरियार ने घोषणा की कि वे 'मनुस्मृति' और 'रामायण' आदि पुस्तकों को जलायेंगे क्योंकि इन पुस्तकों का प्रयोग कुटिल ब्राह्मणों द्वारा अपने धार्मिक हथियार के तौर पर किया जाता है। इन हथियारों की मदद से वे द्रविड़ नस्ल के लोगों को जाति और अंधविश्वास के जरिए दबाने का काम करते हैं।

1923

पंगल के राजा की अध्यक्षता वाली जस्टिस पार्टी की सरकार ने मद्रास राज्य विधायी परिषद में एक अधिनियम पारित किया। इस कानून के तहत हिंदू धार्मिक

बंदोबस्ती बोर्ड बनाया जाना था ताकि हिंदू मंदिरों में ब्राह्मणों द्वारा किया जाने वाला शोषण समाप्त किया जा सके।

हालांकि पेरियार कांग्रेस के नेता थे लेकिन फिर भी उन्होंने जस्टिस पार्टी सरकार के कानून का समर्थन किया। इसलिए क्योंकि वह सामाजिक न्याय के पक्षधर थे और हिंदू आर्यों द्वारा प्रताड़ित द्रविड़ नस्ल के शिक्षा, रोजगार और आर्थिक अधिकारों को लेकर खासे चिंतित रहा करते थे।

1924 सामाजिक न्याय के योद्धा

पेरियार ने जस्टिस पार्टी सरकार के उन प्रयासों की सराहना की जिनके तहत वह शिक्षा और रोजगार के लिए सरकारी आदेश के जरिए सांप्रदायिक आधार पर आरक्षण चाह रही थी। ब्राह्मण अस्पृश्यता जैसी क्रूर व्यवस्था का प्रयोग आदि द्रविड़ों के दमन के लिए करते आए थे। पेरियार ने इस व्यवस्था को खत्म करने के लिए केरल के वायकॉम कस्बे में विरोध प्रदर्शन का आयोजन किया। ऐसा उन्होंने सरकार के कायदे की अवमानना करते हुए किया था।

वायकॉम एक धार्मिक शहर था लेकिन वहां एजवा समुदाय समेत किसी भी निचले तबके के व्यक्ति को मंदिर के आसपास की गलियों में चलने तक की इजाजत नहीं थी। कांग्रेस पार्टी के लोगों ने इसके खिलाफ सत्याग्रह का आयोजन किया।

उन्होंने पेरियार से अनुरोध किया कि वे तमिलनाडु से आएं और इस सत्याग्रह का नेतृत्व संभालें। पेरियार ने ऐसा ही किया। उनको गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। इस मामले में उनको दो बार जेल की सजा हुई। दूसरी बार उनको छह महीने की सजा सुनाई गई। सत्याग्रह पूरे एक साल चला। इसके बाद इन गलियों को अस्पृश्यों के लिए खोल दिया गया।

यह सामाजिक बलिदान की और मानव अधिकारों की एक साहसिक लड़ाई थी जिसमें जीत मिली। पेरियार को वायकॉम के नायक की उपाधि से नवाजा गया।

11 सितंबर 1924

पेरियार को पहले भी खादी के कपड़ों की वकालत और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के लिए जेल की सजा हुई थी। तिरुवनवेली के निकट चेरनमाधवी में स्थित राष्ट्रीय प्रशिक्षण विद्यालय 'गुरुकुलम' के छात्रावास ब्राह्मण प्रभारी वीवीएस अय्यर ब्राह्मण एवं गैर ब्राह्मण छात्रों में भेद किया करते थे। हालांकि इस संस्थान को तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी और द्रविड़ परोपकारी उद्यमियों की ओर से वित्तीय सहायता मिलती थी। ब्राह्मण छात्रों को लेकर अय्यर के जातिवादी रुझान और इसकी वजह से द्रविड़ छात्रों को होने वाली दिक्कतों से पेरियार अत्यंत क्रोधित हुए। अंततः इस सम्मानवतावादी नेता ने तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी के सचिव पद से

त्यागपत्र दे दिया।

इसके बाद पेरियार को तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष बना दिया गया। उन्होंने नवंबर 1924 में तिरुवनमलाई में आयोजित कांग्रेस के प्रांतीय अधिवेशन में यह पद ग्रहण किया। वर्ष 1920 के बाद से वह लगातार कांग्रेस के सम्मेलनों में ऐसे प्रस्ताव पेश कर रहे थे जिनमें सरकारी नौकरियों और शिक्षा के क्षेत्र में गैर ब्राह्मणों (द्रविड़ों) को आरक्षण देने की मांग की जा रही थी। उनकी कोशिश थी कि इस तबके के लोगों को जीवन के हर क्षेत्र में उच्च पदों पर लाया जा सके और वे ब्राह्मणों से समानता हासिल कर सकें।

इसी तरह उन्होंने तिरुवन्नमलई कांग्रेस सम्मेलन में भी समान प्रस्ताव रखा लेकिन ब्राह्मणों ने उसे पारित नहीं होने दिया। इससे पहले तिरुवनवेली (1920), तंजावुर (1921), तीरुपुर (1922) और सलेम (1923) में ऐसा हो चुका था।

सलेम में एक सार्वजनिक आयोजन में बोलते हुए पेरियार ने चेतावनी दी थी कि जब तक ब्रिटिश शासन में गैर ब्राह्मणों को सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व नहीं मिल जाता है तब तक ब्राह्मणों का वर्चस्व समाप्त नहीं होगा और द्रविड़ नस्ल को यूं ही ब्राह्मनोक्रेसी यानी ब्राह्मणवाद के बोझ तले दबे रहना होगा (द हिंदू शताब्दी विशेष पृष्ठ क्रमांक 337)। इस तरह उन्होंने एक नया शब्द भी गढ़ा।

2 मई 1925

पेरियार 'कुडी अरासू' नाम से एक तमिल साप्ताहिक का प्रकाशन किया करते थे, जिसके संपादन का भार भी उन्हीं पर था। इसका उद्देश्य था द्रविड़ समुदाय के लोगों को ब्राह्मणों की क्रूर जाति व्यवस्था और हिंदू धर्म के अंधविश्वासों के कारण होने वाले दमन के प्रति जागरूक करना और उनमें आत्मसम्मान का भाव पैदा करना।

कुडी अरासु का पहला अंक तमिल भाषा के जाने माने धार्मिक विद्वान एवं प्रख्यात वक्ता तरुप्पितिरपिलयार ज्ञिनयार स्वामीगल ने जारी किया।

नवंबर 1925

एक बार फिर कांचीपुरम में कांग्रेस सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसकी अध्यक्षता महान तमिल लेखक, संपादक, वक्ता और मजदूर नेता तीरु वी कल्याण सुंदरनार (टीवीकेएस) कर रहे थे। पेरियार ने यहां भी गैर ब्राह्मणों को सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने को लेकर प्रस्ताव पेश किया। हमेशा की तरह धूर्त ब्राह्मणों ने उसे पारित नहीं होने दिया। इस बात से नाराज पेरियार ने कांग्रेस पार्टी और उस पदानुक्रम का त्याग कर दिया जिस पर पूरी तरह ब्राह्मणों का कब्जा और दबदबा था।

कांग्रेस से नाता तोड़ते वक्त पेरियार ने जोरदार ढंग से कहा कि उनका भविष्य का काम होगा पार्टी में हर तरीके से ब्राह्मण राज को खत्म करना। सम्मेलन से उनके हटते ही पार्टी में प्रथम पंक्ति के तमाम नेता और स्वयंसेवक भी उनके साथ पार्टी छोड़कर चले गए। उसी कांचीपुरम कस्बे में पेरियार ने गैर ब्राह्मणों का एक समांतर सम्मेलन आयोजित किया। अपने भाषण में उन्होंने कहा कि द्रविड़ों और आर्यों (ब्राह्मणों) के बीच नस्ली पहचान का अंतर हमेशा से बल्कि पुरातन काल से रहा है और कांग्रेस पार्टी में इसकी मौजूदगी से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। इसलिए उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि द्रविड़ लोगों को अपनी नस्ल के आत्मसम्मान, अपनी भाषा और अपनी उस संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए जिसे ब्राह्मणों के रसूख, उनकी जाति व्यवस्था और हिंदू धर्म के अंधविश्वास ने कमतर कर दिया है।

पेरियार ने सन 1925 में कांग्रेस पार्टी से बाहर निकलने के बाद आत्म सम्मान आंदोलन की शुरुआत की।

1926

उन्होंने तमिलनाडु में तथा कई अन्य स्थानों पर गैर ब्राह्मण सम्मेलनों में हिस्सा लिया और अपने आत्मसम्मान अभियान के सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार किया। उनकी कोशिश थी द्रविड़ नस्ल को जागरूक करने की ताकि उनको ब्राह्मणों की दासता से मुक्त किया जा सके।

1927

पेरियार ने बंगलूरू में कांग्रेस नेता मोहनदास करमचंद गांधी से मुलाकात की और उनसे जोर देकर कहा कि जब तक जहरफली जाति व्यवस्था यानी वर्णाश्रम धर्म को खत्म नहीं किया जाता है, तब तक ब्राह्मणों द्वारा जबरदस्त तरीके से व्यवहार में लाई जाने वाली 'अस्पृश्यता' को खत्म नहीं किया जा सकता है। उन्होंने सहानुभूतिपूर्वक गांधी से कहा कि भारत की आजादी से लड़ने के पहले तीन दुश्मनों का खात्मा जरूरी है। ये दुश्मन थे - (1) कांग्रेस पार्टी (जिस पर ब्राह्मण पदाधिकारियों का दबदबा था) (2) जाति व्यवस्था वाला हिंदू धर्म और (3) समाज में ब्राह्मणों का दबदबा।

सन 1928

पेरियार ने 7-11-1928 को रिवोल्ट शीर्षक वाली अंग्रेजी पत्रिका प्रकाशित की।

1929

आत्मसम्मान आंदोलन का पहला प्रांतीय सम्मेलन पेरियार ने फरवरी 1929 में चेंगलपट्टू में आयोजित किया। इस सम्मेलन की अध्यक्षता श्री डब्ल्यू पी ए सुंदर पांडियन को सौंपी गई थी।

पेरियार ने एक नई तार्किक विवाह पद्धति का चलन पैदा किया जिसे आत्मसम्मान विवाह का नाम दिया गया। इस विवाह समारोह के दौरान सभी धार्मिक रीति रिवाज तथा ब्राह्मणों द्वारा मंत्रोच्चार पूरी तरह प्रतिबंधित थे। नवविवाहित जोड़े के लिए एक दूसरे को माला पहनाना व मातृभाषा में विवाह की शपथ दोहराना पर्याप्त था। इस तरह के विवाह में फिजूलखर्ची की कोई जगह नहीं थी, इसे बहुत सादगी से निपटाना था। पेरियार ने अपनी सुधरी हुई विवाह प्रथा में इन तमाम शर्तों को शामिल किया था। इस नई वैवाहिक व्यवस्था में उन्होंने शादी को धर्मनिरपेक्ष बनाया। किसी भी धर्म का कोई भी व्यक्ति शादी करा सकता था। केवल वर एवं वधू को एक दूसरे को माला पहनानी थी एक दूसरे का पति पत्नी होने की घोषणा करनी थी।

इस नई वैवाहिक व्यवस्था के अलावा पेरियार ने अंतरजातीय विवाह व विधवा विवाहों को भी बढ़ावा दिया।

10–11 मई, 1930

पेरियार ने इरोड में आत्मसम्मान आंदोलन के दूसरे प्रांतीय सम्मेलन का आयोजन श्री एम आर जयकर की अध्यक्षता में किया। पुणेवासी जयकर एक तर्कवादी नेता थे। इस दौरान युवा सम्मेलन, महिला सम्मेलन, शराबबंदी सम्मेलन, तमिल संगीत सम्मेलन आदि का आयोजन भी किया गया।

उन्होंने देवदासी प्रथा के खात्मे से संबंधित विधेयक का सक्रिय समर्थन किया। इस व्यवस्था के तहत एक खास समुदाय की युवा लड़कियों को अलग कर दिया जाता था जो हिंदू मंदिरों में नृत्य करती थीं।

डॉ. मुथुलक्ष्मी (रेड्डी) नामक एक महिला सुधारक ने एक विधेयक पेश किया जिसे मद्रास विधान परिषद में पारित कर दिया गया। हालांकि जातिवादी ब्राह्मण नेताओं ने इसका जमकर विरोध किया था।

1931

तीसरा प्रांतीय आत्मसम्मान सम्मेलन विरुतनगर में हुआ जिसकी अध्यक्षता आर के षणमुगम ने की थी।

20 जून 1932

इंग्लैंड में पेरियार ने श्रमिकों की एक विशाल सभा को संबोधित किया जिसमें

50,000 से अधिक लोग शामिल थे। उन्होंने तार्किकता और समाजवाद पर अपने सिद्धांतों को वहां स्पष्ट किया।

28-29 दिसंबर 1932

महान विचारक कॉमरेड एम सिंगारवेलु ने इरोड में पेरियार के आवास पर एक समाजवादी कार्यक्रम का मसौदा तैयार किया, जिस पर हुई चर्चा में आत्मसम्मान आंदोलन के अनुयाइयों ने भी हिस्सा लिया।

1932

सोवियत संघ का दौरा किया था तथा समुचे तमिलनाडु में कई बैठकों को संबोधित किया और उन जगहों पर 'समाजवाद की इरोड योजना' का प्रचार किया।

11 मई 1933

पेरियार की प्रिय पत्नी श्रीमती ईवीआर नागाम्मल का निधन हो गया और उनका अंतिम संस्कार अगले दिन किया गया। 12 मई 1933 को अंतिम संस्कार के तत्काल बाद वह तिरुचरापल्ली के लिए निकल गए। वहां उन्होंने अंतरधार्मिक (ईसाई) आत्मसम्मान विवाह समारोह का आयोजन किया। इस दौरान उन्होंने धारा 144 का उल्लंघन किया और उनको गिरफ्तारी देनी पड़ी।

सन 1933

ब्रिटिश सरकार के दमन के कारण तमिल साप्ताहिक 'कुडी अरासू' को प्रतिबंधित कर दिया गया। एक अन्य पत्रिका 'पुरातकी'(क्रांति) का प्रकाशन पेरियार ने किया।

1935

पेरियार ने जस्टिस पार्टी के प्रति अपना समर्थन बढ़ाया। पार्टी ने एक जून 1935 को अपना तमिल साप्ताहिक पत्र 'विदुथलई' शुरू किया। इसके बाद भार पेरियार पर आया जिन्होंने एक जनवरी 1937 से विदुथलई को तमिल दैनिक के रूप में प्रकाशित करना आरंभ कर दिया। 12 जनवरी 1935 से पेरियार की तमिल भाषा की सुधारवादी बातें उनके द्वारा प्रकाशित सभी पुस्तकों और समाचार पत्रों में शामिल की गई।

1940

उन्होंने बॉम्बे में डॉ. बी आर आंबेडकर और मोहम्मद अली जिन्ना से मुलाकात की। श्री सीएन अन्नादुराई (उन्हें स्नेह से अन्ना कहा जाता था) उनके साथ हो गए। जब सी राजगोपालाचारी के मंत्रालय ने इस्तीफा दिया तो पेरियार को वैकल्पिक मंत्रालय

बनाने का निमंत्रण दिया गया क्योंकि वह जस्टिस पार्टी के निर्वाचित नेता थे।

उन्होंने तिरुवरुर सम्मेलन में अलग द्रविड़नाडु की मांग की ताकि द्रविड़ नस्ल को बचाया जा सके। साथ ही तमिल भाषा को हिंदी और उत्तरी भारतीय हिंदू पूंजीवादियों के दबदबे से बचाया जा सके।

1944

27-8-1944 को सलेम में आयोजित जस्टिस पार्टी के प्रांतीय सम्मेलन में पार्टी का नाम बदलकर 'द्रविड़ कषगम' रख दिया गया, ताकि यह पूरी तरह उस सामाजिक क्रांतिकारी आंदोलन को परिलक्षित कर सके जिसका लक्ष्य था ब्राह्मणों द्वारा दमित द्रविड़ नस्ल का उद्धार किया जा सके। वहां यह घोषणा भी की गई कि पार्टी चुनाव नहीं लड़ेगी और न ही ब्रिटिश सरकार द्वार दिए जाने वाले अलंकरण स्वीकार करेगी।

सन 1946

11-5-1946 को मदुरई में वैगई नदी के तट पर प्रसिद्ध 'काली कमीज सम्मेलन ' का आयोजन किया गया। रेत पर हो रहे इस आयोजन के दौरान ब्राह्मणों द्वारा भड़काए गए गुंडों ने पंडाल को आग लगा दी और पेरियार तथा उनके साथी पूरा दिन उसी में फंसे रहे।

15 अगस्त 1947

15 अगस्त 1947 को जब पूरा भारत और पूरा विश्व भारत की आजादी का जश्न मना रहा था तब पेरियार ने अपनी अंतर्दृष्टि से एक साहसिक घोषणा करते हुए कहा था कि यह तमिलों के लिए शोक का दिन है। उन्होंने कहा कि भारत की आजादी कुछ और नहीं बस ब्रिटिशों से ब्राह्मणों और बनियों के हाथों सत्ता हस्तांतरण है।

1947

14-9-1947 को द्रविड़नाडु को अलग करने संबंधी एक सम्मेलन का आयोजन कडलोर कस्बे में आयोजित किया गया।

1948

काली कमीज स्वयंसेवक कोर को प्रतिबंधित कर दिया गया। 18वें द्रविड़ कषगम राज्य सम्मेलन का आयोजन तुतीकोरिन में 8-5-1948 और 9-5-1948 को पेरियार की अध्यक्षता में किया गया। इस अवसर पर जाति और धर्म से परे पेरियार के हजारों समर्थक जुटे।

पेरियार और श्री सी एन अन्नादुरई (अन्ना) ने चेन्नई में मराईमलाई अदिगलार (तमिल शुद्धता के आग्रही) के नेतृत्त्व में आयोजित हिंदी विरोधी स्वयंसेवकों के सम्मेलन में हिस्सा लिया। 30 जनवरी 1948 को महात्मा गांधी को नई दिल्ली में प्रार्थना सभा के दौरान मराठी ब्राह्मण नाथूराम गोडसे ने गोली मार दी। पेरियार ने तमिलनाडु में आयोजित बैठकों में इसकी निंदा की। उन्होंने यह सुझाव दिया कि भारत का नाम गांधी राष्ट्र (नाडू) रख दिया जाए। उन्होंने गांधी की शहादत को याद रखने के लिए गांधी धर्म नामक नया धर्म चलाने का सुझाव भी दिया।

1949

मणि अम्मई के साथ पेरियार का विवाह उनके स्वास्थ्य की रक्षा और आंदोलन की परिसंपत्तियों की देखरेख के लिए किया गया ताकि यह सुधारवादी आंदोलन भविष्य में बिना किसी अड़चन के चलता रह सके।

1950

उन्होंने गणतंत्र दिवस यानी 26-1-1950 को तमिलों के लिए शोक दिवस घोषित किया। 22-1-1950 को पेरियार को उनकी पुस्तक 'पोनोमोझिगल' (स्वर्णिम कहावतें) के प्रकाशन के लिए जेल की सजा सुनाई गई।

1951

पेरियार द्वारा तैयार हो रहे प्रतिरोध को महसूस करते हुए केंद्र की नेहरू सरकार ने पहली बार संविधान में संशोधन किया। यह भारतीय संविधान का पहला संशोधन था। संविधान के अनुच्छेद 15 में उपखंड (4) जोड़ा गया और देश पिछड़े वर्ग के लिए समान अधिकार और अवसर सुनिश्चित करने के लिए सरकारी आदेश का प्रावधान किया गया।

1953

मूर्ति पूजा की निंदा करने के लिए और दुनिया को यह दिखाने के लिए कि मूर्तियों में कोई अलौकिक शक्ति नहीं है, पेरियार ने एक अभियान शुरू किया। उनके अनुयाइयों तथा खुद पेरियार ने सार्वजनिक स्थानों पर पिल्लैयर (विनायक) की मूर्तियां तोड़नी शुरू कर दीं।

पेरियार ने राजाजी के उस शिक्षा सुधार कार्यक्रम का तीव्र विरोध किया जिसके मुताबिक सभी छात्रों को विद्यालयों में अपने माता-पिता के पेशे को ही सीखना चाहिए था। विरोध इतना तगड़ा था कि श्री सी राजगोपालाचारी (राजाजी) को मुख्यमंत्री का पद छोड़ना पड़ा। परिणामस्वरूप श्री के कामराज तमिलनाडु के

मुख्यमंत्री बने और उन्होंने भारी विरोध झेल रहे इस शैक्षणिक सुधार को लागू करने से इनकार कर दिया।

1954

पेरियार ने इरोड में बौद्ध धर्म पर एक सम्मेलन का आयोजन किया। पेरियार और उनकी पत्नी तथा कुछ मित्रों ने म्यांमार और मलेशिया की यात्रा की। म्यांमार में मांडले में उन्होंने विश्व बौद्ध सम्मेलन में हिस्सा लिया जहां उनकी मुलाकात बौद्ध विद्वान श्री मल्लाल शेखर और डॉ. बी आर आंबेडकर से हुई। उन्होंने आंबेडकर से लंबी चर्चा की और चर्चा में बौद्ध धर्मांतरण का विषय भी आया। उन्होंने डॉ. बी आर आंबेडकर को सलाह दी कि वे बड़ी संख्या में अपने अनुयाइयों के साथ बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाएं न कि अकेले।

1955

पेरियार ने जनभावनाओं के विरुद्ध जाकर तमिलनाडु में हिंदी को अनिवार्य करने की योजना का विरोध करते हुए घोषणा की कि वे एक निश्चित तिथि को देश का राष्ट्रध्वज जलाएंगे। पेरियार को सार्वजनिक स्थानों पर राम की तस्वीरें जलाने और विरोध करने के लिए गिरफ्तार कर लिया गया। उन्होंने ये तस्वीरें रामायण महाकाव्य में आर्य दबदबे और द्रविड़ नेताओं के दमन के विरुद्ध जलाई थीं।

त्रिची के जिलाधिकारी श्री आर एस मलयप्पन अस्पृश्यों के साथ सहानुभूति रखते थे और मद्रास उच्च न्यायालय के दो ब्राह्मण न्यायाधीशों ने अपने एक फैसले में उनकी निर्दयतापूर्वक आलोचना की। पेरियार ने इस फैसले का सच सबके सामने लाया क्योंकि आर एस मलयप्पन पिछड़े समुदाय के अधिकारी थे। पेरियार ने त्रिची टाउनहॉल चौराहे पर आयोजित एक जनसभा में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की आलोचना करते हुए कहा कि वे वंचित वर्ग के प्रति नफरत का भाव रखते हैं।

18 जनवरी 1957

पेरियार और भूदान आंदोलन के संस्थापक नेता विनोबा भावे ने त्रिचुरापल्ली में मुलाकात की।

23 अप्रैल 1957

मद्रास उच्च न्यायालय के दो ब्राह्मण न्यायाधीशों द्वारा त्रिची के जिलाधिकारी श्री आर एस मलयप्पन के मामले में दिए गए फैसले की आलोचना करने के चलते पेरियार पर न्यायालय की अवमानना का आरोप लगाया गया और जब न्यायमूर्ति पी वी राजामन्नार और न्यायमूर्ति ए एस पंचपक्ष अय्यर के समक्ष मामले की अंतिम

सुनवाई हो रही थी तो उन्होंने उच्च न्यायालय में एक वक्तव्य देकर बताया कि कैसे ब्राह्मणों ने कई मामलों में नस्ली उद्देश्य से काम किया और कहा कि शूद्रों और पंचमों का उन्मूलन करना उनका प्राकृतिक धर्म है।

1958

पेरियार ने जाति व्यवस्था के खिलाफ एक और बड़े आंदोलन की शुरुआत की। ब्राह्मण अपने होटलों के नाम पट्ट पर ब्राह्मण होटल लिखा करते थे ताकि लोगों में यह संदेश जाए कि ब्राह्मण उनसे श्रेष्ठ हैं। पेरियार ने अपने अनुयाइयों से अनुरोध किया कि वे तमिलनाडु के सभी ब्राह्मण होटलों के बोर्ड से ब्राह्मण शब्द मिटा दें। इस प्रदर्शन के परिणामस्वरूप होटलों के नाम पट्ट से ब्राह्मण शब्द गायब होने लगा। तमिलनाडु सरकार ने उनके खिलाफ मामला कायम किया और पेरियार को गिरफ्तार कर लिया गया। उन पर आरोप था कि उन्होंने पशुपतिपलयम (करूर), कुलितलई और तिरचिरापल्ली में दिए भाषणों में अपने अनुयाइयों को ब्राह्मणों पर हमला करने के लिए भड़काया। उनको तिरुचिरापल्ली की जिला अदालत ने छह माह कैद की सजा दी। पेरियार और उत्तर भारत के समाजवादी नेता राममनोहर लोहिया ने चेन्नई में मुलाकात की और लोगों की सामाजिक और राजनीतिक सेवा करने के बारे में विचार विमर्श किया।

1960

उन्होंने तमिलनाडु को छोड़कर भारत का नक्शा जलाया और कहा कि केंद्र सरकार का शासन ब्राह्मणों का शासन है। पेरियार के निर्देशन में समूचे तमिलनाडु में सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय के विरुद्ध विरोध दिवास मनाया गया जिसने तमिलनाडु लैंड सीलिंग अधिनियम के प्रभाव को समाप्त कर दिया था जबकि यह अधिनियम संविधान संशोधन के जरिए बना था।

1967

श्री सी एन अन्नादुरई तमिलनाडु के मुख्यमंत्री बन गए। उनकी पार्टी डीएमके को तमिलनाडु विधानसभा में सर्वाधिक सीट मिलीं। वह तिरुचिरापल्ली गए और उन्होंने पेरियार की शुभकामनाएं और मशविरा लिया।

1968

पेरियार के सच्चे तर्कवादी शिष्य की भांति अन्ना ने एक सर्कुलर जारी कर सभी सरकारी कार्यालयों से हिंदू देवी-देवताओं की तस्वीरें हटाने का निर्देश दिया। यह कदम एक धर्मनिरपेक्ष उपाय के तौर पर उठाया गया था।

1969

पेरियार ने मंदिरों में व्यवहार में लाए जा रहे जातिगत भेदभाव को समाप्त करने के लिए उनके गर्भगृह में सभी जातियों के योग्य व्यक्तियों का प्रवेश सुनिश्चित करने के लिए एक कार्यक्रम की घोषणा की। इससे पहले केवल ब्राह्मण ही पूजा अर्चना करवा सकते थे वह भी तमिल के बजाय संस्कृत में।

1970

तमिल द्विमासिक पत्रिका 'उन्मई' (सच) की शुरुआत पहले पेरियार ने तिरुचिरापल्ली से की। पेरियार ने रेशनलिस्ट फोरम नामक एक नया मंच बनाया जो अराजनैतिक और सामाजिक संगठन था। इसमें सरकारी और निजी कर्मचारियों को जोड़ा गया और ऐसे अन्य लोगों को भी जो तार्किकता में यकीन करते थे। अंग्रेजी के तर्कवादियों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए पेरियार ने अंग्रेजी मासिक मॉर्डन रेशनलिस्ट की शुरुआत की।

8 दिसंबर 1973

पेरियार ने एक सामाजिक सम्मेलन का आयोजन कर सामाजिक अवनति और ब्राह्मणों द्वारा थोपी गई जाति व्यवस्था को खत्म करने पर चर्चा आयोजित की। यह सम्मेलन 8 दिसंबर 1973 और 9 दिसंबर 1973 को थिडल, वेपेरी, मद्रास में आयोजित किया गया और दोनों ही दिन अपार जनसमूह वहां पहुंचा। पेरियार ने एक शानदार भाषण देकर तमाम द्रविड़ों का आह्वान किया कि वे आगे आएं और जाति तथा सामाजिक अवनति के उन्मूलन के लिए काम करें। उस समय कई ऐतिहासिक प्रस्ताव पारित किए गए।

19 दिसंबर 1973

चेन्नई में त्यागराय नगर में पेरियार ने अपना अंतिम भाषण दिया। मानो वह बेहद स्मरणीय ढंग से अपना मृत्युपूर्व बयान दे रहे हों।

20 दिसंबर 1973

हार्निया की बीमारी के कारण असहनीय दर्द से जूझते पेरियार को चेन्नई के सरकारी अस्पताल में दाखिल किया गया।

21 दिसंबर 1973

पेरियार की इच्छा पर उनको वेल्लोर स्थित सीएमसी अस्पताल ले जाया गया।

24 दिसंबर 1973

दुनिया के महान विचारक और दृढ़ तर्कवादी पेरियार ने अपनी अंतिम सांस ली। वह दुनिया भर के करोड़ों तर्कवादियों, द्रविड़ नस्ल के तमिलों और अपने तमाम चाहने वालों को असहनीय दुख में छोड़कर चले गए।

(द्रविड़ कजगम की अधिकारिक तमिल वेबसाईट से साभार
तमिल से अंग्रेजी अनुवाद : टी. मार्क्स,
अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद : पूजा सिंह)

पेरियार और आत्मसम्मान आन्दोलन

ब्रजरंजन मणि

ई. वी. रामास्वामी नायकर (1879-1973), जो पेरियार के नाम से प्रसिद्ध हैं, और पेरियार का अर्थ होता है महान आदमी, यह उपाधि उनके महान संघर्ष के दौरान लोगों ने उन्हें दी थी। वे ब्राह्मणवादी संस्कृति और विचार के तीखे आलोचक और आंदोलनकारी थे। उनका सार्वजनिक जीवन और उनकी धारदार राजनीति कांग्रेसी राष्ट्रवाद की छुपी हुई गन्दगी के इतिहास को उजागर करती है। सन 1919 में कांग्रेस में शामिल होते ही वे तमिलनाडु कांग्रेस में एक प्रमुख शख्सियत बनकर उभरे, लेकिन जल्द ही कांग्रेसी पाखण्ड से उनका मोहभंग हो गया। उन्होंने ब्राह्मणवादी कांग्रेस छोड़कर 'आत्मसम्मान आंदोलन' संचालित करने का निर्णय लिया। यह आन्दोलन गैर-ब्राह्मणवादी आन्दोलन का क्रांतिकारी दौर था, जो पेरियार ने गांधी की राजनीति के जवाब में खड़ा किया था। पेरियार द्वारा 1926 में निर्मित 'आत्म सम्मान मंच' के उद्देश्य ज्योतिबा फुले के सत्य शोधक समाज के उन उद्देश्यों से बहुत समानता रखते थे, जिसमें उन्होंने जाति व्यवस्था के खात्मे, ब्राह्मणी वर्चस्व के विरोध और महिलाओं सहित दलित-बहुजनों की मुक्ति का आह्वान किया था। जातीय ऊँच-नीच, कर्मकांड और मूर्तिपूजा के कठोर आलोचक पेरियार ने फुले और आंबेडकर की ही तरह हिन्दू धर्म को मूलतः ब्राह्मणवाद से जोड़कर दिखाते हुए हिन्दू विधानों और संस्थाओं को 'ब्राह्मणवादी', 'पुरुषवादी' और 'आर्य' शोषण का उपकरण निरुपित किया। उनके सशक्त और लोक उन्मुख आंदोलनों ने कांग्रेस के छद्म राष्ट्रवाद पर हमला किया और इस राष्ट्रवाद को ब्राह्मणवाद का राजनीतिक चेहरा बताया जो कि देश में सत्ता, भेदभाव और शोषण जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों को उजागर नहीं होने देता।

आत्मसम्मान आन्दोलन, जैसा कि वी. गीता और एस.वी. राजादुरै बताते हैं कि मूलतः धर्म, जाति और राष्ट्रवाद के उस 'पवित्र' गठजोड़ के विरोध में था, जो मूलतः सामाजिक असमानता पर खड़ी सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था का समर्थन करती थी। 'ब्राह्मण जिस तरह से 'कर्मकांडीय नैतिकता को राष्ट्रीय सिद्धांत' बना देते थे,

पेरियार उसके सख्त विरोधी थे, उन्होंने गहराई से अनुभव किया कि ब्राह्मण नए उभरते सार्वजनिक क्षेत्रों या मुद्दों में इस ब्राह्मणवाद का इस्तेमाल गैर ब्राह्मणों को निरस्त और बेइज्जत करने में करते हैं। मद्रास के निकट कांग्रेस समर्थित आवासीय विद्यालय (गुरूकुलम) में ब्राह्मण और गैरब्राह्मण विद्यार्थियों के लिए भोजन की अलग-अलग व्यवस्था के मुद्दे पर उनका कांग्रेस नेताओं से मतभेद हुआ और यह उनके लिए एक निर्णायक बिंदु बन गया। यह उनके लिए बहुत कष्टकारी और आँखें खोलने वाला अनुभव था कि किस तरह यह स्कूल, जो कि छात्रों में समाज सेवा और देशभक्ति सिखाने के उद्देश्य से बनाया गया था, वह स्वयं ब्राह्मण व गैर ब्राह्मण लड़कों के बीच भोजन की अलग-अलग बैठक का भेदभाव करके अस्पृश्यता का पालन कर रहा था। कांग्रेस के राष्ट्रवादी, जिनमे गाँधी भी शामिल थे, पारम्परिक समरसता को बनाये रखने के नाम पर इस व्यवस्था का समर्थन कर रहे थे। पेरियार ने 'ऐसे राष्ट्रवादियों' के सामने यह सवाल उठाने का प्रयास किया कि 'गुरूकुलम को एक आदर्श भारतीय राष्ट्रवाद के लिए - कटिबद्ध होना चाहिए और मनुष्य - मनुष्य के बीच में कोई भी अपमानजनक भेदभाव नहीं होना चाहिए।' उनका तर्क था कि राष्ट्रवाद नागरिकों द्वारा अपनी गरिमा और अंतःकरण से समझौता किये बिना एक सामूहिक शुभ के लिए विकसित करना चाहिए जिसमे 'ज्ञान के सर्वांगीण विकास, शिक्षा के प्रसार, वैज्ञानिक चित्त के विकास, रोजगार, उद्योग, समता, एकता, नवाचार और ईमानदारी सहित गरीबी, अन्याय और अस्पृश्यता उन्मूलन शामिल हो। उन्होंने जोर दिया कि अन्य बातों के पहले राष्ट्र को इस बात की आवश्यकता है कि वर्णाश्रम धर्म और जन्म आधारित भेदभाव का अंत हो।

कांग्रेस से पेरियार के रिश्ते बहुत तीखे और तूफानी रहे और जल्द ही खत्म हो गये। 1920 में कांग्रेस के क्षेत्रीय अधिवेशन में तिरुनलवेली में उन्होंने गैर ब्राह्मणों के एक अलग सत्र की अध्यक्षता की। इस बैठक में गैर ब्राह्मणों के लिए चुनाव क्षेत्रों और शासकीय सेवाओं में आरक्षण की मांग संबंधी प्रस्ताव रखे गये। कांग्रेस अध्यक्ष श्रीनिवास आयंगर ने खुले सत्र में इन पर विचार की अनुमति नहीं दी और 'जनहित' के नाम पर वीटो कर दिया। पुनः 1924 में थिरुवान्नामलई के क्षेत्रीय कांग्रेस सत्र के दौरान पेरियार ने अपने अध्यक्षीय भाषण में जोर देते हुए कहा कि जाति व्यवस्था को खत्म करना उनका लक्ष्य है, लेकिन जब तक यह लक्ष्य हासिल नहीं हो जाता, तब तक सभी जातियों और समुदायों को प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। उन्होंने कांग्रेस नेतृत्व को यह बात समझाने का प्रयास किया कि जब तक जातिविहीन समाज का लक्ष्य हासिल नहीं हो जाता तब तक एक ही रास्ता है वह यह कि अतीत में जो कुछ गलत हुआ है उसे ठीक करने के लिए जाति व्यवस्था द्वारा शोषित हुए लोगों को लोकतांत्रिक ढंग से सबल बनाया जाए। उनके अनुसार आरक्षण वह तरीका है जिसके द्वारा वर्तमान सत्ता का पुनर्वितरण किया जा

सकता है।

कांग्रेस के कांचीपुरम अधिवेशन में 1925 में पेरियार ने पुनः सभी समुदायों के प्रतिनिधित्व की मांग उठाई। उन्हें सूचित किया गया कि यदि 30 सदस्यों की स्वीकृति वे हासिल कर लेंगे तो उनके प्रस्ताव को विचार के लिए चुना जाएगा। पेरियार ने 50 समर्थकों की सूची बनाई, इसके बावजूद खुले सत्र में इस मुद्दे को उठाने की अनुमति नहीं दी गयी। इस वजह से काफी असंतोष और अव्यवस्था फैल गयी और उग्र चर्चाओं के दौरान पेरियार अपने साथियों के साथ कांग्रेस से बाहर निकल गए। कांग्रेस छोड़ने से पहले उन्होंने कहा :

> 'हम स्वराज के लिए सभी के बलिदान की बात कर रहे हैं। अगर हम स्वराज हासिल करते हैं तो यह सभी लोगों के लिए होगा। आज लोगों के मन में भय है कि स्वराज भी एक अर्थ में ब्राह्मण राज ही होगा। हमें लोगों के मन में भरोसा पैदा करना होगा। प्रत्येक समुदाय को एक-दूसरे के प्रति सौहार्द्र रखना होगा। हमें सुनिश्चित करना होगा कि प्रत्येक समुदाय सुरक्षित हो और समृद्ध बने। आज करोड़ों लोग हैं, जो दीन-हीन हालत में हैं। वे कमजोर और गूंगे बहरों की तरह हैं। एकमात्र रास्ता जो है, वह यह कि सभी समुदायों को वैध प्रतिनिधित्व दिया जाए।'

पेरियार ने 1928 में कांग्रेस के पाखंड को दुबारा बेनकाब किया, जबकि जस्टिस पार्टी ने एस.मुथईया मुदालियर कैबिनेट के सरकारी नौकरियों में सभी समुदायों को प्रतिनिधित्व देने के शासकीय आदेश का समर्थन किया। कांग्रेस नेता 'अंग्रेजों के इशारे पर' लिए गए इस 'विभाजनकारी' कदम के खिलाफ आग बबूला हो उठे। पेरियार ने कहा कि अगर ब्राह्मण जाति आधारित भेदभाव छोड़ देते हैं तो गैर ब्राह्मणों को भी शासकीय आदेश के लाभों का मोह छोड़ देना चाहिए। 'राष्ट्रवादियों' ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और पेरियार की इस पहल ने उनको पूरी तरह से बेनकाब कर दिया। तब शासकीय आदेश को अंतिम रूप दिया गया और आज तक आरक्षण नीति के मार्ग को सुदृढ़ करने वाले इस आदेश को 27 दिसंबर 1929 को पास कर दिया गया।

आइये, अब हम आजादी के बाद आरक्षण के लिए पेरियार के कहीं अधिक कठिन संघर्ष की कहानी को थोड़ा और गहराई से जानने की कोशिश करते हैं। जब 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू कर दिया गया तब आज की तरह उसमें 'अन्य पिछड़ा वर्ग' की श्रेणी नहीं थी। उस समय केवल अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और सामान्य वर्ग ही थे। इस आधार पर केंद्र में नेहरू के नेतृत्व वाली कांग्रेस ने पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण को रद्द करने की मांग की। इस आरक्षण को अगस्त 1950 में मद्रास उच्च न्यायालय में भी चुनौती दी गयी और

न्यायालय ने इसे असंवैधानिक करार दिया, सर्वोच्च न्यायालय ने भी उच्च न्यायालय के इस आदेश को सही मानते हुए इस आरक्षण को असंवैधानिक करार दिया। इसके बाद तमिलनाडु में स्वतः ही विरोध प्रदर्शन फूट पड़े। लोग बहुत गुस्से में थे और असंतोष बढ़ रहा था। तब जन असंतोष को आवाज देते हुए पेरियार ने संविधान को ब्राह्मणों के हाथ का खिलौना कहा। उन्होंने बताया कि यद्यपि आंबेडकर संविधान निर्मात्री सभा के अध्यक्ष थे, लेकिन वे दलित बहुजनों के अकेले प्रतिनिधि थे और उन्हें सभा के अन्य तीन ब्राह्मण सदस्यों (ए. कृष्णा स्वामी अइयर, टी टी कृष्णमाचारी और गोपालस्वामी) जो खुद तमिलनाडु से थे - के आगे समर्पण करना पड़ा था। आन्दोलन उग्रतर होता गया। जनसमूह की लहरों पर लहरें सड़कों पर आने लगीं, धरना और हड़तालें एक प्रचलन सी बन गई। पेरियार के आह्वान पर 14 अगस्त को शासकीय अध्यादेश (**GO**) दिवस की तरह मनाया गया और पूरा राज्य जहां का तहां रुक गया। पेरियार ने भारतीय संघ - जो कि ब्राह्मण-अभिजात्य द्वारा शासित है - से अलग होने की धमकी दी। इन उग्र प्रदर्शनों ने भारत की केंद्र सरकार को पहली बार संविधान में संशोधन करने के लिए मजबूर किया और अनुच्छेद 15 (4) को शामिल किया गया, जिसके माध्यम से राज्य सरकारों को इस बात का अधिकार दिया गया कि अनुच्छेद 15 (1) और 29 (2) से बाध्य न होते हुए ये सरकारें सामाजिक, शैक्षणिक रूप से पिछड़े और अनुसूचित जाति और जनजाति के समुदायों की बेहतरी के लिए विशेष प्रावधान कर सकती हैं। इसी प्रावधान के अंतर्गत तमिलनाडु में आरक्षण नीति को दुबारा लागू किया गया, साथ ही केंद्र सहित अन्य राज्यों में भी आगामी वर्षों में अलग-अलग रूपों में लागू किया गया।

लेकिन पेरियार का आन्दोलन सिर्फ आरक्षण और 'राजनीतिक गैर ब्राह्मणवाद' तक सीमित नहीं था। आत्मसम्मान आन्दोलन जातिविहीनता और तार्किकता की भूमि पर एक सांस्कृतिक क्रांति को लक्षित था। पेरियार ने 'गैर ब्राह्मण' के रूप में वृहत्तर बंधुत्व को धारण करने वाले एक ऐसे शब्द की कल्पना की, जिसमे ब्राह्मणों और ब्राह्मणवाद द्वारा नीच ठहराए गए, घृणित बनाये गए, और इंसानों से कमतर बताये गए सभी समुदाय शामिल थे। पेरियार के शब्दों में,

> 'ईसाईयों, मुसलमानों, एंग्लो इंडियंस और अन्य गैर हिंदू भी गैर ब्राह्मण हैं, हिन्दुओं में भी ब्राह्मण जाति को छोड़ कर गैर ब्राह्मण ही हैं, जो अछूत माने जाते हैं और इस कारण हाशिये पर हैं, जिन्हें देखना अशुभ है, जिन्हें छूना पाप है, वे भी गैर ब्राह्मण हैं। इन सब समुदायों को अगर ब्राह्मणवाद के तिलस्मी जाल की दासता से बचना है, और आत्मसम्मान के साथ रहना है तो उन्हें आपस के भेदभाव और स्वार्थ भूलकर एक होना होगा और ब्राह्मणों का जासूस बनना छोड़ना होगा... उन्हें सार्वभौमिक विकास में

विश्वास व्यक्त करते हुए इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए एक होना होगा और साथ ही पाखंडों और पूर्वग्रहों से मुक्त होना होगा।'

इस आन्दोलन का मूल जोर शूद्रों को उनके शूद्रत्व से मुक्त करना और उन्हें अति शूद्रों एवं अन्य समुदायों के साथ लाकर ऐसे समाज का पुनर्निर्माण करना था, जिसमे जातिभेद के लिए कोई जगह न हो। पेरियार के लिए फुले और आंबेडकर की ही तरह अस्पृश्यता के अंत का मतलब था जाति व्यवस्था का अंत। गैर ब्राह्मणों की प्रगति अछूतों से जुड़ी है, इस बात पर जोर देते हुए उन्होंने कहा कि 'इतना ही नहीं बल्कि अछूतों के दुःख दर्द भी गैर ब्राह्मणों से जुड़े हुए हैं।' उनके अनुसार आरक्षण अछूतों के लिए अधिक जरूरी है, क्योंकि उन्हें अन्य गैर ब्राह्मणों की तुलना में अधिक तिरस्कार सहना पड़ता है। सत्ता और शक्ति के पदों पर आते ही अछूत अपने खिलाफ प्रताड़नाओं और नागरिक अशक्तताओं को रोक सकेंगे जो उनपर थोपी गयी है।

जातियों, समुदायों और लिंगों के भेदभाव के परे समतामूलक सामाजिक संबंधों पर जोर देते हुए पेरियार ने जाति और पितृसत्ता को उखाड़ फेंकने की वकालत की। उन्होंने विवाह के गैर ब्राह्मण तरीकों की शुरुआत की और स्त्रियों की समानता और जीवनसाथी चुनने के अधिकार को सम्मान दिया। वर्तमान में प्रचलित धार्मिक विश्वासों और अभ्यासों के साथ इस समाज के पूरे ब्राह्मणवादी ढाँचे को ही वे उखाड़ना चाहते थे, जो कि गैर ब्राह्मणों और स्त्रियों के दमन का मूल कारण है। न्याय पार्टी (जस्टिस पार्टी), जो कि जमीनी तौर पर लोगों को संगठित नहीं कर सकी थी, के विपरीत पेरियार के आन्दोलन ने गांवों और शहरों में हजारों युवाओं, स्त्री पुरुषों को आकर्षित किया, जिनमें से अधिकाँश बहुत गरीब थे और पहली पीढ़ी के शिक्षित लोग थे। आन्दोलन के केन्द्रीय बिंदु- सदियों से सताए गए स्त्री-पुरुषों के लिए आत्म सम्मान, आत्म अभिमान और गरिमा - पुनर्स्थापित करने की मांग ने सहज ही लोगों के मन जीत लिए। समय-समय पर पेरियार ने जोरदार ढंग से अपनी बातें रखीं और महत्वपूर्ण मुद्दों के प्रति ध्यान आकर्षित किया। कई जगहों पर इस आन्दोलन ने ब्राह्मणी प्रतीकों के खिलाफ नाटकीय हमले संगठित किये, सदस्यों ने मनुस्मृति जैसे ग्रंथ जलाए, भेदभाव-वादी भगवानों और पुरोहितों पर जूते बरसाए गए, और प्रतिबंधित मंदिरों में विद्रोह भाव के साथ सामूहिक रूप से प्रवेश और प्रदर्शन किया गया। ब्राह्मणवादी राष्ट्रवादी 'द हिन्दू' जैसे राष्ट्रीय प्रेस द्वारा सवर्ण अभिजात्य जिस प्रतिक्रियात्मक भूमिका को रच रहे थे- उसके खिलाफ पेरियार ने अपनी खुद की पत्रिकाएँ और समाचार पत्र निकाले। जन सामान्य द्वारा बोली जाने वाली तमिल भाषा में 'कुदी आरासु' जैसे मुखपत्रों द्वारा वे एक नए और विराट जनसमुदाय तक पहुंच गए, जो कि अभिजात्य आधारित जस्टिस पार्टी के क्षेत्रों से

कहीं आगे बढ़ चुका था। पेरियार ने सांस्कृतिक और राजनीतिक आयामों में सामाजिक- क्रांतिकार्य सहित सामाजिक विरोध प्रदर्शनों की विशिष्ट गतिविधियों का एक 'आत्मसम्मान विकसित किया जो कि गांधी के ब्राह्मणवादी राजनीति के खिलाफ थी। शुरुआती दौर में गांधी के सृजनात्मक और सामाजिक सुधारों से प्रभावित रहने वाले पेरियार जल्द ही जाति, संस्कृति और राष्ट्रवाद पर गांधी के विचार जान गये, जिससे गांधी के प्रति उनका सम्मान कड़वे क्रोध में बदल गया। 1924 में उन्होंने वाईकॉम मंदिर सत्याग्रह में भाग लिया और सामाजिक-धार्मिक दमन के मुद्दों पर गांधी के अस्पष्ट रवैयों पर सवाल उठाते हुए गांधी का विरोध किया। अपनी घोषित नास्तिकता के बावजूद पेरियार ने मंदिर में शूद्रों के प्रवेश को समर्थन दिया। उनकी समझ थी कि 'मंदिर उतना ही एक नागरिक स्पेस है, जितना कि एक धार्मिक स्पेस। लेकिन गांधी और कांग्रेस ने जिस तरह से मन्दिर प्रवेश के मुद्दे में जाति आधारित शोषण को मिलाने की कोशिश की वह पेरियार को ठीक नहीं लगा। दमित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की मांग पर अंबेडकर से निर्णायक संघर्ष के बाद (जिसके दौरान पेरियार स्वयं अंबेडकर के पक्ष में डटकर खड़े थे) - इस महान द्रविड़ नेता को मन्दिर प्रवेश सत्याग्रह में कोई रुचि नहीं रह गयी। पेरियार ने इस पूरे आन्दोलन को यह कहते हुए नकार दिया कि 'यह व्यर्थ के सपने के पीछे भागने जैसा है' जो कि अंततः ब्राह्मणवादी व्यवस्था को ही मजबूत करेगा।

गांधी से पेरियार का अलगाव कुछ जल्द ही हो गया था। 1927 में दक्षिण भ्रमण के दौरान गाँधी ने वर्णाश्रम धर्म को महिमामंडित किया था और ब्राह्मणों की यह कहते हुए प्रशंसा की थी कि ब्राह्मण 'महान हिन्दू जीवन' के योग्य संरक्षक रहे हैं। जाति व्यवस्था के विरोधियों के घावों पर नमक छिड़कते हुए गांधी ने यह भी कहा था कि अंतरजातीय विवाह और भोजन व्यवहार पर प्रतिबंध आवश्यक है, ताकि आदर्श हिन्दू जीवन को बनाए रखा जा सके। इतना ही नहीं अप्रैल 1921 में मद्रास में एक जन सभा में बोलते हुए गांधी ने ब्राह्मणवादी परम्पराओं की प्रशंसा की और जाति विरोधी आंदोलनों का उल्लेख करते हुए गैर ब्राह्मणों द्वारा 'ब्राह्मणवाद की राख से उदित होने' के प्रयासों की कड़े शब्दों में भर्त्सना की। गांधी के इसी दौरे के समय तंजावुर के थुवुर नगर में एक ब्राह्मण सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें वर्ण-धर्म की वैधता को फिर से मान्यता दी गयी। यह ध्यान रखते हुए कि वर्तमान में सिर्फ दो ही वर्ण हैं- ब्राह्मण और शूद्र - दोनों के लिए यह उचित है कि वे अपने -अपने वर्ण-अनुकूल पेशों में निष्ठा से लगे रहे।

पेरियार ने इसके खिलाफ उग्र प्रतिक्रिया दी : अगर शूद्रों को गांधी द्वारा तिन्नेवेली की सार्वजनिक भाषण में दी गयी सलाह के अनुसार चलना पड़ा तो जीवन भर ब्राह्मणों की सेवा ही करते रहेंगे। उन्होंने अपने एक संपादकीय लेख में इसे दोहराते हुए आम जनता को चेतावनी दी कि गांधी की राजनीति केवल ब्राह्मणों का फायदा

करेगी और जाति और संस्कृति पर जोर देने वाले उनके दकियानूसी विचारों का भंडाफोड़ और विरोध होना चाहिए :

'हालांकि जनता समझती है कि महात्मा गाँधी अस्पृश्यता को खत्म करना चाहते हैं और धर्म व समाज में सुधार लाना चाहते हैं, लेकिन महात्मा के वक्तव्य और विचार यह बताते हैं कि इस मुद्दे पर उनके विचार एकदम विपरीत हैं... अगर हम अस्पृश्यता पर महात्मा द्वारा बताई गई विचारधारा पर चलेंगे तो हम जिस अस्पृश्यता को समाप्त करना चाहते हैं उसी की खाई में जा गिरेंगे। हमने अभी तक धैर्य रखा है, बहुत धैर्य रखा है और अपने होंठ सिल रखे हैं लेकिन आज जाति व्यवस्था के खात्मे के लिए और आत्मसम्मान के लिए बहुत दुखी मन से हम महात्मा का विरोध और प्रतिकार करने के लिए विवश हैं।'

इस सम्पादकीय ने गांधी के जाति और वर्ण संबंधी विचारों का विश्लेषण किया और पाया कि इनमें और प्रचलित ब्राह्मणवादी विचारों में कोई अंतर नहीं है। इस विश्लेषण ने सवर्ण अभिजात्यों को आग बबूला कर दिया और उन्होंने पेरियार पर आरोप लगाया कि वे गांधी के विचारों को विकृत ढंग से पेश कर रहे हैं। पेरियार ने भी अपने अनूठे ढंग से इन मूढ़ों पर दया करते हुए उनके विरोध को धिक्कारते हुए कहा कि 'गांधी ने यह कहा, वह नहीं कहा' या 'इस तरह उनका मकसद ये था कि उन्हें कोई समझ न सके।' पेरियार और उनके साथियों ने कहा कि वे बड़ी आसानी से गांधी की हकीकत को देख सकते हैं, जो कि असल में 'कांग्रेस-ब्राह्मण अधिसत्ता के निर्माण और विस्तार में लगे एक महत्वपूर्ण खिलाड़ी हैं।'

गांधी की 1948 में हुई हत्या पर उन्होंने एक अनूठा शोक सन्देश लिखा था, जिसमें उन्होंने हत्या की कड़ी निंदा की, लेकिन साथ ही रेखांकित किया कि गोडसे (हत्यारा) कोई अकेला अतिवादी या पागल नहीं है, बल्कि यह उसी हिन्दू राष्ट्रवाद का नतीजा है, जिसे खुद गांधी ने बड़ी मेहनत से पाला-पोसा था और जो भारत भर में फैल चुका है।' गांधी को एक 'आंतरिक कैंसर' ने मार गिराया है, इस द्रविड़ नेता ने इस कैंसर को हिन्दू विचारधारा के ब्राह्मणवादी आधिपत्य से बुनियादी रूप से जुड़े हुए अभिशाप की तरह देखा।

पेरियार के क्रांतिकारी विचारों ने न केवल जन सामान्य को, बल्कि कई सृजनात्मक प्रतिभाओं को भी गहराई से प्रेरित किया। इनमे से एक भारती दासन थे, जिनकी कविताएं आत्मासम्मान की विचारधारा को उजागर करते हुए दमन की परम्परा के अन्धकार को उखाड़ फेकने वाली सामाजवादी आधुनिकता के लिए एक प्रेरणा का काम करती है :

क्या महिलाओं के हक़ को खारिज करना कोई महानता है?
या कि महिलाओं की तरक्की से आह्लादित होना महानता है?
... क्या वेदों, इश्वर और इस पतन में आस्था उचित है?

या कि इस धरा पर समाजवाद उतार लाना उचित है?
क्या हम सदा विभाजन से घिरे जीते रहेंगे?
या कभी आत्मसम्मान से भर ऊपर उठेंगे?

दासन का समाजवाद एक नयी तरह की राजनीति को और 1930 की शुरुआत में एक अल्पजीवी जाति-वर्ग- विरोधी विचारधारा को प्रतिबिंबित करता है। 1932 में पेरियार ने सोवियत संघ का दौरा किया और जो कुछ उन्होंने वहां देखा उससे वे काफी प्रभावित और प्रेरित हुए। उन्होंने भारतीय अभिजात्य और अंग्रेजी साम्राज्यवाद को वैश्विक पूँजीवाद का एजेंट बताते हुए इनके खिलाफ बोलना शुरू कर दिया। इसके कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके ऊपर निगरानी रखी जाने लगी। एक बौद्ध विद्वान और श्रमिक नेता श्री एम. सिंगारवेलु, जो कि 'दक्षिण भारत के प्रथम कम्युनिस्ट' माने जाते हैं, ने समाजवाद के प्रति पेरियार की बढ़ती रुचि को प्रोत्साहन दिया। सिंगारवेलु ने कूदी अरासु में लेखों की एक श्रृंखला लिखी, जिसमें समाजवाद और इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या की गयी थी। पेरियार ने सिंगारवेलु का साथ अपना लिया और 1932 में 'आत्मसम्मान समधर्म पार्टी' की स्थापना हुई।

जैसे गीता और राजादुरै बताते हैं कि आत्मसम्मानवादियों के लिए समधर्म शब्द तमिल में समाजवाद का अनुवाद मात्र नहीं था, इसमें पुरुषों के बीच आपसी समानता और स्त्री पुरुष के बीच समानता भी शामिल थी। इससे आगे बढ़कर इसमें यह भी अपेक्षित था कि इस समानता को प्रत्येक व्यक्ति के आत्मसम्मान और हैसियत के विधायक स्वीकार के जरिये हासिल करना था। इस तरह समधर्म का सिद्धांत न केवल नए जमाने के आर्थिक न्याय के निकट आता है बल्कि यह हजारों साल से जाति आधारित समाज को जड़ मूल से रूपांतरित करने वाले स्वप्न के साथ भी न्याय करता है। एम. सिंगारवेलु और लक्ष्मी नरसू, दोनों महान बौद्ध विद्वानों ने समधर्म की अलग-अलग तरह से लेकिन एक ही लक्ष्य के संगत व्याख्या की। उन्होंने इसके आदर्श और विशेषताओं के बौद्ध उद्गम को रेखांकित करते हुए बौद्ध धर्म की समाजवादी चेतना को पुनर्जीवित करने पर जोर दिया। यह चेतना लंबे समय से भेदभावमूलक हिन्दू धर्म का नैतिक और अध्यात्मिक प्रतिपक्ष बनी रही थी। आदि-द्रविड़ विचारकों और आन्दोलनकारियों ने जातिविहीन समाज को समधार्मिक समाज की तरह देखा। समधर्म के आदर्श पर अभी पूर्ण स्पष्टता निर्मित नहीं की गयी थी, इसे सैद्धांतिक रूप से खुला रखा गया था, हालांकि आत्मसम्मान वादियों ने समय-समय पर और विभिन्न सन्दर्भों में इस विचार के आदर्श को उन भौतिकवादी विशेषणों के साथ रखकर विश्लेषित और निर्मित किया, जो कि एक समाजवादी समाज के निर्माण के लिए आवश्यक थे। किन्तु इसने निश्चित ही गैर ब्राह्मण संघर्ष के विकास में अतिवादी तीव्रता प्रदान की। अब इस मंच से समाजवाद

की वकालत होने लगी और कई अन्य पूंजीवाद विरोधी और सामंती सत्ता विरोधी सम्मेलन इन आत्मसम्मानवादियों द्वारा होने लगे। हालांकि जाति विरोधियों और वामपंथियों का यह गठजोड़ अधिक समय तक नहीं टिक सका। आत्मसम्मान आन्दोलन का रुढ़िवादी धड़ा समाजवाद के प्रति उदासीन बना रहा, लेकिन इससे कहीं आगे बढ़कर साम्यवादियों ने जाति विरोध के आन्दोलन को वर्ग संघर्ष का ही एक लघु रूप निरूपित करके इसका विरोध किया। सिंगारवेलु का स्थानीय मूल का समाजवाद बॉम्बे के इन साम्यवादी आकाओं को खतरनाक प्रतीत हुआ। असल विभाजन इनमें सीधे-सीधे राजनीतिक मुद्दों पर हुआ। 1934 के चुनावों के अंतिम दौर में, चूंकि तब कोई समाजवादी पार्टी मौजूद नहीं थी, 'आत्मसम्मान आन्दोलन' को जस्टिस पार्टी और कांग्रेस में से किसी एक को चुनने की आवश्यकता आन खड़ी हुई, तब पेरियार ने जस्टिस पार्टी के पुनर्जीवन और उसके क्रांतिकारी स्वरूप में आत्मसम्मानवाद का भविष्य देखा, वामपंथ ने अपना भविष्य सिर्फ कांग्रेस में देखा, जिसे उन्होंने 1930 के मध्य तक आते हुए 'साम्राज्यवाद विरोधी समेकित मंच' के रूप में पहचाना। 1936 में उच्च जाति के मार्क्सवादी नेताओं ने सिंगारवेलु और अन्य कामरेड्स को पेरियार के आन्दोलन से अलग होकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में जाने का आदेश दिया, जो कि कांग्रेस का ही एक भाग थी, जिसमें साम्यवादी सदस्य कार्यरत थे।

इस विभाजन का परिणाम पेरियार और वामपंथियों दोनों के लिए भयानक हुआ। इसके बाद उनका रवैया ब्राह्मणवादी वामपंथ और कांग्रेस के राष्ट्रवाद के लिए और कठोर होता गया और वे उत्तरोत्तर रूप से भाषाई-क्षेत्रीय राष्ट्रवाद की तरफ झुकते गये। 1936 में पेरियार ने ढलती हुई जस्टिस पार्टी का नेतृत्व ग्रहण किया और इसे न केवल सामाजिक बदलाव के आन्दोलन में बल्कि द्रविड़ भाषा, संस्कृति और राष्ट्रवाद के वाहक के रूप में उस राष्ट्रवाद के विरुद्ध खड़ा किया, जो आर्य-ब्राह्मण-और उत्तर (भारतीय) राष्ट्रवाद था। उन्होंने 1937 में सरकारी स्कूलों में कांग्रेस द्वारा हिंदी के थोपे जाने के खिलाफ एक सशक्त आन्दोलन का नेतृत्व किया, और इसे 'आर्य राष्ट्रवाद' का एक अन्य दमनकारी कदम बताया। इसे हिंदी-हिन्दू-हिंदुस्तान के ब्राह्मणवादी षड्यंत्र की तरह देखते हुए उन्होंने अब तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषी लोगों के लिए दक्षिण में एक पृथक राष्ट्र के निर्माण की मांग की।

1940 में पेरियार की राजनीति पर एक आत्मनिर्भर जातिविहीन द्रविड़नाडु संघ की मांग हावी होने लगी। 1944 में उन्होंने द्रविड़ कज्हगम की स्थापना की, जिसका एक लक्ष्य द्रविड़ राष्ट्र की स्थापना करना था। हालांकि यहां यह नोट करना चाहिए कि एक सच्चे अर्थों में जातिविहीन समाज की स्थापना के लिए यह उनका जूनून ही था, जो उन्हें इस तरह की मांग उठाने की सीमा तक ले गया। यह नया समुदाय 'संस्कृति, सभ्यता के आधार ब्राह्मणवादी एवं जाति आधारित समाज से भिन्न होना

चाहिए था।' द्रविड़ संस्कृति इस भांति जाति के आधार पर तिरस्कृत सभी समुदायों के स्वीकार को रेखांकित करती थी। इसीलिये जब साझा आन्दोलन की संभावना पर विचार करने के लिए 1944 में अंबेडकर पेरियार से मिले तब अंबेडकर ने कहा कि द्रविड़ीस्तान का विचार वस्तुतः सम्पूर्ण भारत के लिए लागू होता है, क्योंकि ब्राह्मणवाद एक ऐसी समस्या है, जिसने समूचे उपमहाद्वीप को पीड़ित कर रखा है।

अपनी राजनीति और समतावादी दर्शन के उग्र विचार के कारण पेरियार अपने जीवनकाल में ही एक महानायक बन गए थे। जन समुदाय में अति लोकप्रिय पेरियार ने अंतिम सांस तक जातिवाद और ब्राह्मणवाद की संस्कृति के खिलाफ बहुआयामी संघर्ष को जारी रखा। जब 1973 में उनकी मृत्यु हुई, तब लगभग 35 लाख लोगों ने उनकी अंतिम क्रिया में शिरकत की।

(मूल अंग्रेजी से अनुवाद - संजय जोठे)

महिलाएं उन्हें कहती थीं पेरियार–'महान'

ललिता धारा

तमिलनाडु में 20वीं सदी के गैर-ब्राह्मण द्रविड़ आन्दोलन का लम्बा और उथल-पुथल से भरा इतिहास था। इसकी शुरुआत 1916 में जारी गैर-ब्राह्मण घोषणापत्र से मानी जा सकती है। इस अवधि में महिलाओं की स्थिति और जाति व्यवस्था से सम्बंधित सुधार हुए तो, परन्तु वे बहुत सीमित थे। सन 1917 में गैर-ब्राह्मणों की राजनीतिक और शैक्षणिक बेहतरी के लिए 'जस्टिस पार्टी' का गठन किया गया। सन 1920 के प्रांतीय चुनावों में यह पार्टी सत्ता में आयी और तमिलनाडु में पहली बार गैर-ब्राह्मण सरकार बनी। ईव्ही रामासामी, जिन्हें पेरियार के नाम से जाना जाता है, इतिहास के इस दौर के प्रमुख पात्र थे।

पेरियार की नेतृत्व क्षमता सन 1925 में शुरू हुए आत्माभिमान आन्दोलन में सामने आयी। इस आन्दोलन का लक्ष्य था गैर-ब्राह्मण जातियों को उनके द्रविड़ मूल पर गर्व करना सिखाकर उन्हें एक सूत्र में पिरोना। आन्दोलन के मूल सिद्धांत थे - ईश्वर, धर्म, कर्मकांडों व जाति का नकार। पेरियार ने इसमें एक और सूत्र जोड़ा - पितृसत्तामकता का नकार! आत्माभिमान आन्दोलन का अंतिम लक्ष्य था जाति-मुक्त समाज का निर्माण। इसके लिए उसे जाति व्यवस्था की सभी संरचनाओं से मुकाबला करना पड़ा। इनमें शामिल था ब्राह्मणवादी हिन्दू धर्म और ब्राह्मणवादी पितृसत्तामकता। पेरियार के संघर्ष की सबसे प्रमुख विशेषता यह थी कि अपने जीवन में उन्होंने इन सभी संस्थाओं से अलग-अलग समय पर व्यक्तिगत स्तर पर लोहा लिया। हर लड़ाई अलग-अलग तरीकों से लड़ी गई। पेरियार ने जहां ब्राह्मणवादी हिन्दू धर्म के विरुद्ध लड़ाई में तार्किकता को अपना हथियार बनाया वहीं पितृसत्तामकता का विरोध उन्होंने अपने इस दृढ़ विश्वास के आधार पर किया कि महिलाएं अपने आप में स्वतंत्र हैं और किसी के अधीन नहीं हैं।

अपने पूर्ववर्ती उच्च जातियों के समाज सुधारकों - जो महिलाओं से जुड़े मुद्दों पर पितृसत्तामकता के मूल ढांचे को चुनौती दिए बगैर विचार करते थे - के विपरीत,

पेरियार ने एकपत्निक परिवार और सतीत्व के मानकों को चुनौती दी, जो महिलाओं को गुलाम बनाते थे। चूंकि विवाह, महिलाओं के दासत्व का प्रतीक था, इसलिए उन्होंने जोर देकर कहा कि विवाह की संस्था को ही समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

पेरियार ने 1929 में आत्माभिमान विवाह (सेल्फ-रिस्पेक्ट मैरिज या एसआरएम) की जिस अवधारणा का विकास और प्रतिपादन किया, वह एक अनूठा मास्टर स्ट्रोक था। यह अवधारणा विवाह को दो व्यक्तियों के बीच एक ऐसे समझौते के रूप में देखती थी, जिसमें जाति, वर्ग या धर्म के लिए कोई जगह नहीं थी और जिसके लिए न तो पुरोहितों की आवश्कता थी और न ही अभिवावकों की सहमति की। इसमें विवाह सदा के लिए पवित्र बंधन न होकर दो समकक्ष व्यक्तियों के बीच समझौता था, जिसे दोनों में से कोई भी पक्ष जब चाहे समाप्त कर सकता था। विवाह स्वर्ग में ईश्वर द्वारा नहीं वरन धरती पर दो व्यक्तियों द्वारा परस्पर समझौते से निर्धारित किये जाते थे। आत्माभिमान विवाहों के मूल में थी लैंगिक समानता और अपने निर्णय स्वयं लेने का अधिकार। यह विचार और सोच के क्षेत्र में एक क्रांति और जागरूकता व आत्म-चेतना की एक लम्बी छलांग थी। कुल मिलाकर, पेरियार ने एक नयी महिला और एक नए पुरुष का सृजन किया।

पेरियार के जन्म के चार दशक पूर्व, फुले दम्पति ने महाराष्ट्र के पुणे में 'सत्यशोधक विवाह संस्कार' के नाम से एक क्रांतिकारी सोच प्रस्तुत की थी। इन विवाहों में कोई पंडित नहीं होता था और हिन्दू धार्मिक मंत्रों की जगह, वर और वधू, अपने लिए निर्धारित धर्मनिरपेक्ष मंत्रों का स्वयं जाप करते थे। इन मंत्रों में कोई लैंगिक भेदभाव नहीं था। यद्यपि पेरियार ने फुले का नाम भी नहीं सुना था, तथापि उन्होंने फुले के काम को ही आगे बढ़ाया।

आत्माभिमान विवाह समारोहों की अध्यक्षता पेरियार स्वयं करते थे और इससे उन्हें अपने स्त्रीवादी विचारों का प्रसार करने का मौका मिलता था। स्त्री-पुरुष संबंधों का कोई ऐसा पक्ष नहीं था जो उनकी नज़रों से छूटा हो। वे महिलाओं को सेक्स व प्रजनन के मामलों में असीमित व बिना शर्त स्वतंत्रता दिए जाने के हामी थे। उन्होंने पितृसत्तामकता के ध्वंस के लिए वह सब कुछ किया जो वे कर सकते थे। सोये हुए समाज को झकझोर कर उठाने के लिए उत्तेजक बयान देने में उन्हें विशेषज्ञता हासिल थी। एक बानगी देखिये - ''अगर इससे उनकी स्वतंत्रता में बाधा पड़ती हो तो महिलाओं को बच्चों को जन्म देना बंद कर देना चाहिए।'' वे बिना लागलपेट के कहते थे कि जब तक 'पितृसत्तात्मक पुरुषत्व' है तब तक महिलाएं स्वतंत्र नहीं हो सकतीं। वे चाहते थे कि 'सतीत्व' और 'चरित्र' जैसे मानक या तो महिला और पुरुष दोनों पर लागू होने चाहिए या किसी पर भी नहीं।

उनका कहना था कि माता-पिता को अपनी लड़कियों का पालन-पोषण उसी तरह करना चाहिए जैसा कि वे लड़कों का करते हैं। यहाँ तक कि लड़कों और

लड़कियों के नाम और उनका पहनावा भी एक जैसे होने चाहिये और लड़कियों को मुक्केबाजी और कुश्ती जैसों खेलों का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

जहां तक महिलाओं के लिए गर्भनिरोधकों के इस्तेमाल का सवाल है, उनकी मान्यता थी ये महिलाओं को स्वतंत्रता और उनके जीवन पर अधिकार देने के उपकरण हैं। पेरियार की यह सोच, उनके समकालीन अन्य सुधारकों से एकदम अलग थी, जो यह मानते थे कि महिलाओं के लिए गर्भनिरोधक उपायों का इस्तेमाल परिवार, समुदाय और राष्ट्र के हित में होना चाहिए। पेरियार का यह मानना था कि केवल और केवल महिलाओं को यह तय करने का अधिकार है कि वे बच्चे चाहतीं हैं या नहीं, यदि हां तो कब और विवाह बंधन के अन्दर या उसके बाहर। उन्होंने अपने ये विचार अलग-अलग भाषणों और लेखों में व्यक्त किये और इन्हें संकलित कर एक पुस्तिका की शक्ल में प्रकाशित किया गया, जिसका शीर्षक था, 'व्हाई द वुमन वाज एनस्लेव्ड' (महिला क्यों गुलाम बनी)।

वे उस काल में क्रांतिकारी स्त्रीवाद की भाषा में बात करते थे, जब पश्चिम के स्त्रीवादियों की दूसरी लहर ने इस शब्द को गढ़ा ही नहीं था।

आत्माभिमान विवाहों के अतिरिक्त, आत्माभिमान सम्मेलनों और युवा सम्मेलनों में भी पेरियार ने लैंगिक मुद्दों पर अपने विचार रखे। इन आयोजनों में पारित प्रस्ताव, महिला-समर्थक और लैंगिक न्याय पर आधारित हुआ करते थे।

इस आन्दोलन का एक अनूठा पक्ष यह था कि महिलाएं केवल महिला सम्मेलनों में ही नहीं, बल्कि सामान्य आत्माभिमान सम्मेलनों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। उनकी आयोजन में तो भूमिका होती ही थी, वे सम्मेलनों की अध्यक्षता भी करती थीं और प्रस्ताव भी प्रस्तुत करती थीं। आन्दोलन की महिला कार्यकर्ता, जाति और पितृसत्तामकता के परस्पर अन्योन्याश्रित संबंधों से अनभिज्ञ नहीं थीं। वे ब्राह्मणों के जातिगत दमन और पुरुषों के लैंगिक दमन को सदृश पाती थीं। वे यह मानती थीं कि धर्म, जातिगत और लैंगिक असमानताओं को वैध व औचित्यपूर्ण ठहराता है। आन्दोलन के साहित्य में उन्होंने अपने इन विचारों को स्वर दिया। ईवी रामासामी को 'पेरियार' या महान की उपाधि मद्रास में 1938 में आयोजित तमिलनाडु विमेंस कांफ्रेंस में दी गयी।

पेरियार घर और सार्वजनिक जीवन दोनों में महिलाओं को किसी घेरे में बंद रखने के हामी नहीं थे। वे जो कहते थे, वह करते भी थे। उन्होंने अपनी 13 वर्षीय नवविवाहिता पत्नी नगम्मल को उसकी 'थाली' या मंगलसूत्र का त्याग करने के लिए राजी किया। वे अपनी पत्नी से कहते थे कि वे उन्हें कामरेड कहकर संबोधित करें और जिन भी सभा-सम्मेलनों में वे जाते, उनकी पत्नी उनकी साथ होतीं थीं। उन्होंने ठीक यही व्यवहार अपनी बहन कन्नामल के साथ भी किया। यहाँ तक कि जब गांधीजी ने सन 1921 में शराबबंदी के समर्थन में ताड़ी की दुकानों पर धरना देने

का आह्वान किया, तब इरोड में आन्दोलन का नेतृत्व नगम्मल और कन्नामल ने किया। इस सबके बावजूद, सन 1933 में अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने इस बात पर गहन खेद व्यक्त किया कि वे अपने वैवाहिक जीवन में अपनी स्त्रीवादी विचारों का एक छोटा सा अंश भी लागू नहीं कर सके।

पेरियार के जीवन की एक अन्य महत्वपूर्ण घटना थी सन 1949 में 70 वर्ष की आयु में अपने से चालीस वर्ष छोटी मनिअम्मै से उनका पुनर्विवाह। मनिअम्मै छह वर्ष से उनकी निजी सचिव थीं। इस विवाह के लिए उनकी घोर निंदा और भर्त्सना हुई। परन्तु वे अविचलित रहे। पेरियार ने कहा कि उन्होंने यौन सुख के लिए विवाह नहीं किया है और यह भी कि यौन सुख प्राप्त करने के लिए विवाह करना आवश्यक भी नहीं है। उन्होंने कहा कि विवाह के पीछे उनका उद्देश्य अपनी वैचारिक, सांगठनिक और भौतिक विरासत को सुरक्षित हाथों में सौंपना है ताकि उनका काम आगे बढ़ सके। उन्होंने रूढ़िवाद के खिलाफ अपनी लम्बी और अथक लड़ाई की विरासत एक युवा महिला को सौंपी।

यह स्त्रीवाद के प्रति उनकी आचरणगत प्रतिबद्धता का सबसे बड़ा प्रमाण था।

(मूल अंग्रेजी से अनुवाद - अमरीश हरदेनिया)

सामाजिक परिवर्तन के आंदोलनों में पेरियार का स्थान

टी. थमराईकन्नन

दलित-बहुजन संघर्ष के लिए पेरियार के महत्व को समझने से पूर्व उनके पूर्व के ऐसे गैरब्राह्मण आंदोलनों पर एक संक्षिप्त दृष्टि डाल लेना उचित होगा, जिनका प्रभाव भारत पर, विशेषकर दक्षिण भारत पर रहा है।

700-600 ईसा पूर्व के आसपास, प्रवासी आर्यों द्वारा वैदिक संस्कृति लादे जाने के विरुद्ध में कई गैर-ब्राह्मण विद्रोह हुए। परीविराजकर व लोगायथ जैसे समूहों ने वैदिक रीति-रिवाजों के खिलाफ सघन अभियान चलाया। कनाथर, कबीलर, बुद्ध व महावीर जैसे नेताओं व बुद्धम, श्रमणम व अचीवगम जैसे वैदिक-विरोधी संगठनों ने सामाजिक न्याय के इस अभियान में हिस्सेदारी की।

दूसरी ओर, चेरा इमायावरंबन नेदुनचेरलाथन, चैजा पेरूनारकिल्लई व पंडिया पलयगसलई मुथ्थुकुद्दुमी पेरूवलूथि जैसे शासकों ने आर्यों का साथ दिया और वैदिक संस्कृति को अपना लिया। इन शासकों ने ब्राह्मणों को यज्ञ करने के लिए ढेर सारी भूमि, धन व स्वर्ण दान में दी। जल्दी ही ब्राह्मण, शासकों के शक्तिशाली सलाहकार (राजगुरू) बन गए।

दूसरी सदी ईसा पूर्व व पहली सदी ईस्वी के बीच संकलित संगम साहित्य में बौद्ध और श्रमण परंपरा के तत्व देखे जा सकते हैं। 'मदुरई कांची' व 'पट्टीनापल्लई' जैसी काव्य रचनाओं से ज्ञात होता है कि तमिलनाडु में बौद्ध व श्रमण परंपरा कितनी समृद्ध थी। तमिल साहित्य के पांच महाकाव्यों में से दो 'मणिमेकलई'व 'कुण्डाकेसी' में वैदिक-विरोधी परंपराओं की झलक मिलती है।

अंग्रेजों के आने के बाद मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के जरिए 'द्विशासन'व्यवस्था अस्तित्व में आई। मद्रास प्रेसीडेंसी के ब्राह्मणों ने आईसीएस, राजनीतिक दलों, शिक्षा, मीडिया आदि के क्षेत्रों में घुसपैठ कर ली और इस प्रकार सामाजिक पदक्रम में अपना उच्च स्थान बनाए रखा। सभी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक अधिकारों

से वंचित गैर-ब्राह्मणों (शूद्र, पंचमा) को सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष शुरू करना पड़ा। डॉ. नटेसन, डॉ. टीएम नायर व सर पी. थियागरायर जैसे प्रमुख गैर-ब्राह्मण राजनेताओं ने कई बैठकों और संगोष्ठियों का आयोजन किया और 20 नवंबर 1916 को 'साऊथ इंडियन लिबरल फेडरेशन'का गठन किया।

सन् 1920 में, साऊथ इंडियन लिबरल फेडरेशन, जिसका नाम बदलकर जस्टिस पार्टी कर दिया गया था, ने मद्रास प्रेसीडेंसी में पहले प्रत्यक्ष चुनाव में सफलता प्राप्त कर अपनी सरकार बनाई। यह पार्टी अगले 16 साल तक सत्ता में रही। 16 सितंबर, 1921 को सरकार ने गैर-ब्राह्मणों के लिए नौकरियों में आरक्षण की घोषणा की, यद्यपि इस आदेश को 1928 में मुथ्थया मुथलियार द्वारा लागू किया जा सका।

पेरियार व जस्टिस पार्टी

पेरियार ने 1925 में स्वाभिमान आंदोलन शुरू किया। यद्यपि यह आंदोलन चुनावी राजनीति से दूर रहा तथापि वह शासक जस्टिस पार्टी का पथप्रदर्शन करता रहा। पेरियार ने कई पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जिनमें 'कुडियारसू', 'पुरात्ची', 'पगाथरिवू', व 'रिवोल्ट' शामिल थीं। पेरियार ने अपने लेखों के जरिए आमजनों को बताया कि किस प्रकार वेदों, शास्त्रों, ईश्वर में आस्था, संस्कारों व कर्मकाण्डों के नाम पर उनका शोषण किया जा रहा है और उन्हें हाशिए पर धकेला जा रहा है। उन्होंने गैर-ब्राह्मणों को आरक्षण सहित अन्य कानूनी रास्तों से सामाजिक न्याय दिलवाने का प्रयास किया। जब जस्टिस पार्टी सत्ता में थी, तब मुख्यमंत्री समय-समय पर पेरियार से विचार-विमर्श करते रहते थे।

जस्टिस पार्टी का शासनकाल आरक्षण के लिए तो याद किया ही जाता है, वह इसलिए भी याद किया जाता है क्योंकि इस सरकार ने कई आदेश जारी कर दलितों को उनके अधिकार दिलवाए। इनमें हिन्दू मंदिरों में प्रवेश का अधिकार, मुख्य सड़कों पर चलने का अधिकार, बस में यात्रा करने का अधिकार, थियेटरों में प्रवेश का अधिकार और सार्वजनिक तालाबों से पीने का पानी लेने का अधिकार शामिल था। शिक्षा में भेदभाव को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। इसके अतिरिक्त, इस सरकार ने म्यूनिसिपल स्कूलों के विद्यार्थियों के लिए मुफ्त मध्याह्न भोजन की शुरूआत की और महिलाओं को वोट देने और चुनाव लड़ने का अधिकार दिया।

हिन्दू मंदिरों में चढ़ाए जाने वाले चढ़ावे को ब्राह्मण आपस में बांट लिया करते थे। जस्टिस पार्टी, देश की पहली ऐसी राज्य सरकार थी, जिसने हिन्दू धर्म से संबंधित चैरिटेवल ट्रस्ट की स्थापना की जो मंदिरों के धन का व्यवस्थापन करता था और इस धन को सरकार के कल्याण कार्यक्रमों पर खर्च किया जाता था।

आजादी ने खत्म किया आरक्षण

सन् 1935 में पेरियार ने सरकार से यह अपील की कि वह राज्य सरकार की संस्थाओं की तरह मद्रास प्रेसीडेन्सी में स्थित केन्द्र सरकार की सभी संस्थाओं में आरक्षण की व्यवस्था लागू करे। इस व्यवस्था के अंतर्गत 14 प्रतिशत पद ब्राह्मणों के लिए, 44 प्रतिशत गैर-ब्राह्मणों के लिए व 14 प्रतिशत दलितों के लिए आरक्षित किए जाते थे। तत्कालीन मुख्यमंत्री राजा सर बोबली ने इस अपील को केन्द्र सरकार को अग्रेषित कर दिया। पेरियार और राजा सर बोबली के सघन प्रयासों से केन्द्र सरकार की संस्थाओं में 72 प्रतिशत आरक्षण लागू हो गया। यह ऐतिहासिक सरकारी आदेश, देश में ब्रिटिश शासन समाप्त होने तक लागू रहा। परंतु भारत के 'स्वतंत्र' होने के कुछ ही समय बाद, भारत के ब्राह्मणवादी प्रशासकों ने इस आदेश को वापिस ले लिया।

पेरियार ने पहले ही यह भविष्यवाणी की थी कि ऐसा होगा। उन्होंने 'विदुथलई' नामक दैनिक समाचारपत्र में दो लेख लिखे थे। एक का शीर्षक था '15 अगस्त : वर्णाश्रम शासन के नए युग का उदय' व दूसरे का 'अगस्त 15 अगस्त : ब्रिटिश-बनिया-ब्राह्मण संविदा (गठजोड) दिवस'।

प्रथम संवैधानिक संशोधन

यह सन् 1950 की बात है। एक ब्राह्मण महिला शेनबागुम दुरईसामी को एक चिकित्सा महाविद्यालय में इसलिए प्रवेश नहीं दिया गया क्योंकि वह निर्धारित आयु सीमा पार कर चुकी थी। दुरईसामी ने इसके लिए आरक्षण को दोषी ठहराते हुए मद्रास उच्च न्यायालय में एक याचिका दायर कर, आरक्षण की व्यवस्था को रद्द करने की मांग की। इसी वर्ष की 28 जुलाई को मद्रास उच्च न्यायालय ने उसके पक्ष में अपना निर्णय सुना दिया। बाद में उच्चतम न्यायालय ने इस फैसले के खिलाफ अपील को खारिज कर दिया। इस तरह, आरक्षण की व्यवस्था अचानक समाप्त हो गई। यह महत्वपूर्ण है कि शेनबागुम के वकील अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर थे जो कि संविधानसभा के सदस्य रह चुके थे।

मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय के एक सप्ताह के भीतर, 6 अगस्त 1950 को पेरियार ने मद्रास राज्य के लोगों से यह अपील की कि वे अपने अधिकारों को फिर से पाने के लिए संघर्ष शुरू करें। पूरे प्रदेश में विरोध प्रदर्शन हुए। पेरियार ने 14 अगस्त, 1950 को आम हड़ताल का आहवान किया और वह जबरदस्त सफल रही। उन्होंने सरदार वल्लभभाई पटेल से अनुरोध किया कि आरक्षण अधिकारों की पुर्नस्थापपना की जाए। सरकार ने उनकी अपील पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 (धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म-स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध) में संशोधन किया। अनुच्छेद 15(1) कहता है कि 'राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध

केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा'। अनुच्छेद 29(2) के अनुसार, 'राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा'। अनुच्छेद 15 में खण्ड (4) जोड़ा गया जो कहता है, 'इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात, राज्य को सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिको के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से नहीं रोकेगी'।

इस प्रकार, पेरियार ने आरक्षण की व्यवस्था को समाप्त करने के षड्यंत्र को विफल कर इसके लिए संवैधानिक व्यवस्था करवा दी। अगर तीस शब्दों का यह खण्ड संविधान में नहीं जोड़ा गया होता तो तमिलों की कई पीढियां शिक्षा से वंचित रह जातीं और शेष भारत को रास्ता दिखाने वाला कोई राज्य न होता और ना ही सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण का प्रावधान हो पाता। पेरियार के कारण ही अब भारत के पिछड़े वर्गों की आने वाली पीढ़ियां शिक्षा से वंचित नहीं रहेंगी।

पेरियार की प्रासंगिकता

सत्य सागर

पेरियार के दर्शन, उनके कार्यों और लोगों को एक करने के उनके तरीकों को समझे बिना, ऊंची जातियों के वर्चस्व का प्रतिनिधित्व करने वाली सांस्कृतिक तक वर्चस्व की मनुवादी विचारधारा और साम्प्रदायिक व अंधकारवादी शक्तियों को चुनौती देना संभव नहीं है।

बीसवीं सदी की शुरुआत में, पूरे देश की तरह, तमिलनाडु में भी राजनीति, प्रशासन और शिक्षा व्यवस्था पर ब्राह्मणों का संपूर्ण वर्चस्व था। उदाहरण के लिए, 1870 से 1900 के बीच कालेजों से पढ़कर निकलने वाले स्नातकों में से 70 प्रतिशत ब्राह्मण थे जबकि आबादी में उनका हिस्सा मात्र 3.2 प्रतिशत था। सन 1912 में, 55 प्रतिशत डिप्टी कलेक्टर, 82.3 प्रतिशत उप-न्यायाधीश और 72.6 प्रतिशत मुंसिफ ब्राह्मण थे। इसके विपरीत, गैर-ब्राह्मणों की कहीं बड़ी आबादी की इन पदों में हिस्सेदारी क्रमशः 2.5, 16.7 और 19.5 प्रतिशत थी। इस वर्चस्व का कारण ब्रिटिश-पूर्व काल से समाज में ब्राह्मणों को प्राप्त उच्च दर्जे के अलावा यह भी था कि तमिलनाडु में ब्राह्मणों ने अन्य जातियों की तुलना में अधिक संख्या में और गंभीरता व परिश्रम से अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण की। पेरियार ने अन्य राजनैतिक शक्तियों के साथ मिलकर यह मांग की कि शासकीय सेवाओं और शैक्षणिक संस्थानों में गैर-ब्राह्मणों के लिए आनुपातिक आरक्षण हो। ब्राह्मण लॉबी के कड़े विरोध के बावजूद, मद्रास राज्य, जो कि वर्तमान तमिलनाडु का पूर्ववर्ती था, में सन 1928 में आरक्षण व्यवस्था लागू कर दी गयी। मद्रास, ऐसा करने वाला देश का पहला प्रान्त था।

सन 1950 में उच्चतम न्यायालय ने इस आरक्षण को असंवैधानिक घोषित कर दिया। इसके बाद पेरियार के नेतृत्वे में तमिलनाडु में इतना जबरदस्त आन्दोलन भड़का कि मजबूर होकर जवाहरलाल नेहरु सरकार को प्रथम संवैधानिक संशोधन के ज़रिये, सरकारों को यह अधिकार देना पड़ा कि वह कमज़ोर वर्गों के लिए

आरक्षण सहित अन्य 'विशेष प्रावधान' कर सकती हैं।

रोजग़ार व शिक्षा के क्षेत्रों में गैर-ब्राह्मणों को पर्याप्त अवसर उपलब्ध करवाने के अतिरिक्त, पेरियार ने जाति व्यवस्था के सैद्धांतिक आधार को भी चुनौती दी। जाति व्यवस्था को वेद व अन्य हिन्दू धर्मग्रन्थ जैसे पुराण और रामायण व महाभारत जैसे महाकाव्य वैधता प्रदान करते हैं।

पेरियार व उनके द्वारा स्थापित द्रविड़ कषगम से सम्बद्ध अध्येताओं ने इन धार्मिक ग्रंथों के विरोधाभासों, पूर्वाग्रहों व अनैतिक अवधारणाओं को विस्तार से आमजनों के सम्मुख प्रस्तुत किया और यह बताया कि किस प्रकार ये ग्रंथ जाति व्यवस्था को धार्मिक मान्यता प्रदान करते हैं।

पेरियार के अनुसार, रामायण, दरअसल, मध्य एशिया से आये आर्यों की भारत के मूल निवासियों-मुख्यतः द्रविड़ों-पर विजय की कथा है। तमिलनाडु के ब्राह्मणों ने आर्यों की 'सांस्कृतिक श्रेष्ठता' की मैक्समूलर की अवधारणा का इस्तेमाल, अपने वर्चस्व को औचित्यपूर्ण सिद्ध करने कि लिए किया। द्रविड़ आन्दोलन ने इस अवधारणा को अपनी राजनीति का प्रस्थान बिन्दु बनाया।

नायक के रूप में रावण

रामायण की द्रविड़ व्याख्या के अनुसार, इस महाकाव्य का नायक राम आक्रान्ता खलनायक है और तथाकथित 'दैत्यराज' रावण, राम के आक्रमण का शिकार है। द्रविड़ आन्दोलन के शुरूआती दौर में लिखी गयी 'रावण काव्यम्', रावण के गुणों की प्रशंसा से भरी हुई है। द्रविड़ कषगम कार्यकर्ता और फिल्मी दुनिया से जुड़े एमआर राधा की रामायण पर पैरोडी, रावण को एक महानायक निरुपित करती है। उन दिनों, द्रविड़ कार्यकर्ता आमसभाओं में रामायण की प्रतियाँ सार्वजनिक रूप से जलाया करते थे क्योंकि उनका कहना था कि उसमें द्रविड़ों को 'राक्षस' और ज्यादा से ज्यादा, राम के सहायक बन्दर और भालू बताया गया है।

द्रविड़ आन्दोलन के अध्येता एमएमएस पांडियन ने लिखा है कि 'रावण के प्रतीक के इस्तेमाल ने तमिलों को गैर-संस्कृत, क्षेत्रीय संस्कृति पर गर्व करना सिखाया और इसने ब्राह्मणवाद-विरोधी लहर का सृजन करने में मदद की। रावण, दरअसल, अपनी आर्य जड़ों पर गर्वित भारतीय राष्ट्रवाद को, अलग-थलग महसूस कर रहे दक्षिण भारत का प्रतिउत्तर था।'

यद्यपि वे धर्म के विरोधी थे तथापि वे हिंदू मंदिरों के गर्भगृह में गैर-ब्राह्मणों के प्रवेश के अधिकार के पैरोकार थे। उनका तर्क था कि गैर-ब्राह्मणों को मंदिरों के गर्भगृह में प्रवेश करने से रोकना, एक प्रकार से उन्हें मनुष्य के दर्जे से वंचित करना होगा। सन् 1970 में तमिलनाडु की सीएन अन्नादुराई के नेतृत्व वाली द्रविण मुनेत्र कषगम सरकार ने एक कानून बनाया, जिसके तहत सभी जातियों के लोगों को

मंदिरों का पुजारी बनने का अधिकार प्राप्त हो गया। तमिलनाडु ऐसा करने वाला देश का पहला राज्य था।

द्रविड़ आंदोलन की सफलता का एक महत्वपूर्ण कारण था लोगों को जागृत करने के लिए भाषा और संस्कृति का चतुराईपूर्ण व प्रभावकारी उपयोग। आंदोलन के कई नेता न केवल प्रभावी वक्ता थे वरन् उच्च कोटि के कवि, संगीतज्ञ, कलाकार और लेखक भी थे। भारत सरकार द्वारा दक्षिणी राज्यों पर हिंदी थोपने का द्रविड़ आंदोलन ने विरोध किया। यह स्वाभाविक था क्योंकि आंदोलन का आधार ही आमजनों को तमिल भाषा और संस्कृति पर गर्व करने के लिए प्रेरित करना था। पेरियार ने इस मुद्दे पर एक अलग 'द्रविणनाडु' की स्थापना के लिए संघर्ष शुरू करने की धमकी भी दी थी।

हिंदी के मुद्दे पर उठे शक्तिशाली आंदोलन ने डीएमके-जो कि पेरियार की द्रविड़ कषगम से टूटकर बनी पार्टी थी- को 1967 के चुनाव में सत्ता दिलवाई। तमिलनाडु में अलगाववाद की जड़ें जमने के डर और जबरदस्त हिंदी-विरोधी आंदोलन के चलते, भारत सरकार द्रविड़ आंदोलन की मांगों को गंभीरता से लेने पर मजबूर हो गई और आर्थिक व राजनैतिक मोर्चों पर तमिलनाडु को कई विशेष रियायतें और सुविधाएं दी गई।

सामाजिक मोर्चे पर आम आदमी की रोजाना की जिंदगी में ब्राह्मणों की भूमिका कम करने के उद्देश्य से पेरियार ने 'स्वाभिमान विवाहों' का आयोजन शुरू किया, जिनमें किसी भी धर्म के महिला और पुरुष विवाह कर सकते थे। इन समारोहों में किसी धर्म का कोई पुरोहित नहीं रहता था और ये पूरी तरह से धर्मनिरपेक्ष होते थे। विवाह केवल एक-दूसरे को माला पहनाकर संपन्न हो जाता था। इन विवाहों को कानूनी दर्जा देने के लिए डीएमके सरकार ने सन् 1967 में एक विशेष अधिनियम लागू किया।

पेरियार की विरासत को उनके गुजर जाने के बाद तोड़े-मरोड़े जाने के बावजूद, बिना किसी अतिश्योक्ति के यह कहा जा सकता है कि द्रविड़ आंदोलन, आधुनिक भारतीय इतिहास के सबसे सफल सामाजिक परिवर्तन का वाहक था और इस परिवर्तन का विस्तार जाति, शिक्षा, भाषा व लैंगिक अधिकारों से जुड़े सभी मुद्दों तक था। मुख्यतः पेरियार के कारण ही तमिलानाडु देश का एकमात्र ऐसा राज्य बन सका है जहां ब्राह्मणों का राजनीति और समाज पर वर्चस्व नहीं है और ना ही ब्राहम्ण, सांस्कृतिक 'श्रेष्ठता' के मानक माने जाते हैं।

आमजनों में तमिल भाषा के प्रति गर्व का भाव उत्पन्न होने से उनकी मातृभाषा में साहित्य सृजन को प्रोत्साहन मिला और द्रविड़ आंदोलन के समाजवादी झुकाव के कारण राज्य, देश की सर्वश्रेष्ठ प्राथमिक स्वास्थ्य अधोसंरचना का निर्माण करने में सफल हो सका। तमिलनाडु में साम्प्रदायिकता की समस्या न के बराबर है और

ब्राह्मणवादी शक्तियां अपनी पूरी कोशिश के बावजूद वहां जड़ें नहीं जमा सकी हैं।

ये सभी उपलब्धियां एक ऐसे अहिंसक आंदोलन के जरिए हासिल की गई, जिसकी सफलता के पीछे थे शोध-आधारित तर्क, रचनात्मक संवाद तकनीकें और आम लोगों को जोड़ने के नवोन्मेषी तरीके। द्रविड़ आंदोलन पूरे देश के लिए एक मॉडल है जिसके जरिए जाति व्यवस्था की बर्बरता से मुकाबला कर एक ऐसे समाज का निर्माण किया जा सकता है जहां उच्च जाति के हिन्दुओं की तानाशाही की बजाए तर्कवाद और प्रजातंत्र का राज होगा। शायद यही कारण रहा होगा कि सन् 1970 में उन्हें जब यूनेस्को ने एक पुरस्कार से नवाजा तो उसके प्रशस्तिपत्र में कहाकि 'पेरियार, नए युग के पैगम्बर। दक्षिण एशिया के सुकरात। समाजसुधार आंदोलन के पितामह। अज्ञानता, अंधविश्वास, अर्थहीन परंपराओं और घटिया रिवाजों के कट्टर शत्रु'।

पेरियार की दृष्टि में रामकथा

सुरेश पंडित

राम हिन्दुओं के लिये आदर्श महापुरुष ही नहीं परम पूजनीय देवता भी हैं। उनके जीवन को लेकर जितनी बड़ी संख्या में हिन्दी, संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में रामकाव्य लिखा गया है, वह उनको अतिमानवीय तो प्रदर्शित करता ही है, दुनिया भर के सारे अनुकरणीय गुणों से सम्पन्न भी दिखाता है। यदि कोई समस्त श्रेष्ठ विशेषणों से विभूषित धीरोदात्त नायक की छवि को अविकल रूप में देखना चाहता है तो उसकी यह इच्छा राम पर लिखे किसी भी महाकाव्य को पढ़ कर पूरी हो सकती है। इसलिये उन पर लिखे गये काव्यों को न केवल भक्ति भाव से पढ़ा व सुना जाता है बल्कि उनके चरित्र की रंगमंच प्रस्तुति को भाव विभोर होकर देखा भी जाता है। लेकिन ऐसे भी लोग हैं और उनकी संख्या निश्चय ही नगण्य नहीं है, जो राम के इस महिमा मंडन से अभिभूत नहीं होते और उनकी सर्वश्रेष्ठता को चुनौती देते हैं। उन्हें लगता है कि राम को पुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित करने की हठीली मनोवृत्ति ने जान बूझकर उनके आसपास विचरने वाले चरित्रों को बौना बनाया है, साथ ही उनका विरोध करने वालों को दुनिया की सारी बुराइयों का प्रतीक बनाकर लोगों की नजरों में घृणास्पद भी बना दिया है। ऐसे लोग जब पत्र-पत्रिकाओं या पुस्तकों के जरिये अपनी बात रखने लगते हैं, तो उन्हें नास्तिक, धर्मद्रोही एवं बुराई के प्रतीक रावण का वंशज घोषित कर उनकी आवाज को दबाने की कोशिश की जाती है और अधिसंख्य हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को आहत करने की कुचेष्टा बताकर प्रतिबन्धित कर दिया जाता है। लेकिन सारे खतरों का मुकाबला करते हुए भी लोग अपनी बात कहने से चूकते नहीं। राम के आदर्श चरित्र का गुणगान करने वाली सैकड़ों रामकथाओं के बरक्स कई ऐसी किताबें आई हैं या आ रही हैं जो रामायण की अपने ढंग से व्याख्या करती हैं और राम के विशालकाय व्यक्तित्व के सामने निरीह या दुष्ट बनाये गये चरित्रों की व्यथा कथा कहती हैं। राम के चरित्रगत दोषों को उजागर कर वे इन उपेक्षित, उत्पीड़ित लोगों के अपने प्रति हुए अन्यायों,

अत्याचारों को सामने रखती हैं। ऐसी ही एक किताब का नाम है 'सच्ची रामायाण', जिसे 14 सितम्बर 1999 को महज इस वजह से इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने अस्थायी तौर पर प्रतिबंधित कर दिया था, क्योंकि वह अधिकतर अन्य रामायणों की तरह राम के विश्ववन्द्य स्वरूप को ज्यों का त्यों प्रस्तुत नहीं करती।

इस रामायण के लेखक हैं ई. वी. रामास्वामी पेरियार।

उन्होंने तमिल में एक पुस्तक लिखी, जिसमें वाल्मीकि द्वारा प्रणीत एवं उत्तर भारत में विशेष रूप से लोकप्रिय रामायण की इस आधार पर कटु आलोचना की कि इसमें उत्तर भारत की आर्य जातियों को अत्यधिक महत्व दिया गया है और दक्षिण भारतीय द्रविड़ों को क्रूर, हिंसक, अत्याचारी जैसे विशेषण लगाकर न केवल अपमानित किया गया है बल्कि राम-रावण कलह को केन्द्र बनाकर राम की रावण पर विजय को दैवी शक्ति की आसुरी शक्ति पर, सत्य की असत्य पर और अच्छाई की बुराई पर विजय के रूप में गौरवान्वित किया गया है। इसका अंग्रजी अनुवाद 'द रामायण : ए टू रीडिंग' के नाम से सन् 1959 में किया गया। इस अंग्रेजी अनुवाद का हिन्दी में रूपान्तरण 1968 में 'रामायण : एक अध्ययन' के नाम से किया गया। उल्लेखनीय है कि ये तीनों ही संस्करण काफी लोकप्रिय हुए, क्योंकि इसके माध्यम से पाठक अपने आदर्श नायक-नायिकाओं के उन पहलुओं से अवगत हुए जो अब तक उनके लिये वर्जित एवं अज्ञात बने हुए थे। ध्यान देने योग्य तथ्य यह सामने आया कि इनकी मानवोचित कमजोरियों के प्रकटीकरण ने लोगों में किसी तरह का विक्षोभ या आक्रोश पैदा नहीं किया, बल्कि इन्हें अपने जैसा पाकर इनके प्रति उनकी आत्मीयता बढ़ी और अन्याय, उत्पीड़न ग्रस्त पात्रों के प्रति सहानुभूति पैदा हुई।

लेकिन जो लोग धर्म को व्यवसाय बना राम कथा को बेचकर अपना पेट पाल रहे थे, उनके लिये यह पुस्तक आंख की किरकिरी बन गई। क्योंकि राम को अवतार बनाकर ही वे उनके चमत्कारों को मनोग्राह्य और कार्यों को श्रद्धास्पद बनाये रख सकते थे। यदि राम सामान्य मनुष्य बन जाते हैं और लोगों को कष्टों से मुक्त करने की क्षमता खो देते हैं तो उनकी कथा भला कौन सुनेगा और कैसे उनकी व उन जैसों की आजीविका चलेगी! इसीलिये प्रचारित यह किया गया कि इससे सारी दुनिया में बसे करोड़ों राम भक्तों की भावनाओं के आहत होने का खतरा पैदा हो गया है। इसलिए इस पर पाबन्दी लगाया जाना जरूरी है। और पाबन्दी लगा भी दी गई। लेकिन उसी न्यायालय ने बाद में अस्थायी प्रतिबंध को हटा दिया और अपने फैसले में स्पष्ट कहा - ''हमें यह मानना संभव नहीं लग रहा है कि इसमें लिखी बातें आर्य लोगों के धर्म को अथवा धार्मिक विश्वासों को चोट पहुंचायेंगी। ध्यान देने लायक तथ्य यह है कि मूल पुस्तक तमिल में लिखी गई थी और इसका स्पष्ट उद्देश्य तमिल भाषी द्रविड़ों को यह बताना था कि रामायण में उत्तर भारत के आर्य-

राम, सीता, लक्ष्मण आदि का उदात्त चरित्र और दक्षिण भारत के द्रविड़-रावण, कुंभकरण, शूर्पणखा आदि का घृणित चरित्र दिखा कर तमिलों का अपमान किया गया है। उनके आचरणों, रीति-रिवाजों को निन्दनीय दिखलाया गया है। लेखक का उद्देश्य जानबूझकर हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुंचाने की बजाय अपनी जाति के साथ हुए अन्याय को दिखलाना भी तो हो सकता है। निश्चय ही ऐसा करना असंवैधानिक नहीं माना जा सकता। ऐसा करके उसने उसी तरह अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के संवैधानिक अधिकार का उपयोग किया है, जैसे रामकथा प्रेमी आर्यों को श्रेष्ठ बताकर करते आ रहे हैं। इस तरह तो कल दलितों का वह सारा साहित्य भी प्रतिबंधित हो सकता है जो दलितों के प्रति हुए अमानवीय व्यवहार के लिये खुल्लम-खुल्ला सवर्ण लोगों को कठघरे में खड़ा करता है।''

पेरियार की इस पुस्तक को तमिल में छपे लगभग 50 साल और हिन्दी, अंग्रेजी में छपे लगभग तीन दशक हो चले हैं। अब तक इसके पढ़ने से कहीं कोई हिंसक प्रतिक्रिया नहीं दर्ज हुई है। फिर अब ऐसी कौन सी नई परिस्थितियां पैदा हो गई हैं कि इससे हिन्दू समाज खतरा महसूस करने लगा है? यह कैसे हो सकता है कि संविधान लोगों को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार तो दे परन्तु धर्म के बारे में कुछ भी पढ़ने व जानने के अधिकार पर अंकुश लगा दे। यह कैसे न्यायसंगत हो सकता है कि लोग रामायण, महाभारत, गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों को तो पढ़ते रहें पर उनकी आलोचनाओं को पढ़ने से उन्हें रोक दिया जाय। जहां तक जनभावनाओं का सवाल है, इसका इकरतफा पक्ष नहीं हो सकता। यदि राम और सीता की आलोचना से लोगों को चोट लगती है तो शूद्रों, दलितों व स्त्रियों के बारे में जो कुछ हिन्दू धर्म ग्रन्थों में लिखा गया है क्या उससे वे आहत नहीं होते? यह बात भी विचारणीय है।

वस्तुतः पेरियार की 'सच्ची रामायण' ऐसी अकेली रामायण नहीं है, जो लोक प्रचलित मिथकों को चुनौती देती है और रावण के बहाने द्रविड़ों के प्रति किये गये अन्याय का पर्दाफाश कर उनके साथ मानवोचित न्यायपूर्ण व्यवहार करने की मांग करती है। दक्षिण से ही एक और रामायण अगस्त 2004 में आई है, जो उसकी अंतर्वस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करती है और पूरी विश्वासोत्पादक तार्किकता के साथ प्रमाणित करती है कि राम में और अन्य राजाओं में चरित्रिक दृष्टि से कहीं कोई फर्क नहीं है। वह भी अन्य राजाओं की तरह प्रजाशोषक, साम्राज्य विस्तारक और स्वार्थ सिद्धि हेतु कुछ भी कर गुजरने के लिये सदा तत्पर दिखाई देते हैं। परन्तु यहां हम पेरियार की नजरों से ही वाल्मीकि की रामायण को देखने की कोशिश करते हैं।

वाल्मीकि रामायण में अनेक प्रसंग ऐसे हैं, जो तर्क की कसौटी पर तो खरे उतरते ही नहीं। जैसे वह कहती है कि दशरथ 60 हजार बरस तक जीवित रह चुकने पर भी कामवासना से मुक्त नहीं हो पाये। इसी तरह वह यह भी प्रकट करती

है कि उनकी केवल तीन ही पत्नियां नहीं थीं। इन उद्धरणों के जरिये पेरियार दशरथ के कामुक चरित्र पर से तो पर्दा उठाते ही हैं, यह भी साबित करते हैं कि उस जमाने में स्त्रियां केवल भोग्या थीं। समाज में इससे अधिक उनका कोई महत्व नहीं था। दशरथ को अपनी किसी स्त्री से प्रेम नहीं था, क्योंकि यदि होता तो अन्य स्त्रियों की उन्हें आवश्यकता ही नहीं होती। सच्चाई यह भी है कि कैकेयी से उनका विवाह ही इस शर्त पर हुआ था कि उससे पैदा होने वाला पुत्र उनका उत्तराधिकारी होगा। इस शर्त को नजरन्दाज करते हुए जब उन्होंने राम को राजपाट देना चाहा तो वह उनका गलत निर्णय था। राम को भी पता था कि असली राजगद्दी का हकदार भरत है, वह नहीं। यह जानते हुए भी वह राजा बनने को तैयार हो जाते हैं। पेरियार के मतानुसार यह उनके राज्यलोलुप होने का प्रमाण है।

कैकेयी जब अपनी शर्तें याद दिलाती है और राम को वन भेजने की जिद पर अड़ जाती है, तो दशरथ उसे मनाने के लिये कहते हैं - 'मैं तुम्हारे पैर पकड़ लेने को तैयार हूं यदि तुम राम को वन भेजने की जिद को छोड़ दो।' पेरियार एक राजा के इस तरह के व्यवहार को बहुत निम्नकोटि का करार देते हैं और उन पर वचन भंग करने तथा राम के प्रति अन्धा मोह रखने का आरोप लगाते हैं।

राम के बारे में पेरियार का मत है कि वाल्मीकि के राम विचार और कर्म से धूर्त थे। झूठ, कृतघ्नता, दिखावटीपन, चालाकी, कठोरता, लोलुपता, निर्दाष लोगों को सताना और कुसंगति जैसे अवगुण उनमें कूट-कूट कर भरे थे। पेरियार कहते हैं कि जब राम ऐसे ही थे और रावण भी ऐसा ही था तो फिर राम अच्छे और रावण बुरा कैसे हो गया?

उनका मत है कि चालाक ब्राह्मणों ने इस तरह के गैर ईमानदार, निर्वीर्य, अयोग्य और चरित्रहीन व्यक्ति को देवता बना दिया और अब वे हमसे अपेक्षा करते हैं कि हम उनकी पूजा करें। जबकि वाल्मीकि स्वयं मानते हैं कि राम न तो कोई देवता थे और न उनमें कोई दैवी विशेषताएं थी। लेकिन रामायण तो आरम्भ ही इस प्रसंग से होती है कि राम में विष्णु के अंश विद्यमान थे। उनके अनेक कृत्य अतिमानवीय हैं। जैसे उनका लोगों को शापमुक्त करना, जगह-जगह दैवी शक्तियों से संवाद करना आदि। क्या ये काम उनके अतिमानवीय गुणों से संपन्न होने को नहीं दर्शाते?

उचित प्यार और सम्मान न मिलने के कारण सुमित्रा और कौशल्या दशरथ की देखभाल पर विशेष ध्यान नहीं देतीं थी। वाल्मीकि रामायण के अनुसार जब दशरथ की मृत्यु हुई तब भी वे सो रही थीं और विलाप करती दासियों ने जब उन्हें यह दुखद खबर दी तब भी वे बड़े आराम से उठकर खड़ी हुई। इस प्रसंग को लेकर पेरियार की टिप्पणी है - 'इन आर्य महिलाओं को देखिये! अपने पति की देखभाल के प्रति भी वे कितनी लापरवाह थीं।' फिर वे इस लापरवाही के औचित्य पर भी प्रकाश डालते हैं।

पेरियार राम में तो इतनी कमियां निकालते हैं, किन्तु रावण को वे सर्वथा दोषमुक्त मानते हैं। वे कहते हैं कि स्वयं वाल्मीकि रावण की प्रशंसा करते हैं और उनमें दस गुणों का होना स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार रावण महापंडित, महायोद्धा, सुन्दर, दयालु, तपस्वी और उदार हृदय जैसे गुणों से विभूषित था। जब हम वाल्मीकि के कथनानुसार राम को पुरुषोत्तम मानते हैं तो उसके द्वारा दर्शाये इन गुणों से संपन्न रावण को उत्तम पुरुष क्यों नहीं मान सकते? सीताहरण के लिए रावण को दोषी ठहराया जाता है, लेकिन पेरियार कहते हैं कि वह सीता को जबर्दस्ती उठाकर नहीं ले गया था, बल्कि सीता स्वेच्छा से उसके साथ गई थी। इससे भी आगे पेरियार यह तक कहते हैं कि सीता अन्य व्यक्ति के साथ इसलिये चली गई थी क्योंकि उसकी प्रकृति ही चंचल थी और उसके पुत्र लव और कुश रावण के संसर्ग से ही उत्पन्न हुए थे। सीता की प्रशंसा में पेरियार एक शब्द तक नहीं कहते। अपनी इस स्थापना को पुष्ट करने के लिये वह निम्न दस तर्क देते हैं-

1. सीता के जन्म की प्रामाणिकता संदेहास्पद है। उन्हें भूमिपुत्री प्रचारित करते हुए यह कहा जाता है कि राजा जनक को वह पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त हुई थीं। जबकि पेरियार का कथन है कि वह वास्तव में किसी बदचलन की सन्तान थी, जिसे उसने अपना दुष्कर्म छुपाने के लिये फेंक दिया था। बदचलन स्त्री की सन्तान का भी वैसा ही होना अस्वाभाविक नहीं है। इस सम्बंध में पेरियार स्वयं सीता के शब्द उद्धृत करते हैं- 'मेरे तरुणाई प्राप्त कर लेने के बाद भी कोई राजकुमार मेरा हाथ मांगने नहीं आया क्योंकि मेरे जन्म को लेकर मुझ पर एक कलंक लगा हुआ है।' इसी बात को आगे बढ़ाते हुए वह कहते हैं - 'जनक सीता की आयु 25 वर्ष की हो जाने तक कोई उपयुक्त वर नहीं तलाश पाये। हारकर उन्होंने अपनी व्यथा से ऋषि विश्वामित्र को अवगत करवाया और सहायता की याचना की। तब विश्वामित्र सीता की आयु से काफी छोटे राम को लेकर आये और सीता ने उनसे विवाह करने में तनिक भी आपत्ति नहीं की। इससे प्रमाणित होता है कि सीता हताश हो किसी को भी पति के रूप में स्वीकार करने के लिये व्याकुल थी।'

2. पेरियार का दूसरा तर्क भरत और सीता के संबंधों को लेकर है। जब राम ने वन जाने का निर्णय कर लिया तो सीता ने अयोध्या में रहने से बिल्कुल इन्कार कर दिया। इसका कारण यह था कि विवाह के कुछ दिनों बाद से ही भरत ने सीता का तिरस्कार करना शुरू कर दिया था। राम स्वयं भी सीता से कहते हैं कि तुम भरत की प्रशंसा के लायक नहीं हो। आगे सीता फिर कहती है - 'मैं भरत के साथ नहीं रह सकती, क्योंकि वह मेरी अवज्ञा करता है। मैं क्या करूं? वह मुझे पसन्द नहीं करता। मैं उसके साथ कैसे रह सकती हूं।' सीता की ये स्वीकारोक्तियां भी उसके चरित्र को सन्देहास्पद बनाती हैं। आखिर भरत सीता को क्यों नापसन्द करते थे। यह सवाल सीधा-सीधा सीता के चरित्र पर उंगली उठाता है।

3. सीता हीरे जवाहरात के आभूषणों के पीछे पागल रहती है। राम जब उसे अपने साथ वन ले जाने को तैयार हो जाते हैं, तो उसे सारे आभूषण उतार कर वहीं रख देने को कहते हैं। सीता अनिच्छापूर्वक ऐसा करती तो है पर चोरी छुपे कुछ अपने साथ भी रख लेती है। रावण जब उसे हर कर ले जाता है तब वह उनमें से एक-एक उतार कर डालती जाती है। अशोक वाटिका में भी वह अपनी मुद्रिका हनुमान को पहचान के लिये देती है। तात्पर्य यह कि आभूषणों के प्रति उसका इस हद तक मोह यह तो स्पष्ट करता ही है कि वह इनके लिये अपने पति की आज्ञा की भी अवहेलना कर सकती है यह भी जताता है कि वह इनके लिये अनैतिक समझौते भी कर सकती है।

4. सीता मिथ्याभाषिणी है। वह उम्र में बड़ी होकर भी राम को तथा रावण को अपनी उम्र कम बताती है। उसकी आदत उसके चरित्र पर शंका उत्पन्न करती है।

5. सीता को वन में अकेला इसीलिये छोड़ा जाता है ताकि रावण उसे आसानी से ले जा सके। वह स्वयं भी राम को स्वर्ण मृग के पीछे और लक्ष्मण को राम की रक्षा के लिये भेजती है जिससे वह अकेली हो और स्वेच्छा से काम करे।

6. सीता लक्ष्मण को बहुत कठोर शब्दों में फटकारती है और यहां तक कह देती है कि वह उसे पाना चाहता है। इसीलिये राम को बचाने नहीं जाता। उसके इस तरह के आरोप उसकी कलुषित मानसिकता को प्रकट करते हैं।

7. एक बाहरी व्यक्ति (रावण) आता है और सीता के अंग-प्रत्यंगों की सुन्दरता का, यहां तक कि स्तनों की स्थूलता व गोलाई का भी वर्णन करता है और वह चुपचाप सुनती रहती है। इससे भी उसकी चारित्रिक दुर्बलता प्रकट होती है।

8. सीता का अपहरण कर ले जाते समय वह रावण को अनेक प्रकार का शाप देती है। यदि वह सचमुच सती पतिव्रता होती तो रावण को तभी भस्मीभूत हो जाना चाहिये था। लेकिन वह तो जैसे ही रावण के महल में प्रविष्ट होती है उसका रावण के प्रति प्रेम बढ़ने लगता है।

9. जब रावण सीता से शादी करने के लिये निवेदन करता है, तो वह मना तो करती है लेकिन आंखें बन्द करके सुबकने भी लगती है। पेरियार उसके इस व्यवहार पर शंका जताते हैं।

10. वह सीता के रावण के प्रति आकर्षित होने के दो प्रमाण और देते हैं - (क) चन्द्रावती की बंगाली रामायण से एक घटना का वह उल्लेख करते हैं - राम की बड़ी बहन कुंकुवती उन्हें धीरे से यह बताती है कि सीता ने कोई तस्वीर बनाई है और वह उसे किसी को दिखाती नहीं है। उस तस्वीर को वह छाती से लगाये हुए है। राम स्वयं सीता के कमरे में जाते हैं और वैसा ही पाते हैं। वह तस्वीर रावण की होती है। (ख) सी.आर.श्रीनिवास अयंगार की पुस्तक 'नोट्स ऑन रामायण' में भी सीता रावण की तस्वीर बनाते हुए राम के द्वारा रंगे हाथों पकड़ी जाती है।

अन्त में पेरियार उस प्रसंग का वर्णन करते हैं जब अयोध्या में राम सीता से अपने सतीत्त्व को साबित करने के लिये शपथ खाने को कहते हैं। वह ऐसा करने से मना कर देती है और पृथ्वी में समा जाती है। रामभक्त इसे सीता के सतीत्व की चरमावस्था घोषित करते हैं, जबकि पेरियार कहते हैं कि अपने को सच्चरित्र प्रमाणित न कर पाने के कारण ही सीता जमीन में गड़ जाती है।

ऐसे राम और ऐसी रामायण कथा आदर व श्रद्धा के लायक बन सकते हैं? यह सवाल है पेरियार का। दरअसल पेरियार ने इसे एक ऐसे लम्बे निबंध के रूप में लिखा है जिसमें पहले रामायण पर उनके विचार दिये गये हैं और बाद में उसके हर चरित्र की आलोचना की गई है।

रामायण के बारे में वह बड़ी साफगोई से कहते हैं कि रामायण वास्तव में कभी घटित नहीं हुई। वह तो एक काल्पनिक गल्प मात्र है। राम न तो तमिल थे और न तमिलनाडु से उनका कोई सम्बन्ध था। वह तो धुर उत्तर भारतीय थे। इसके विपरीत रावण उस लंका के राजा थे जो तमिलनाडु के दक्षिण में है। यही कारण है राम और सीता न केवल तमिल विशेषताओं से रहित हैं बल्कि उनमें देवत्व के लक्षण भी दिखाई नहीं देते। महाभारत की तरह यह भी एक पौराणिक कथा है, जिसे आर्यों ने यह दिखाने के लिये रचा है कि वे जन्मजात उदात्त मानव हैं, जबकि द्रविड़ लोग जन्मना अधम, अनाचारी हैं। इसका मुख्य उद्देश्य ब्राह्मणों की श्रेष्ठता, स्त्रियों की दोयम दर्जे की हैसियत और द्रविड़ों को निन्दनीय प्रदर्शित करना है। इस तरह के महाकाव्य जानबूझकर उस संस्कृत भाषा में लिखे गये जिसे वे देवभाषा कहते थे और जिसका पढ़ना निम्न जातियों के लिये निषिद्ध था। वे इन्हें ऐसी महान आत्माओं द्वारा रचित प्रचारित करते हैं जो सीधे स्वर्ग से दुनिया का उद्धार करने के लिये अवतरित हुई थीं, ताकि इनकी कथाओं को सच्चा माना जाय और इनके पात्रों व घटनाओं पर कोई सवाल न उठाये जायें। आर्यों ने जब प्राचीन द्रविड़ भूमि पर आक्रमण किया, तब उनके साथ दुर्व्यवहार तो किया ही उनका अपमान भी किया और अपने इस कृत्य को न्यायोचित व प्रतिष्ठा योग्य बनाने के लिये उन्होंने इन्हें ऐसे राक्षस बनाकर पेश किया जो सज्जनों के हर अच्छे कामों में बाधा डालते थे। श्रेष्ठ जनों को तपस्या करने से रोकना, धार्मिक अनुष्ठानों को अपवित्र करना, पराई स्त्रियों का अपहरण करना, मदिरापान, मांसभक्षण एवं अन्य सभी प्रकार के दुराचरण करना इन्हें अच्छा लगता था। इसलिये ऐसे आततायियों को दंडित करना आर्य पुरुषों की कर्तव्य परायणता को दर्शाता है। अब यदि तमिलजन इस तरह की रामायण की प्रशंसा करते हैं तो वे अपने अपमान को एक तरह से सही ठहराते हैं और स्वयं अपने आत्मसम्मान को क्षति पहुंचाते हैं।

शिक्षित तमिल जब कभी रामायण की चर्चा करते हैं तो उनका आशय 'कम्ब रामायण' से होता है। यह रामायण वाल्मीकि की संस्कृत में लिखी रामायण का

कम्बन कवि द्वारा तमिल में किया गया अनुवाद है। लेकिन पेरियार मानते हैं कि कम्बन ने भी वाल्मीकि की रामायण की विकारग्रस्त प्रवृत्ति और सच्चाई को छुपाया है और कथा को कुछ ऐसा मोड़ दिया है जो तमिल पाठकों को भरमाता है। इसलिये वे इस रामायण की जगह आनन्द चारियार, नटेश शायारि, सी.आर. श्रीनिवास अयंगार और नरसिंह चारियार के अनुवादों को पढ़ने की सिफारिश करते हैं।

लेकिन अफसोस है पेरियार भी रावण की प्रशंसा उसी तरह आंख मूंदकर करते हैं जिस तरह वाल्मीकि ने राम की की है। वह वाल्मीकि पर यह आरोप लगाते हैं कि उन्होंने स्त्रियों की न केवल अवहेलना की है बल्कि उन्हें हीन दिखाने की कोशिश भी की है। लेकिन वह स्वयं भी सीता की मन्थरा व शूर्पणखा की तरह अवमानना करते हैं। क्योंकि वह एक आर्य महिला है। क्या आर्य होने पर स्त्री-स्त्री नहीं रहती? इस तरह पेरियार कई जगह द्रविड़ों का पक्ष लेते हुए रामायण के आर्य चरित्रों के साथ अन्याय भी करते हैं। अनेक कमियों के बावजूद यह पठनीय है। क्योंकि इससे तस्वीर का एक और पहलू सामने आता है।

1954 म्यामार की तत्कालीन राजधानी रंगून (यंगोन) में
(बाएं से, बैठे हुए) डॉ. आंबेडकर और पेरियार

खण्ड - 2

पेरियार : धर्म और जाति पर

ईश्वर का अंत

किसी भी देशभक्त अथवा मानवतावादी सरकार, लोक सेवा संस्थान अथवा सामाजिक चेतना संपन्न व्यक्ति का सबसे अहम दायित्व है देश के लोगों को बुद्धिमान बनाना और उनमें तार्किक विचार को जन्म देना। निश्चित रूप से ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए ताकि लोगों का जीवन स्तर सुधर सके, उनको चिंताओं और दिक्कतों से मुक्ति मिल सके और आर्थिक और सामाजिक समता कायम हो सके। इन गुणों से युक्त राज्य को ही सही मायनों में एक मुक्त राज्य कहा जा सकता है। अगर ये बातें उसमें मौजूद नहीं हैं तो राज्य बस एक जेल बनकर रह जाएगा। ऐसा समाज दासों का समाज होगा।

आमतौर पर राजाओं द्वारा शासित राज्य और समाज अपनी अलग तरह की दिशा तय करते हैं। ऐसे शासक धर्म और धार्मिक सिद्धांतों को शासन का आधार बनाते हैं। बहरहाल एक लोकतांत्रिक राज्य का आधार बुद्धिमता और स्वतंत्रता को होना चाहिए। धर्म और धर्म शास्त्र के निर्माण का एकमात्र उद्देश्य बौद्धिकता और आजादी को नष्ट करना और लोगों को मूर्ख और दास बनाना है। यह उस समय चलन में आया जब मनुष्य आदिम अवस्था में रहा करता था, कमोबेश जानवरों की तरह। जिस प्रकार लोग भूत-प्रेत और आत्माओं से भयभीत रहते थे ठीक वही डर धर्म और धार्मिक शास्त्र भी पैदा करते थे।

हालांकि धर्म और धर्म सिद्धांतों में ईश्वर ही प्राथमिक शक्ति था, लेकिन हमें यह कहना होगा कि ईश्वर और धार्मिक लेखन और शास्त्र की अवधारणा प्रायः विपरीत थी। ऐसा इसलिए क्योंकि ईश्वर की अवधारणा की शुरुआत अज्ञानता से हुई। धर्म और धर्म लेखों का उद्‌भव बेईमानी से हुआ। यानी लोगों को बेवकूफबनाने और उनको दास बनाने के इरादे से इनकी शुरुआत हुई। दुनिया भर के बुद्धिमान लोगों ने इसका समर्थन किया खासतौर पर पश्चिम के जानेमाने विद्वानों ने।

उन्होंने कहा, 'आप ईश्वर की अवधारणा रचने वाले व्यक्ति को माफ कर सकते हैं, वह मूर्ख था, वह अपनी बौद्धिक अक्षमता की वजह से ऐसा विचार तैयार करने पर मजबूर हुआ। लेकिन धर्म और धर्म शास्त्र (आत्मा, स्वर्ग, नर्क) आदि का निर्माण करने वाला व्यक्ति ईमानदार नहीं रहा होगा। उसने ऐसा केवल लोगों को

भयभीत करने के लिए किया।' ईश्वर का निर्माण करने वाले व्यक्ति का इस बात पर जोर था कि कोई न कोई ऐसी शक्ति है जिसने यह विश्व और इसकी व्यवस्था निर्मित की होगी। उसने ईश्वर के अस्तित्व को संदेह का लाभ दिया।

लेकिन धर्म और धर्म शास्त्र के साथ यह बात नहीं है। यह एक पूर्ण झूठ है जिसका निर्माण लोगों को धोखा देने और उनका शोषण करने के लिए, उनके बीच भेद उत्पन्न करने के लिए किया गया। धर्म और धर्म सिद्धांतों की रचना इसी उद्देश्य से की गई। इसका सबसे बड़ा सबूत यही है कि दुनिया में अलग-अलग तरह के धर्म और धर्म शास्त्र हैं और वे सभी एक दूसरे से विरोधाभासी हैं। यही सच है। दूसरा सबूत यह है कि इसके रचयिता मानवीय प्रकृति से ऊपर प्रतीत होते हैं और हिंदू धर्म के शास्त्र प्राकृतिक कानूनों से विरोधाभासी हैं।

ये न केवल हमारी बौद्धिकता को नष्ट करते हैं बल्कि हमारे चरित्र को भी क्षति पहुंचाते हैं। इनकी वजह से हमारी ईमानदारी, प्रेम, एकता, समता आदि सभी प्रभावित होते हैं। हमारे विकास पर असर पड़ता है, विज्ञान को नुकसान पहुंचता है और अज्ञानता को बढ़ावा मिलता है। हम इन सब बातों के खिलाफ हैं। आपको ये सारी बातें समझने के लिए बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। इनका उत्तर तो अपने धर्म और उसके सिद्धांतों का विश्लेषण करके ही मिल जाएगा।

यह विचार दीगर है कि हम तमिलों (द्रविड़ों) का कोई देवता है भी या नहीं। लेकिन हम हिंदू धर्म को अपना धर्म मानते रहे हैं। यह अपने आप में एक बहुत बड़ी चूक है। ऐसा क्यों? आखिर हिंदू धर्म है क्या? इसका अर्थ क्या है? धर्म शब्द की बात करें तो इस्लाम अथवा ईसाइयत के गुणों के आधार पर पहचान करें तो क्या इसका कोई आदर्श, कोई प्राधिकार या कोई इतिहास है? क्या हिंदुत्व का कोई उल्लिखित सिद्धांत है या इसे लेकर कोई लेखन कर्म किया गया है? ब्राह्मण कहते हैं कि हिंदू धर्म वैदिक धर्म है। ब्राह्मण खुद को आर्य बताते हैं। ऐसे में वे अपने धर्म को भी आर्य धर्म बताते हैं। अंग्रेजी के शब्दकोषों में हिदू धर्म को ब्राह्मणों का धर्म बताया गया है। यह एक गैर ईसाई गैर मुस्लिम धर्म है।

इसकी और अधिक व्याख्या करने की आवश्यकता है। लेकिन मैं इसे संक्षेप में कहूंगा। हिंदू धर्म का पूरा ब्योरा, वेदों, शास्त्रों और पुराणों में मिलता है। उसके इतिहास में अतीत के कुछ ऐतिहासिक और कुछ मिथकीय किस्से जुड़े हैं। इस धर्म के मुताबिक हम चौथी और पांचवीं जाति में आते हैं। इस हिसाब से हमें उपरोक्त ग्रंथों को पढने् तक की इजाजत नहीं है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास आदि सभी ने हमारे लोगों को नीचा दिखाया है, हमें बेईमान के रूप में चित्रित किया गया और कई तरह से हमें अपमानित किया गया। इसीलिए हम कहते हैं कि ईश्वर, धर्म, धर्म सिद्धांत, पुराणों और इतिहास आदि में भरोसा समाप्त करना होगा।

(विदुथलई, संपादकीय-17.12.1969)

ईश्वर की अवधारणा?

इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि सबसे पहले ईश्वर की अवधारणा के बारे में किसने बोला। लेकिन यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे (तमिल द्रविड़ियन) ऊपर ईश्वर का विचार आर्यों ने थोपा है।

आर्यों के पहले तमिलों का कोई ईश्वर नहीं था। इस बात का प्रमाण यह है कि तमिल भाषा में ईश्वर के लिए कोई शब्द ही नहीं है।

तमिल विद्वानों का कहना है कि 'कांतजी' नामक एक शब्द तमिल भाषा में है जिसका अर्थ देवता है। बहरहाल अभी तक इस शब्द को अर्थहीन माना जाता रहा है और उसे यह नया अर्थ मिले अधिक समय नहीं हुआ।

इस शब्द की व्याख्या एक सर्वोच्च सत्ता के रूप में की जाती है जो किसी के सहारे नहीं है और जो अमूर्त दर्शन से संबंधित है। दर्शन शब्द के कई अर्थ हैं। उदाहरण के लिए सत्य, प्रकृति, वीरता, बुद्धिमता आदि। अगर कहा जाता है कि कुछ है जो सबसे परे है तो फिर हमारे पास उसके लिए 'अस्तित्त्वहीन' और 'गलत' शब्द ही रह जाएंगे।

ऐसे में कहा जा सकता है कि कोई तमिल व्यक्ति जब 'कांतजी' बोलता है तब भी उसमें ईश्वर की नकार का अर्थ शामिल होता है। तत्व व कडंधू यानी दर्शन से इतर शब्द की बात करें तो मेरे विचार में तत्वम तमिल शब्द नहीं है। जैसा कि हमने देखा कांतजी शब्द का अपना कोई अर्थ नहीं है।

उत्तरी भाषाओं की बात करें तो वहां भी इसका अर्थ असत्य बताया गया है और इसके बाद ऐसे शब्दों का एक सिलसिला है जो तमिल नहीं हैं। उदाहरण के लिए पंच भूतंगल जैसे शब्द शब्दकोष में प्रकाशित हैं। मेरा यह भी मानना है कि देवियम, भगवान, ईश्वरन, परपरन जैसे शब्द तमिल भाषा के नहीं हैं। ऐसे में यह तय है कि 'कडवुल'(ईश्वर) शब्द भी तमिल भाषा का नहीं है।

शब्दकोष 'कडवुल' शब्द के लिए भी गुरु, अय्यर, वनवर और पुथेल जैसे

अर्थ देता है।

अगर पुथेल (स्वर्गीय) शब्द को तमिल मान लिया जाए तो उसके लिए भी देवियम (देवी), पुडुमई (नया), पुथियावार (नई इकाई), पुथल जैसे अर्थ उपलब्ध हैं।

ऐसे में अगर आप बिना संस्कृत अर्थो का सहारा लिए ईश्वर शब्द का अर्थ तलाश करना चाहते हैं वह भी दैवीय अर्थ देते हुए तो तो यह निश्चित है कि आप ऐसा उत्तर भारत की भाषाओं या तमिल में नहीं कर सकेंगे क्योंकि वह उस शब्द के वह अर्थ देती हैं जो लोक में प्रचलित हैं।

मेरा कहने का यह अर्थ नहीं है कि केवल तमिलों में ही देवताओं की अवधारणा नहीं है। यहां तक कि आर्यो में भी देवता की अवधारणा नहीं है।

आर्यों के लिए मूल आधार वेद हैं। किसी खास कालखंड की भी बात करें तो आर्यो के लिए वेद ही प्रमुख थे। सामान्य मानकों के मुताबिक किसी देवता की मान्यता नहीं थी। वेदों में हमें देव या स्वर्गीय का ही उल्लेख मिलता है। ये सभी देव इंदिरा के अधीनस्थ हैं। इस तरह देखा जाए तो तमिलों या आर्यो के लिए कोई देव नहीं था।

सभी देवता देवों में से चुने गए थे। इनके गुण भी खासे कमजोर थे। इनका निर्माण अपेक्षाकृत कमजोर मानवीय गुणों के साथ किया गया था। इनमें से तमिल तीन देवताओं को मानते हैं, ब्रह्मा, विष्णु और शिव। इन तीनों देवताओं को अन्य सभी देवताओं का जनक माना जाता है। चूंकि इनको अलग-अलग माना जाता है इसलिए इनके नाम पर अलग धर्म और शास्त्र हैं। पुराणों में किए गए उल्लेख में इनको भी क्रमशः ऊंचा-नीचा दर्जा दिया गया है।

विचार एवं उपासना की इस स्थिति को देवों में आस्था रखने वालों में सबसे निचले स्तर पर रखा गया है।

चूंकि इन तीनों धार्मिक उप पंथों ने तीन तरह के देवों, पुरुष-स्त्री, मानव स्वभाव, मानवीय गुणों, मूल मनुष्यगत भावना रची व उनकी उपासना की, इसलिए इन तीनों पंथों के अनुयाइयों को दुनिया के शेष लोग उचित ही बर्बर कहकर पुकार सकते हैं।

दुनिया भर के ईश्वर में आस्था रखने वाले लोग उन देवताओं की उपासना कर रहे हैं जो मानवीय गुणों से भरे हुए हैं। वे ऐसे देवताओं की पूजा नहीं करते जिनमें 'ईश्वरीय गुण' हों। इतना ही नहीं जो लोग ईश्वर में विश्वास करते हैं और उसकी उपासना करते हैं, उनके विचारों में भी किसी तरह की एकरूपता देखने को नहीं मिलती है। इतना ही नहीं ईश्वर प्रदत्त, उसके बारे में या उसे लेकर कही जाने वाली बातों में भी किसी तरह की एकरूपता नहीं नजर आती है।

इसी तरह ईश्वर के गुणों की बात करें तो उनकी केवल कल्पना ही की गई है। इनके बारे में भी लोग एक दूसरे से जो चर्चा करते हैं उसमें कोई एकरूपता नहीं

दिखती। कहने का मतलब कोई एक ईश्वर नहीं है और कई तरह के ईश्वरों की कामना की जा सकती है।

आज की दुनिया में ईश्वर पर भरोसा करने वाले लोगों की संख्या में कमी आ रही है। इसकी वजह यह है कि लोगों में बौद्धिकता बढ़ रही है, वे शोध कर रहे हैं और तर्कशक्ति का प्रयोग कर रहे हैं। उनमें स्वतंत्र सोच का साहस है। इसका तात्पर्य यह है बेईमान और स्वार्थी व्यक्ति के लिए ईश्वर पर भरोसा आवश्यकता बन चुका है। केवल मूर्खों और बुद्धिहीनों में पूजा-अर्चना की इच्छा बढ़ रही है।

आज के विश्व में बहुत बड़ी संख्या में लोग ईश्वर में आस्था गंवा रहे हैं। रूस, चीन, जापान, बर्मा, स्याम और श्रीलंका जैसे देशों में 100 से लेकर 90 और 75 प्रतिशत तक लोग नास्तिक हैं।

अमेरिका, फ्रांस, इंगलैंड और जर्मनी जैसे पश्चिमी देशों में भी न केवल नास्तिकों के संगठन हैं बल्कि करोड़ों लोग इनके सदस्य हैं जो नास्तिकता को बढ़ावा देने के लिए लाखों पुस्तकें प्रकाशित करते हैं।

इसकी वजह यह है कि विद्वानों के बीच यह जागरूकता बढ़ती जा रही है कि ईश्वर में विश्वास एक बड़ी बाधा है और यह वैज्ञानिक सोच और सामाजिक स्तर पर मानवता के विकास को बाधित करती है। आज से 2000 साल पहले भी यह धारणा प्रचलित थी कि एक ज्ञानी या बुद्धिमान व्यक्ति के लिए कोई ईश्वर नहीं होता। उस वक्त भी ईश्वर में भरोसा करने वाले तथा अंधविश्वासी लोग एक ज्ञानी के समान बुद्धिमतापूर्ण सोच नहीं अपनाते थे। दीपक तभी जल सकता है जबकि उसमें तेल हो, इसी प्रकार सच तभी हासिल हो सकता है जब तार्किक सोच मौजूद हो। अगर किसी व्यक्ति में यह भावना कूट-कूट कर भरी हो कि ईश्वर को विचारों से नहीं जाना जा सकता है क्योंकि वह मस्तिष्क और सोच-विचार से परे है तो फिर उससे समझदारी की उम्मीद करना बेमानी है। मौजूदा समय में दुनिया तेजी से वैज्ञानिक विकास की ओर अग्रसर है।

अगर हम पर शासन करने वाली मौजूदा सरकार इस तार्किक विचार पर आधारित हो कि कोई ईश्वर नहीं है तो क्या हमारी यह सरकार भी रूस की सरकार के समकक्ष नहीं हो जाएगी? इसी तरह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और दुनिया की तमाम कम्युनिस्ट पार्टियां एक संस्थागत तरीके से काम कर रही हैं। क्या उससे यह संकेत नहीं मिलता है कि ईश्वर के अस्तित्व के प्रति नकार का भाव, बुद्धिमता का विकास और सोचने की शक्ति बढ़ रही हैं? इसके अलावा यूरोप और एशिया के पूंजीवादी देशों के तमाम बड़े शहरों में भी कई ऐसे संघ हैं जिनके करोड़ों सदस्य ईश्वर के अस्तित्व से इनकार करते हैं। ऐसे संगठनों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। इसका क्या अर्थ है? केवल कुछ पुजारी, मुल्ला और ब्राह्मण जो खुद को नालियों में छिपा लेंगे जब आप उनको आवाज लगाएंगे। जब उनका ईश्वर का विचार नष्ट

हो रहा है और उसका खत्म हो जाना तय है तो वे एक ऐसे ईश्वर की स्थापना का प्रयास करते हैं जिसका अस्तित्त्व ही नहीं है। ऐसे में तार्किक या उचित विचार-विमर्श की गुंजाइश ही कहां रह जाती है?

मैं अपनी बात इस तथ्य के साथ समाप्त करूंगा कि पश्चिमी शोधकर्ताओं के मुताबिक दुनिया की कुल 300 करोड़ की आबादी में से 150 करोड़ से भी कम आस्तिक हैं। शेष में से तीन चौथाई पूरी तरह नास्तिक हैं जबकि शेष भ्रम की अवस्था में हैं। यह बात पश्चिम में प्रमाणित है।

(विदुथलई- संपादकीय 5.8.1972)

जाति

सम्माननीय अध्यक्ष महोदय, अग्रजों और साथियों। ईश्वर को एकदम महत्त्वहीन विषय भी माना जा सकता है और अत्यंत महत्त्वपूर्ण भी। सामान्य लोगों के लिए ईश्वर, धर्म और राजनीतिक दर्शन अथवा सिद्धांतों पर होने वाली चर्चा में कोई खास अंतर नहीं है लेकिन विद्वानों के लिए ये विषय अहम हैं, जिनका व्यापक और सूक्ष्म ढंग से विश्लेषण किया जाना चाहिए।

अगर मुझे अपने विचार (दर्शन या सिद्धांत) साहसपूर्वक प्रकट करने या उन्हें बदलने में डर लगेगा तो मैं ऐसा करने के लिए खुद से ही घृणा करूंगा।

ऐसे में अगर कोई आस्तिक मुझे नास्तिक बताए और धर्म से घृणा करने वाला कहे तो मेरे लिए यह अनदेखी करने वाली बात होगी और मैं इसे लेकर निरुत्सुक रुख अपनाऊंगा। मैं इस बात को जरा विस्तार में समझाऊंगा। एक जगह पर एक 'ब्राह्मण भिखारी' ने एक चर्चित परोपकारी के घर का रुख किया और कुछ नेक काम के लिए दान मांगा। उस घर के मालिक ने उसे चार आने दिए जो वह यूं भी किसी भिखारी को देता। इस पर ब्राह्मण भिखारी नाराज हो गया और चीखा, 'अरे! तुम मुझे केवल चार आने दे रहे हो, मैं चार वेदों, छह शास्त्रों,18 पुराणों का ज्ञाता हूं,मैंने तर्क पढ़ा है, कार्य-कारण संबंध पढ़े हैं और दर्शन का ज्ञाता हूं। मैं आत्म प्रशंसा को त्याग चुका हूं और मैंने दूसरों की आलोचना और धन की चाह त्याग दी है। मुझे भी केवल चार आने और एक मूर्ख को भी चार आने?' मैं कहता हूं कि एक आस्तिक जब किसी नास्तिक के बारे में बात करता है तो कमोबेश यही हालात होते हैं।

ऐसा इसलिए है क्योंकि आस्तिकों ने ईश्वर को सर्वशक्तिमान, अंतर्यामी और हर जगह मौजूद बता रखा है। उससे बड़ा कोई नहीं है। उसकी सहमति के बिना कुछ नहीं होता है। और चूंकि मैं आस्था पर आपत्ति करता हूं तो उसे यदि कुछ कहना भी होगा तो वह वही होगा जो ऊपर एक ब्राह्मण भिखारी ने कहा।

उस ब्राह्मण भिखारी ने पहले कहा कि उसमें आत्म प्रशंसा का गुण नहीं है, वह दूसरों की आलोचना नहीं करता और न ही उसमें धन प्राप्ति की इच्छा है। लेकिन शीघ्र ही उसने यह कहना शुरू कर दिया कि वह चार वेदों, छह शास्त्रों, 18 पुराणों का ज्ञाता है, उसने तर्क शास्त्र का अध्ययन किया है, वह दर्शन का जानकार है और उसे महज चार आने दिए जा रहे हैं जो कि मूर्ख मूढ़ को दिए जाते हैं। उपरोक्त वक्तव्य के आधार पर देखें तो वह आत्म प्रशंसा के सिवा कुछ नहीं करता। इसी तरह उसने कहा कि वह कभी भी दूसरों की अवमानना नहीं करता लेकिन अगले ही क्षण वह कहता है कि उसे किसी मूढ़ के सदृश्य चार आने दिए जा रहे हैं।

वह यह भी कहता है कि उसे धन की कोई लालसा नहीं है लेकिन वह चार आने देने पर नाराज भी होता है। ऐसे में यह स्पष्ट है कि उसने अपने बारे में जो भी कहा सब झूठ था।

ऐसे में यदि कोई व्यक्ति कहता है कि कोई ईश्वर नहीं है तो या तो आस्तिक ने जो भी कुछ ईश्वर के बारे में कहा है, मसलन कि वह सर्वशक्तिमान है और सबकुछ उसकी मर्जी से होता है वगैरह, तो वह या तो झूठ बोल रहा है या फिर काल्पनिक बातें कर रहा है। नास्तिक वह है जो कहता है कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है।

ईश्वर का अस्तित्व नकारने से किसी को क्या लाभ हो सकता है? या किसी ऐसे ईश्वर की मौजूदगी के क्या फायदे हैं जो सबकुछ कर सकता है, जिसकी वजह से सब घटित होता है लेकिन वह किसी नास्तिक को अपने अस्तित्व को नकारने से नहीं रोक पाता। क्या कोई मनुष्य ऐसी मूर्खता करेगा? या क्या कोई भगवान ऐसा होने देगा? अगर किसी व्यक्ति में इतना सोचने समझने की शक्ति होगी तो वह किसी को नास्तिक नहीं कहेगा न ही उसकी आलोचना करेगा बल्कि खुद में खामियां तलाश करेगा।

अगर कोई व्यक्ति किसी के बारे में कहता है कि वह नास्तिक है और कहता है कि ईश्वर नहीं है तो वह खुद नास्तिक है। ऐसे शब्द उछालने वाले खुद नास्तिक हैं।

यानी ऐसी बात कहने वाले खुद भी नास्तिक हैं। अगर ईश्वर है तो भला कोई व्यक्ति कह सकता है कि ईश्वर नहीं है? या फिर क्या कोई यह सोच सकता है कि दूसरों के लिए ईश्वर नहीं है? ऐसे में नास्तिक और नास्तिकता ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग वे लोग करते हैं जो ईश्वर के नाम का कारोबार करते हैं, उन्होंने ईश्वर को अपने कारोबार का जरिया बनाया है। जो लोग ईश्वर के नाम पर कारोबार करते हैं उनके अलावा किसी अन्य को इससे परेशान होने की आवश्यकता ही नहीं है।

ईश्वर की अवधारणा के बारे में विस्तृत बातचीत के लिए शोध और तमाम पहलुओं की जानकारी आवश्यक है। अगर किसी विषय की गहराई से जांच करनी है तो क्यों, कैसे, कहां, कब जैसे प्रश्न उठने ही चाहिए और इनका संतोषप्रद उत्तर

भी आवश्यक है। तार्किक जांच परख और बहस आपस में जुड़े हुए हैं। ऐसे में जो लोग कथित सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और अंतर्यामी ईश्वर की प्रकृति को लेकर सार्थक बातचीत करना चाहते हैं उनको केवल उक्त 6,7 प्रश्नों के ही उत्तर नहीं तलाश करने चाहिए बल्कि उन्हें 60 या 70 जांच या प्रयोग करने चाहिए। एक श्रद्धालु के लिए यह सब करने की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन दार्शनिक जांच परख करने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है।

ईश्वर की अवधारणा का आधार मूर्खतापूर्ण श्रद्धा अथवा अंधी आस्था नहीं होनी चाहिए। अगर कोई वैसा करे भी तो भी मैं कहूंगा कि एक तार्किक व्यक्ति वह भी दार्शनिक दृष्टि से जांच परख कर रहे एक व्यक्ति को इस आधार पर निर्णय नहीं देने चाहिए।

ईश्वर की जरूरत क्या है, भगवान क्यों, भगवान क्या है, ऐसी बातों की जांच परख आवश्यक है। हर दार्शनिक को ऐसे प्रश्नों को समझना चाहिए और इसका उत्तर तलाश करना चाहिए।

मनुष्य को तार्किक दिमाग मिला है। उसका प्रयोग समुचित जांच परख में होना चाहिए न कि पशुओं की तरह केवल जिंदा रहने में। मनुष्य ने तार्किक क्षमता का बहुत अधिक दुरुपयोग किया और वह कई समस्याओं में भी फंसा। उसने अपनी समस्याओं से निजात पाने के लिए ईश्वर को उपाय के रूप में गढ़ा।

राजा की जरूरत क्यों है, वस्तुएं क्यों हों, गरीब और अमीर क्यों हों? ऊंची और नीची जातियां क्यों हों? कड़ी मेहनत करने वाला मजदूर और आरामतलब मालिक क्यों हो? कोई व्यक्ति बहुत बड़ा या अत्यधिक अमीर क्यों हो? इन विशेषताओं को बनाने, बरकरार रखने और इनका संरक्षण करने के अलावा ईश्वर की अवधारणा से और क्या लाभ है? ईश्वर ने क्या अच्छा किया है? क्या इन तमाम चीजों को करने के लिए हमें ईश्वर की आवश्यकता है?

अगर एक तार्किक व्यक्ति बिना शांति, प्रेम, संतुष्टि, चिंता के मरता है और वह असंतुष्ट ही रहता है तो इसकी वजह ईश्वर की अवधारणा के सिवा भला और क्या हो सकती है?

अगर ऐसा किसी व्यक्ति विशेष की मूर्खता की वजह से है तो तार्किकता की आवश्यकता ही क्या है? क्या केवल मूर्खता को बढ़ावा देने के लिए? किसी तार्किक व्यक्ति में ढेर सारे दुर्गुण, चिंताएं, कमियां, नस्ली घृणा और धोखा जैसी प्रवृत्तियां क्यों होनी चाहिए जो पशुओं में भी नहीं होती हैं जो तार्किक नहीं होते? एक तार्किक व्यक्ति में ऐसे शैतानी गुण क्यों होने चाहिए जो जंगली जीवों में पाए जाते हैं जो तार्किक नहीं होते? अगर तार्किकता भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकती है तो फिर उसका उपयोग क्या है? तब ईश्वर की प्रकृति क्या है?

ईश्वर की अवधारणा ही क्यों? क्या यह मनुष्य के सोचने की प्रक्रिया में शुरू से

शामिल है या फिर इसे दूसरों ने उसके मस्तिष्क में डाला? यह स्वतःस्फूर्त है या भीतर से आती है, अगर ऐसा है तो यह भावना हर किसी के मन में क्यों नहीं आती? अलग-अलग लोगों में यह अलग-अलग ढंग से क्यों सामने आती है? भिन्न-भिन्न लोगों के लिए इसके गुण और इसकी शक्तियां भिन्न क्यों हैं? अगर यह निर्मित अवधारणा है तो इसे क्यों बनाया गया? क्या इसके निर्माण का उद्देश्य पूरा हुआ? क्या जिन लोगों ने इसे बनाया वे अपने प्रयास में सफल हुए? अगर भगवान को समझा जा चुका है या अगर भगवान को मनुष्य ने बनाया है तो फिर मनुष्य भगवान की इच्छा और उसके के सदगुणों के विपरीत आचरण क्यों करता है?

सबकुछ ईश्वर की इच्छा के मुताबिक घटित होता है। ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान है। अगर यह सच है तो ईश्वर करता क्या है? सबकुछ तो मनुष्य करता है केवल नाम ईश्वर का होता है। मनुष्य उसकी अनदेखी करते हुए कई काम ऐसे भी करता है जो ईश्वर को नागवार हों शायद। कई ऐसी घटनाएं हो रही हैं जो मनुष्य द्वारा वांछित नहीं हैं या जिनकी उसे आवश्यकता नहीं। हमें पूरी प्रकृति में ईश्वर की मौजूदगी का कोई संकेत नहीं मिल रहा है। यदि मनुष्य के प्रयास न हों तो न केवल सबकुछ असुरक्षित हो जाएगा बल्कि खुद ईश्वर भी सुरक्षित नहीं रह सकेगा।

(सलेम कॉलेज 'रिपब्लिक में दिया गया भाषण'
(कुडियारासु) 23-11-1946)

ईश्वर के बारे में

ईश्वर से संबंधित इस आलेख का उद्देश्य है यह पता लगाना कि क्या ईश्वर को लेकर मनुष्य का व्यवहार और उसका रुख सही अथवा आवश्यक है? इस आलेख का पहला लक्ष्य : क्या लोगों के लिए यह आवश्यक है कि वे दूसरों से भगवान को बचाने को कहें, उनको ईश्वर के बारे में बताएं कि वह एक या अनेक है और इसका प्रचार प्रसार करें?

दूसरा लक्ष्य : ईश्वर संबंधी विचार लोगों के दिलोदिमाग से गायब हो रहे हैं। क्या पादरियों और गुरुओं को नियुक्त करना और ईश्वर के प्रचार के लिए, उसके अस्तित्त्व के प्रचार के लिए उनको धन देना जरूरी है?

इतना ही नहीं कई नास्तिक भी सामने आए हैं और ईश्वर का अस्तित्त्व न होने संबंधी उनके प्रचार ने ईश्वर के अनुयाइयों की संख्या कम की है। ऐसे में अनेक आस्तिकों ने आगे बढ़कर ईश्वर के प्रचार का मोर्चा संभाल लिया है। क्या ऐसा करना आवश्यक है? ऐसे में क्या ईश्वर के मंदिर होने चाहिए? क्या ईश्वर की पत्नी होनी चाहिए?

क्या ईश्वर को यौन आनंद लेना चाहिए?

क्या ईश्वर को वेश्याओं की आवश्यकता है? यानी ऐसी स्त्रियां जो उन्हें यौन सेवा दें?

क्या ईश्वर को खाने, आभूषणों, कपड़ों, साज सज्जा, विवाह, त्योहार और शोभा यात्रा की आवश्यकता होनी चाहिए?

इसके अलावा भी क्या ऐसे मानक हैं जिनके आधार पर ईश्वर के कामों और उसकी शक्ति को आंका जा सकता है? या फिर क्या वह दुनिया में सर्वशक्तिमान और सारी चीजों के लिए उत्तरदायी है?

क्या उसकी शक्तियों और कार्यों की कोई सीमा है? क्या कोई सीमा है?

क्या कोई व्यक्ति जिसे ईश्वर की क्षमताओं और उसकी शक्तियों के बारे में पता

हो वह ईश्वर को बचाने की चिंता कर सकता है?

अगर कोई अपने हृदय की गहराइयों से यह विश्वास करता है कि एक सर्वशक्तिमान ईश्वर है और इसकी जानकारी के बिना कुछ भी नहीं हो सकता है, तो क्या वह ईश्वर को बचाने का प्रयास करेगा? अगर कोई यह कहता हो कि दुनिया में कोई ईश्वर नहीं है तो क्या वह उससे नाराज होगा?

तमाम ऐसे लोग हैं जो ईश्वर को लेकर चिंतित रहते हैं, उसके बारे में प्रचार करते हैं। क्या आप उनमें से ऐसे किसी व्यक्ति के पाले पड़े हैं जो ईश्वर के आदेशों का पालन करता हो, सारे काम ईश्वर से भयभीत होकर करता हो, क्या लोग ईश्वर से भय, उसमें आस्था और उसके प्रति आदर प्रदर्शित करते हैं?

अगर कोई व्यक्ति ईश्वर में विश्वास रखता है तो क्या उसे ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिए और उसकी उपासना करनी चाहिए?

अगर किसी व्यक्ति को ईश्वर की उपासना और उसकी पूजा करनी भी हो तो क्या इसका कोई निश्चित समय, स्थान, स्वरूप और इसके तय वाक्य या गीत होने चाहिए?

इसके अलावा क्या ईश्वर को भौतिक वस्तुएं दी जानी चाहिए? अगर वाकई भगवान है और लोगों की उसमें आस्था है तो क्या अलग-अलग धर्मों के लोगों का अलग-अलग व्यवहार अपेक्षित है?

इन प्रश्नों को परे रखकर देखें तो जो लोग अपने आप को महान विद्वान मानते हैं, जिनको लगता है कि वे सर्वज्ञ हैं, उनके लिए ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं यह एक अलग प्रश्न है। 'केवल यदि आप लोगों को यह यकीन दिलाते हैं कि एक सर्वशक्तिमान ईश्वर है तभी लोग ईमानदारी से जिएंगे। उस भय को समाप्त नहीं किया जाना चाहिए।'

अब जरा इस पर चिंतन करते हैं। ईश्वर के बारे में किए जाने वाले विचार, उसके गुण, उसके निर्णयात्मक कार्य, बेहद खतरनाक प्रतिकार मसलन नर्क, अगले जन्म में होने वाले कष्ट जैसे दंड या फिर किसी तरह की आजादी की खुशी, उच्च वर्ण में जन्म, या पिछले जन्म में किए गए अच्छे कामों की बदौलत नए जन्म में असंख्य सुविधाएं, ईश्वर इन तमाम लाभों की गारंटी भी देता है। निहायत बुद्धिमता के साथ रचे गए वेद, शास्त्र और पुराण आदि का काल्पनिक और रचनात्मक लेखन आदि इन सभी को हजारों साल पहले हमारे मस्तिष्क में भर दिया गया। आज भी बहुत बड़ी संख्या में लोग बल्कि लगभग सभी लोग, ईमानदारी से नहीं जीते हैं, वे बिना दूसरों का शोषण किए या बिना उन पर नियंत्रण किए नहीं रहते, एक सामान्य मनुष्य से बेहतर जीवनानंद नहीं ले पाते। अगर इन बातों का विश्लेषण किया जाए कि ऐसा क्यों होता है या फिर भगवान के भय की भावना के कारण लोगों को कोई लाभ होता है तो यह तर्क भी अपनी वैधता और प्रभाव खो देता है कि एक मनुष्य

के समुचित आचरण के लिए ईश्वर की अवधारणा का होना आवश्यक है।

चूंकि हम पाते हैं कि गरीब, अशिक्षित, कम बुद्धिमतापूर्ण व्यवहार करने वाले लोग बिना समुचित आचरण, ईमानदारी और सचाई के व्यवहार करते हैं लेकिन बहुत शिक्षित, अमीर और उच्च पदों पर आसीन लोग, बड़े श्रद्धालु, धार्मिक नेता भी बिना किसी अपवाद के ऐसा ही आचरण करते हैं। ऐसे में कहा जा सकता है कि ईश्वर में आस्था और उच्च आचरण तथा सदाचार का कोई संबंध नहीं है। अगर हम यह पूछते हैं कि ईश्वर को एक रूप देना क्यों आवश्यक है तो हमसे कहा जाता है, 'अज्ञानी, मूर्ख आम लोग ईश्वर के स्वरूप की अवधारणा को नहीं समझ सकते। इसी प्रकार ईश्वर को विभिन्न रूपों में दिखाया जाता है ताकि लोगों के मन में भय और दासता की भावना बरकरार रहे। ईश्वर में कई खतरनाक गुण डाले जाते हैं और ईश्वर हमेशा उच्च वर्ण का होता है। चतुर लोग ईश्वर को ऐसे स्वरूप प्रदान करते हैं। 'अगर हम इस व्याख्या के बारे में विचार करें तो इसकी गैर उपयोगिता, अज्ञानता और इससे जुड़े षडयंत्र एकदम आराम से स्पष्ट हो जाएंगे। आमतौर पर ईश्वर को एक रूप देने की अवधि 2,000 से 3,000 वर्ष मानी जाती है। यही वह दौर था जब हमारे देश में ईश्वर की उपासना का क्रम शुरू हुआ। यानी हम कह सकते हैं कि हमारे पास ईश्वर की शक्ल तब से है जब से आर्य देश में आए। उन्होंने लोगों पर अपनी आर्य आस्था थोपी और इस क्रम में काल्पनिक ईश्वरों की रचना की और उनको नए रूप प्रदान किए। इसकी वजह यह है कि आप चाहे जिस ईश्वर को चुनें उसका आर्यों की कथाओं से कोई न कोई संबंध अवश्य होगा। लेकिन तीन, चार हजार सालों से ईश्वर को तमाम रूप दिए गए और इसके बावजूद लोग अब भी इस विचार में आस्था रखते हैं। न केवल अनभिज्ञ सामान्य लोग बल्कि पढ़े लिखे विद्वान और संतों के बीच भी ईश्वर को लेकर सच्ची श्रद्धा गैरमौजूद नजर आती है। उनके कामों और उनके तर्क में ईश्वरीय झलक नजर नहीं आती। यह बात साफतौर पर उस मिथक को समाप्त कर देती है कि ईश्वर के नाना रूपों का निर्माण उसमें आस्था पैदा करने के लिये की गई थी व इसके तमाम लाभ हैं।

यदि सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर कहीं है भी तो लोगों को इस बात पर विचार ही क्यों करना चाहिए कि ईश्वर है भी या नहीं? कुछ लोगों को ऐसा क्यों लगता है कि कोई ईश्वर नहीं है? वे उसकी मौजूदगी पर संदेह क्यों करते हैं? अगर यह मान भी लिया जाए कि कुछ अज्ञानी लोगों के मन में इस तरह के विचार आते हैं तो समझदार लोगों को ईश्वर को बचाने और आस्तिकता का प्रचार करने की आवश्यकता क्यों महसूस होती है? उनको अपने बच्चों और स्कूलों में विद्यार्थियों को यह क्यों सिखाना पड़ता है कि ईश्वर है?

इसके अलावा आखिर भगवान के अवतार के विचार की क्या आवश्यकता पड़ी? कुछ लोगों के बारे में कहा जाता है कि उनमें ईश्वरीय गुण विद्यमान हैं, ईश्वर

को सुअर, मनुष्य और यहां तक कि कई भद्दे रूपों में चित्रित किया गया है, आखिर क्यों? ईश्वर को बच्चों, संदेशवाहकों आदि की क्या जरूरत? उसे वाणी के जरिए संदेश जारी करने की क्या आवश्यकता? वह लोगों के जरिए बात क्यों करता है (शरीर को हिलाने और लोगों को अमुक तमुक काम करने के निर्देश)?

ये काम सही हैं या गलत, इसकी पुष्टि नहीं होती न ही ईश्वर के अस्तित्व की। इस बारे में गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए कि क्या लोगों के लिए ईश्वर के अस्तित्व की कोई उपयोगिता है या फिर क्या समाज कल्याण अथवा लोक व्यवहार की बेहतरी में उसकी कोई भूमिका है।

अब तक चाहे जो भी हुआ हो, लेकिन अब यह आवश्यक है कि मनुष्य एक ऐसा जीवन जिए जिसमें भय और चिंता के लिए कोई जगह नहीं हो। उसे एक शांतिपूर्ण और बेहतर जीवन जीने की अधिकार है। सामाजिक मानकों और नियमों को बनाते वक्त भी इस बात का ध्यान रखा जाए वरना भविष्य खतरों से भरा होगा।

ऐसा इसलिए क्योंकि अब लोग जल्दी नहीं मरेंगे। अब तक अगर हमारे लोगों की औसत उम्र 25 साल थी तो अब यह 50 साल हो जाएगी। स्वास्थ्य और चिकित्सा सुविधाएं बढ़ी हैं। अब तक लोग बीमारियों और समस्याओं को ईश्वर की मर्जी मानते थे और युवावस्था में ही मर जाते थे। लेकिन अब लोगों को खुद पर भरोसा है। वे इन बाधाओं से निकलने की राह तलाश कर रहे हैं। जीवन के अनेक क्षेत्रों में लोगों ने तरक्की की है और जीवन संभाव्यता बढ़ गई है।

इसी प्रकार आबादी भी बढ़ रही है। गर्भपात, बच्चों की कम उम्र में मौत, प्रसव के दौरान मौत आदि में अब कमी आ रही है क्योंकि न केवल स्वास्थ्य सुविधाएं सुधरी हैं बल्कि सुरक्षित चिकित्सा भी उपलब्ध हो रही है। संतानहीनता की समस्या हल करने में भी मदद मिली है। अब विधवाओं को यूं ही जीवन गुजारने की मजबूरी नहीं है क्योंकि विधवा पुनर्विवाह हो रहे हैं, प्रेम विवाह की स्वतंत्रता है। इन तमाम बातों की वजह से जन्म दर में बढ़ोतरी हो रही है।

आमतौर पर चिकित्सा और स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार की वजह से लोगों के अब 2, 3 या चार बच्चों की जगह अब 6, 8, 10 और 12 तक बच्चे हो रहे हैं। वे लंबे समय तक जीवन जी रहे हैं। उन सबको भोजन, आराम, बढिया़ जीवन, चाहिए। यह बात खाने की कमी और अकाल की वजह बनेगी। लोगों में नफरत, धोखाधड़ी, लूट, हत्या आदि की घटनाएं बढ़ेंगी। अच्छे और ईमानदार लोगों को कठिनाई होगी। बेईमान लोग और ठग सहज जीवन जिएंगे। सरकार भी ऐसे ही गुणों वाली बनेगी।

(निबंध - रिपब्लिक (कुडियारासू)7-5-1949)

धर्म के बारे में

धर्म एक नियामकीय अनुशासन है। एक धार्मिक व्यक्ति चाहे जितना बुद्धिमान हो उसे उस अनुशासन का पालन करना ही पड़ता है। लेकिन उसके पास इसका और कोई उपयोग नहीं होता। धार्मिक नजरिये से देखें तो धर्म के नाम पर हासिल क्या होता है? ईश्वर की अवधारणा, स्वर्ग, नर्क, वेद, धार्मिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था में उसके प्रवेश के पश्चात एक धार्मिक प्रभुत्व, शेष कुछ नहीं। ये सारी बातें सही नहीं हैं। न तो इनके पीछे सही तर्क हैं न दर्शन। ये पूरी तरह कृत्रिम और प्राकृतिक मूल्यों के विरुद्ध हैं।

एक धार्मिक व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म का क्यों न हो, उसका ईश्वर चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो वह हमेशा एक कृत्रिम ईश्वर होता है। यहां प्रकृति कृत्रिम आदि शब्दों का अर्थ समझा जाना चाहिए। भोजन करना, पेट की हलचल, देखना, सुनना, सांस लेना, बात करना, दर्द महसूस करना, भूख महसूस करना, सोना, जगना, यौन सुख, खुशी, दर्द, सूरज, चांद, प्रकाश, अंधेरा, पांचों तत्त्व प्रकृति के अंग हैं। ये सभी मनुष्य के लिए आम हैं और इनको कोई नकार नहीं सकता। ईश्वर, धर्म, स्वर्ग, नर्क, उपहार, दंड, संपत्ति, गौरव, शोषण, समर्पण, प्रार्थना, वेद आदि ये सभी प्राकृतिक नहीं बल्कि पूरी तरह काल्पनिक हैं।

इस प्रकृति और इसके कृत्रिम चरित्र को समझने की क्षमता का संबंध सीधी धारणा और बुद्धि से है बजाय कि आस्था से जो इसके एकदम विपरीत है।

धार्मिक आस्था वाले किसी व्यक्ति की बात करें तो उसका धर्म चाहे जो भी हो लेकिन वह केवल आस्तिक ही होगा तार्किक नहीं। उदाहरण के लिए अगर कोई व्यक्ति ईसा मसीह या बाइबिल का जिक्र करता है तो यह केवल वही व्यक्ति करेगा जिसने ईसा को स्वीकार किया हो और जो बाइबिल में आस्था रखता हो। इससे उन लोगों का कोई लेनादेना नहीं जो उसमें यकीन नहीं करते। बाद वाली श्रेणी के लिए यह अतार्किक और असत्य के सिवा कुछ नहीं।

इसी प्रकार अगर कोई व्यक्ति पैगंबर मोहम्मद और कुरान का जिक्र करता है तो यह विचार केवल उन लोगों के लिए है जो इन दोनों में आस्था रखते हैं। जिनकी इनमें आस्था नहीं है वे पैगंबर या कुरान पर यकीन क्यों करेंगे? यही बात तमाम धर्मों और धर्मशास्त्रों पर लागू होती है। जो भरोसा नहीं करता या स्वीकार नहीं करता उसके लिए ईश्वर और उसमें आस्था दोनों कृत्रिम हैं। ठीक जिस प्रकार कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कहता है कि आपको ईसा में और बाइबिल में भरोसा करना ही चाहिए वरना आप नर्क में जाएंगे। या फिर जिस तरह कोई अन्य व्यक्ति किसी दूसरे से कहता है कि आपको पैगंबर में विश्वास करना ही चाहिए वरना आप नर्क की आग में जलेंगे। ये बातें वैसे ही बेतुकी और बेवकूफाना हैं जैसा कि यह कहने वाला व्यक्ति, 'आपको ईश्वर में यकीन करना ही चाहिए। आपको स्वर्ग और नर्क में भी भरोसा करना चाहिए। वरना आप नर्क में जाओगे।' धार्मिक लोग इस बात को समझेंगे। ईश्वर और धर्म केवल मूर्खों पर शासन कर सकते हैं। वे एक आस्तिक व्यक्ति को उन्मादी और पागल बना देते हैं। लेकिन एक धर्म या देवता तार्किक व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ सकता।

मैं अक्सर ईश्वर और उससे जुड़े मसलों की तुलना प्याज से करता हूं। प्याज में बीज नहीं होता। केवल छिलका ही छिलका निकलता है उसमें। यहां प्याज से तात्पर्य है निर्जीव, बीजरहित शरीर जिसमें केवल छिलका रूपी त्वचा ही हो। पूरा छिलका उतारते जाइए और आखिर में आपको कुछ नहीं मिलता। क्योंकि उसमें बीज तो होता ही नहीं। ईश्वर और धर्म भी बहुत हद तक ऐसे ही हैं। इन शब्दों का कोई प्राकृतिक अर्थ है ही नहीं। इनको अर्थ उन लोगों ने प्रदान किया है जिन्होंने वास्तव में ये शब्द गढ़े हैं।

परंतु क्या कोई व्यक्ति कह सकता है कि सूर्य और चंद्र आदि भी उसके जैसे हैं? नहीं क्यों वे सच हैं। यहां तक कि मूर्ख से मूर्ख और महान तर्कवादी तक कोई इस तथ्य से इनकार नहीं करेगा। वे यह नहीं कहेंगे कि चूंकि वे मुझे नजर नहीं आते हैं इसलिए मैं उनको स्वीकार नहीं करूंगा। वह कभी ऐसा नहीं कहेंगे। प्रकृति और सच का यही उदाहरण है जो उसे कृत्रिमता, कल्पना और मिथक से अलग करता है। इसके अलावा धार्मिक व्यक्तियों को यह सोचना चाहिए कि आखिर क्यों कुछ लोग उनके धर्म से इनकार करते हैं? इसी तरह आस्तिकों को यह भी सोचना चाहिए कि आखिर क्यों कुछ लोग ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते।

यह भी कि आखिर किस तरह ईश्वर में आस्था रखने वाले और धार्मिक लोग उन लोगों से श्रेष्ठ हैं जो ईश्वर को या धर्म को स्वीकार करने से इनकार करते हैं? वे भला किस तरह समझदार या बुद्धिमान हैं? उनमें कौन से अंग बेहतर हैं? इन बातों पर गंभीरतपूर्वक विचार किया जाना चाहिए। इस बात पर भी समुचित चिंतन होना चाहिए कि जब मनुष्य के पास बेहतर बौद्धिकता हो, वह तार्किक नजरिया रखता

हो, उसमें गहन विचार शक्ति हो तथा वह अनुभवजनित जीवन जी सकता हो तो भला ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है?

ईश्वर की अवधारणा मनुष्य रचित है। उसने ही ईश्वर को सबकुछ रचने का श्रेय दिया है और यह कहा कि वही दुनिया का कारोबार चला रहा है। कहने का तात्पर्य यह कि आप अच्छा करें या बुरा आप मालिक नहीं हैं, आपको ऐसा करने को कहा गया है। आस्तिकों द्वारा लोगों को ईश्वर के काम के बारे में यही बताया जाता है। क्या यह विचार किसी के लिए किसी तरह भी मददगार है? बहुत सहज ढंग से इसका प्रयोग दूसरों को मशविरा देने में किया जा सकता है लेकिन क्या इस पर यकीन करते हुए कोई इसे अपने जीवन आचरण का निर्देशक बना सकता है?

जब तक लोग मूर्ख या अज्ञानी हैं, जब तक उनमें सोचने की क्षमता नहीं है, और वे बिना इसके ही रह लेते हैं, तब तक भगवान सर्वशक्तिमान और समस्त गतिविधियों पर नियंत्रण करने वाला बना रहेगा। लेकिन आज एक विचार और बुद्धिमान व्यक्ति के लिए क्या इस बात को सही माना जा सकता है? क्या उसके लिए यह स्वीकार्य है?

इतना ही नहीं ईश्वर और धर्म के विचार हजारों साल पहले से अस्तित्व में हैं। क्या कोई इस बात से इनकार कर सकता है कि ऐसे विचार या ऐसी कल्पनाओं में वर्ष बीतने के साथ धीरे-धीरे बदलाव आया है। इस परिदृश्य में जब करीब 2000 साल पहले ईसाई धर्म और ईश्वर की स्थापना हुई या करीब 1500 साल पहले जब अल्लाह और पैगंबर के विचार की स्थापना हुई तब से उनमें सुधार हुए हैं। ऐसे में अगर कोई कहे कि हजारों वर्ष पहले बने आर्य धर्म और आर्य देवताओं में सुधार नहीं होगा तो इसे तार्किक रूप से कैसे स्वीकार किया जा सकता है?

इन सबका निर्माण मनुष्य ने किया है और अगर यह कहा जाए कि इनका निर्माण मनुष्यगत गुणों लेकिन कहीं अधिक महान क्षमताओं और मनुष्य से परे शक्तियों के साथ किया गया है तो मैं कहूंगा कि यह धोखाधड़ी के सिवा कुछ नहीं है। यह सच नहीं हो सकता है और न ही इसका बुद्धिमता से कोई लेनादेना है।

इन सभी का निर्माण मनुष्य ने किया। अगर कहा जाए कि इन सभी का निर्माण मानवीय गुणों के साथ लेकिन मानव से परे क्षमताओं के साथ किया गया है। ऐसे में मैं यही कहूंगा कि ऐसी तमाम बातें धोखेबाजी के सिवा कुछ नहीं हैं। ये सच नहीं हो सकती हैं। न ही इनमें कोई बुद्धिमता झलकती है। इसमें किसी तरह की जिम्मेदारी भी नहीं नजर आती। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि मानवजाति का मौजूदा स्वभाव, उसका वैज्ञानिक विकास और उसके पूवार्नुमान आदि 1500, 2000, 5000 और 10,000 साल पहले की तुलना में कई गुना बेहतर हैं।

ईश्वर, धर्म और अतीत में उनको बनाने वाले लोग तथा सामान्य मानव स्वभाव से ऊपर के लोगों का यही कहना था कि आप गरीबों की मदद करें और आपको

इसका लाभ स्वर्ग में मिलेगा। परंतु आधुनिक विज्ञान की सामान्य वैज्ञानिक क्षमता कहती है कि आखिर दुनिया में गरीब लोग हों ही क्यों? ऐसी गरीबी होनी ही नहीं चाहिए। तथापि अतीत में गरीबों की मौजूदगी की चाहे जो वजह रही हो, जिसने भी ऐसे हालात पैदा किए हों लेकिन मौजूदा समाज में किसी को गरीब नहीं होना चाहिए। इन बातों का कोई क्या जवाब देगा, कोई भी दैवीय पुरुष इसे लेकर क्या रुख अपनाएगा? ऐसे में ईश्वर, धर्म, दैवीय व्यक्तित्त्व आदि कोई भी हो, उसे बचाए रखने के लिए उन्हें विनम्र बनना होगा। मिसाल के तौर पर अगर लोग गौरव बोध से सामने आने लगें और कहने लगें कि हम भगवान के भक्त हैं, हम उसके संरक्षक हैं तो यह निश्चित माना जा सकता है कि ऐसे लोग धर्म और ईश्वर और उसकी महानता का खात्मा करने का ही काम करेंगे। ईश्वर, धर्म और दैवीय व्यक्तित्त्व, इन सबसे बुरा है भेदभाव करना, लोगों के बीच में अंतर करना और इसकी वजह से लोगों को होने वाला कष्ट। दैवीय शक्ति के नाम पर यह लोगों में मूर्खता और अहंकार का संचार करती है। उनको बताया जाता है कि कोई उच्च शक्ति है जो मनुष्य और उसकी शक्तियों से बेहतर है।

हालांकि ऐसी धार्मिक भावनाएं 30 की उम्र से अधिक के वयस्क में भी नजर आती हैं लेकिन मेरा मानना है कि 24 या 30 से कम उम्र के लोगों में ऐसे मनोभाव नहीं होने चाहिए। केवल ईश्वर रहित भावना के साथ ही मनुष्य सबको समान समझ सकता है। केवल उसी स्थिति में उसमें यह ईमानदारी और साहस आता है कि वह अच्छी चीजों को सराह सकें, जन सेवा करने की क्षमता, हर किसी को समान समझने की क्षमता पैदा होती है। मेरा विनम्र निष्कर्ष है कि अगर आज यहां ऐसी स्थिति नहीं है तो ऐसा इसलिए क्योंकि ईश्वर और धर्म की बातें, दैवीय गुण वाले मनुष्यों की बातें यहां मौजूद हैं।

धर्म की अवधारणा

आमतौर पर धर्म और मार्ग आदि शब्दों को अच्छी भावना के साथ देखा जाता है और मूलतः इनका आविष्कार भी मानव समाज के साझा कल्याण की भावना के साथ किया गया था। धर्म और मार्ग मानव जीवन की बेहतरी के मानक तय करने के लिए बनाए गए।

ठीक पुस्तकालय के सदस्यों की तरह, मनोरंजन क्लब अथवा किसी भी अन्य संगठन में भागीदार समूह की प्रशासनिक जरूरतों के मुताबिक, उनकी प्रकृति और स्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही नियम एवं नियमन तैयार किए जाते हैं। ताकि वे बिना किसी बाधा या अनचाही परेशानी के अथवा दूसरों को दिक्कत पैदा किए बगैर साथ में रह सकें। बिल्कुल इसी तर्ज पर धार्मिक समूहों में भी उनके नेताओं या विद्वानों द्वारा नियम कायदे विकसित किए जाते हैं।

इनका निर्माण करते समय कालखंड, स्थान, मानव विकास की अवस्था और अन्य प्रासांगिक कारकों का भी ध्यान रखा गया। लेकिन इन सिद्धांतों का एक मकसद यह भी है कि लोगों के मन में डर पैदा किया जाए। ऐसे लोग जो अच्छे और बुरे कामों के नतीजों पर बहुत अधिक विचार न कर सकते हों, ऐसे लोग जो बौद्धिक रूप से बहुत अधिक विकसित नहीं हों, उनको ऐसे मानक मानने के लिए विवश किया जाता जो इन मानकों की स्थापना करने वालों के अनुकूल होते। ऐसा करने वालों को तमाम मिथकों का प्रयोग करने में भी कोई हिचक नहीं होती।

यह काफी हद तक उनके माता-पिता या संरक्षकों के अनुसार ही है जो यह जानते हैं कि उनका बच्चा खुद अपनी देखभाल नहीं कर सकता, वह उसे बताई गई सही प्रक्रियाओं का पालन तक नहीं कर सकता है और इस तरह वह बाहर जाकर किसी खतरे का मुकाबला करने में सक्षम नहीं है। वे बच्चे को यह कहकर डराते हैं कि अगर तुम बाहर जाओगे तो कोई तुमको ले भागेगा, तुमको भूत उठा ले जाएगा, लाठी वाला आदमी तुमको ले जाएगा, वगैरह...वगैरह। ऐसी तमाम बातें

करके वे बच्चे के मन में भय का संचार करते हैं ताकि बच्चा भयभीत हो जाए और वह खुद घर से बाहर ही न जाए। ऐसे में जब यह सोचा गया कि लोग समुचित जीवन जीने के लिए जरूरी मानक और धार्मिक व्यवहार करने में सक्षम नहीं हैं तो उस वक्त के विद्वानों ने लोगों को कुछ तय मानक मानने को कहा और उनको इस कदर भयभीत किया कि वे इनको स्वीकार कर लें।

धमकियों और नियमों की वही स्थितियां आज स्वर्ग, नर्क, यम, पुर्नजन्म, कर्म, किस्मत आदि की अवधारणा बनी हैं। ठीक इसी तरह इन विचारों को शास्त्रों, पुराणों, इतिहास आदि के जरिए लोगों के दिलो दिमाग में दाखिल किया गया।

इतना ही नहीं, ऊपरोक्त जैसी तमाम बातें कहने और लिखने के बाद यह जानते हुए कि लोग इन पर भरोसा नहीं करेंगे, कहा गया कि ये बातें भगवान, ऋषियों और मुनियों ने कही है। इस कवायद का तात्पर्य था आम लोगों को प्रभावित करना कि चूंकि ये बातें ऐसे लोगों ने कही हैं जो सामान्य मनुष्यों की तुलना में अत्यधिक श्रेष्ठ थे इसलिए हमें इनका पालन करना ही चाहिए। उनसे यह भी कहा गया कि इन पर यकीन करने वाले स्वर्ग जाएंगे, यकीन न करने वाले नर्क में जाएंगे और वे गधे आदि के रूप में जन्म लेंगे। सामान्य लोग इनका भरोसा कर लेते और इसका फायदा कुछ पंडितों ने अपनी जिंदगी को आरामदेह बनाने में किया। उन्होंने दूसरों के जीवन पर इस प्रकार कब्जा कर लिया कि काफी समय बीत जाने के बाद भी कुछ भी बदलाव नहीं आता था। ऐसी स्थितियों में काफी समय बीत जाने के बाद बदलाव की जरूरत महसूस होने पर नए धर्म सामने आने लगे। ये धर्म समय की जरूरत के मुताबिक बदल चुके थे। नई परिस्थितियों में इनका आधार बढ़ा।

ऐसे में अगर उपरोक्त तर्कों पर बना कोई धर्म समय, स्थान और परिस्थितियों के मुताबिक बदलाव को स्वीकार करता है तो ऐसे धर्म को समझदार व्यक्ति स्वीकार करेंगे। अगर यह माना जाए कि मनुष्य धर्म के मुताबिक रहता है और यह स्वीकार न किया जाए कि धर्म को मनुष्य का जीवन बेहतर बनाने के लिए गढ़ा गया है और वह भी समय और बौद्धिक विकास के साथ बदलाव को ध्यान में रखते हुए और यह माना जाए कि व्यक्ति का एकमात्र कर्तव्य धर्म की रक्षा करना है। धर्म चाहे कैसा भी हो किसी को उसकी आलोचना करने या उसमें बदलाव करने का अधिकार नहीं है। ऐसे में मानव समाज में सुधार के आकांक्षी हर व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि ऐसे धर्म को नष्ट कर दे। धार्मिक सेवाएं ऐसी ही समाज कल्याण सेवाओं के अधीन हैं।

(चेन्नई के पचियप्पा कॉलेज में दिया गया भाषण - रिपब्लिक (कुडियारासू) 25.1.1931)

हिंदू धर्म

अध्यक्ष महोदय, बहनों और भाइयों : आमतौर पर और खासतौर पर हिंदुओं में हजारों में से कोई एक व्यक्ति ही ऐसा होगा जिसके पास यह ज्ञान होगा, वह भी बहुत सीमित मात्रा में कि ईश्वर क्या है, मूल्यों का उचित संरक्षण क्या है, धर्म क्या है और हमें किस नैतिक आचरण का पालन करना चाहिए। समाज में इससे बुरा कुछ भी नहीं हो सकता है। इनमें से अधिकांश लोग ईश्वर के बारे में क्या सोचते हैं? कई लोग सोचते हैं कि ईश्वर का एक मानवीय स्वरूप है। यह भी कि उसके भी पत्नी, बेटा, मां-बाप, घर, संपत्ति, खुशियां आदि होते हैं। वे यह भी सोचते हैं कि ईश्वर विवाह करता है, उसका शयनकक्ष होता है, गभार्धान संस्कार और संतानोत्पत्ति आदि होते हैं। उनको लगता है कि हजारों नाम वाले हजारों ईश्वर मौजूद हैं। उनके लिए ईश्वरीय समर्पण और कुछ नहीं बल्कि ईश्वर का अभिषेक करना, उसे प्रसाद चढ़ाना, पूजा करना, दिया दिखाना और समारोह आदि आयोजित करना होता है।

इसी तरह जब वे धर्म के बारे में विचार करते हैं तो वे सोचते हैं कि हिंदुत्व माथे पर लगे तिलक, पवित्र भस्म अथवा चंदन का लेप लगाना है। वे लोगों को बड़ी-छोटी जातियों में बांटने को भी इसी नजरिये से देखते हैं। उनको लगता है कि त्योहार आयोजित करना, ऐसे उत्सव में आने वालों के लिए आवास तैयार करना, उनको भोजना आदि उपलब्ध कराना ही धर्म है। इन कामों को करने के लिए वे प्रचार का सहारा लेते हैं। ऐसी गतिविधियों में जनता का धन खर्च करते हैं और तब वे सुरक्षित महसूस करते हैं।

हिंदू समाज की मूलभूत कमी उसकी बुनियाद में निहित है। यह है ईश्वर और धर्म को लेकर हमारी अवधारणा। जब तक यह समझ या रवैया बरकरार रहेगा तब तक समाज के सही रास्ते पर वापस आने की कोई संभावना नहीं है। हमें हर बात के लिए भगवान की इच्छा को जवाबदेह ठहराना छोडऩा होगा साथ ही यह लालची और मूर्खतापूर्ण विचार भी त्यागना होगा कि हम बिना किसी मेहनत के केवल

भगवान को मूर्ख बनाकर अपनी सारी जरूरतें पूरी कर लेंगे। भगवान भी हमारी तरह दो हाथ, पैर, आंख, कान और नाक वाला है। अगर हम उसके बारे में सोचते हैं, उसके सामने प्रदर्शन करते, नारियल तोड़ते या उसे फल की पेशकश करते हैं अथवा उसकी उपासना करते या पुजारी को पैसा देते हैं तो हमें लगता है हमने बतौर मनुष्य अपने सभी कर्तव्यों की इतिश्री कर ली और हमारी सारी गलतियां ऐसा करने भर से माफ हो जाएंगी। ऐसे विचारों और कार्यों से अधिक मूर्खतापूर्ण कुछ भी नहीं। लोगों द्वारा इतनी जघन्य चीजें करने की वजह यही है कि वे ईश्वर को नहीं समझते। जिन लोगों को लगता है कि वे ईश्वर को समझ चुके हैं, उनको लगता है कि अगर वे ईश्वर की पूजा करेंगे और उससे क्षमा मांगेगे तो वह उनकी तमाम गलतियों को माफ कर देगा। जिन लोगों को लगता है कि ईश्वर है और उसे हर बात की जानकारी है, उनमें भी हजारों में कोई एक ही होगा जो हर बात ईश्वर की मर्जी पर छोड़ देता हो। इन सबकी वजह है कानून को लेकर अनदेखी, जो सही नहीं है और ईश्वर की गलत अवधारणा पर यकीन।

हम यह भी पाते हैं कि ईश्वरीय आदेश के रूप में पेश की जाने वाली बातें अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग और विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न होती हैं। ऐसे में इन्हें ईश्वरीय आदेश के रूप में मान कैसे दिया जा सकता है? ठीक इसी तरह अलग-अलग देश, धर्म और जातियों में पाप और पुण्य के मानक भी जुदा-जुदा हैं। यहां तक कि हमारे विवाहों में भी अलग-अलग धर्म और जाति में अलग नियम कायदे लागू हैं।

कुछ लोग अपने पिता के बड़े या छोटे भाई की बेटी से विवाह कर लेते हैं। कुछ लोग अपने पिता की बहन की बेटी या मां के भाई से विवाह कर लेते हैं। कुछ लोग बिना किसी भेद किसी से भी विवाह कर लेते हैं।

भोजन की बात करें तो कुछ लोगों को गोमांस खाना पाप लगता है तो कुछ अन्य को सुअर का मांस खाना पाप लगता है। कुछ लोग किसी तरह मुर्ग के सेवन को सही नहीं मानते। हिंदुओं में से कुछ कहते हैं कि गाय को पीटने और उससे काम लेने में कोई हर्ज नहीं लेकिन उनको सांप को पीटना या जान से मारना पाप लगता है। कुछ लोग कहते हैं कि किसी भी पशु को किसी भी प्रकार कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए। अन्य कहते हैं कि सभी पशु बने ही इसलिए हैं कि मनुष्य उनका भोग कर सके। इनमें सत्य क्या है? ईश्वर का आदेश क्या है? पाप क्या है यह कौन निर्धारित करेगा? अगर कोई शोध से यह जानना चाहता है तो उसे नास्तिक करार दे दिया जाता है और उससे पूछा जाता है कि आखिर वह इन चीजों को लेकर क्यों चिंतित है? उसे कहा जाता है कि अपने पुरखों के तर्ज पर जिंदगी जियो।

अगर आप यह जानना चाहेंगे कि वे पुरखे यानी समझदार व्यक्ति कौन थे, तो इस दिशा में भी कठिनाइयों की कोई कमी नहीं। अगर आप उनके कहने और रहन

सहन पर गंभीर विमर्श करेंगे तो कठिनाइयां और विरोधाभास बढ़ते जाएंगे।

उदाहरण के लिए कोई कहेगा कि हर किसी को वेद की बातों को मानना चाहिए। अगर हम पूछें कि वेदों में क्या लिखा है, क्या हम इसे देख सकते हैं तो उत्तर में वे कहेंगे, 'इसमें ईश्वर की बातें लिखी हैं जिन्हें पढना और सुनना आपके लिए पाप है। आप तो बस वह मानो जो हम कहते हैं।' दुनिया में आखिर कितने देवता हो सकते हैं! वे कहते हैं कि ईश्वर केवल एक है। ऐसी स्थिति में क्या दुनिया भर के लोगों द्वारा यह स्वीकार नहीं कर लिया जाना चाहिए?

सवाल यह है कि ईश्वर ने इस बात को ईसाइयत और इस्लाम में स्वीकार्य क्यों नहीं बनाया? दुनिया के कई अन्य देशों में भी नहीं? ऐसे में यह कहना झूठ है कि यह बात ईश्वर ने कही है। अगर किसी ने इस ओर संकेत कर दिया तो उसे वेद भ्रष्ट करार दे दिया जाएगा। इस तरह हिंदू धर्म के नाम पर क्रमशः विरोधाभासी बातें, अनुभव, ईमानदारी और पारदर्शिता की कमी जैसी बातें हैं जो समाज के तानेबाने को ध्वस्त कर रही हैं। इसके संरक्षण और निगरानी के नाम पर कीमत, समय और पैसा खर्च होता है।

हर धर्म का एक अलग देवता? हर जाति का अलग देवता? हर धर्म के अलग सिद्धांत? हर धर्म में पाप और पुण्य की अलग अवधारणा? क्या ईश्वर, स्वर्ग और नर्क के लिए अलग-अलग दुनिया है? ऐसा नहीं हो सकता है। ठीक जिस तरह एक बच्चा अपने बड़ों को मंदिर में करबद्ध होकर पूजा करते देख बिना कुछ सोचे समझे उनका अनुसरण करने लगता है, ठीक उसी तरह ईश्वर और धर्म आदि ने हमारे दिमाग में घर बना लिया है। क्योंकि हमें अक्सर दूसरों से उनके बारे में सुनने को मिलता रहता है। इसी तरह भक्ति, सेवा और अहिंसा आदि का बिना किसी अर्थ के प्रयोग किया जाता है।

अगर आप इस बारे में सोचेंगे तो हम अपने साथियों के प्रति जो प्यार जताते हैं वह ईश्वर के प्रति समर्पण कहा जा सकता है। उनकी सेवा करना ईश्वर की सेवा है। उनको बंधनों से आजाद करना ही असली आजादी या स्वर्ग है। उनके प्रति दया भाव का प्रदर्शन और उनको दर्द से दूर रखना ही अहिंसा है। केवल मांस से परहेज ही अहिंसा नहीं है। बल्कि तार्किक लोगों को कष्ट न पहुंचाना, उनको नुकसान न पहुंचाना, उनकी कठिनाइयों और विपरीत परिस्थितियों को दूर करने के लिए काम करना आदि ही वास्तविक अहिंसा हैं। मांस न खाया जाए लेकिन रोज बैलगाड़ी में भार लादकर बैल से खिंचवाया जाए तो यह कैसी अहिंसा है। इसी तरह अन्य लोगों को कठिनाई पहुंचाना, उनके साथ क्रूरता का व्यवहार करना अहिंसा नहीं है!

किसी अन्य व्यक्ति को देखना तक पाप है, अगर कुछ लोग किन्हीं खास गलियों पर चलते हैं तो यह पाप है, ऐसी बातें कहना और माथे पर बड़ा सा वैष्णव टीका लगाना, पारंपरिक धोती पहनना और राम-राम जैसे शब्दों का उच्चार के वजह से

ही यह स्वीकार्य और उचित धार्मिक श्रद्धा में नहीं बदल सकता।

जब हमारे आसपास करोड़ों लोग बिना छत के रहते हैं, वे कई-कई दिनों तक अच्छा भोजन तक नहीं पा सकते और जबरदस्त गरीबी में रहने पर मजबूर हों तो क्या आलसियों और वेश्याओं के लिए मठ और सराय बनाना उचित है या फिर पवित्र भोज के नाम पर उन लोगों को दावत देना क्या उचित है, जो यह शिकायत करते हैं कि पांच प्रकार के व्यंजन नहीं थे, और अधिक काजू डाला जाना चाहिए था आदि आदि? उचित दृष्टिकोण अपनाने के बजाय स्वार्थियों द्वारा अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए लिखी बातों पर यकीन करके हम अपना समय, पैसा और बुद्धि तीनों बरबाद कर रहे हैं।

लोग मानते हैं कि हिंदू या हिंदू आचार्य चिंता से मुक्त हैं और वे इन्हीं विचारों पर आधारित जीवन जीते हैं। चूंकि ऐसा व्यवहार कुछ जातियों और कुछ व्यक्तियों या समूहों के लिए उनकी क्षुद्रताओं, अश्लीलता और लापरवाहियों को छिपाने में मदद करता है।

अगर यह कहा जाए कि हमारी मद्रास प्रेसिडेंसी में हिंदू धार्मिक कर्मकांड के नाम पर, हिंदू धर्म और भगवान के नाम पर 10 करोड़ रुपये से अधिक की राशि सालाना खर्च की जाती है तो इसे अतिशयोक्ति न समझा जाए। अगर सभी तीर्थों, देव स्थानों, उत्सव केंद्रों, त्योहारों आदि को गिना जाए तो यह आंकड़ा कई गुना बढ़ जाएगा। इन सबसे आखिर क्या लाभ होता है?

तमाम कठिनाइयों से गुजर रहे हमारे लोग केवल अंध श्रद्धा के तहत संतुष्टि हासिल करने के लिए इस कदर खर्च कर देते हैं। वहीं जिन लोगों को इस खर्च से लाभ होता है, वे आराम की जिंदगी बसर करते हैं। ध्यान दिया जाए तो इन बातों की वजह से लोगों की दासता वाली मानसिकता बढ़ी है।

(बाल्या नगर संघम में एझायिराम पन्नाई के सालाना अवसर पर 16,17-5-1926 को दिया गया भाषण। रिपब्लिक (कुडियारासु)30.5.1926)

कपटपूर्ण धर्म

श्रीमान अध्यक्ष, बहनों एवं भाइयों, मैं लगातार कहता रहा हूं कि तथाकथित राजनेता और राष्ट्रवादी, राजनीति के नाम पर आम लोगों को अपने स्वार्थ और हितों के लिए मूर्ख बनाते रहे हैं। हमें मूर्ख बनाने वाले पुजारी और ब्राह्मण समुदाय के लोग भी इनसे कम नहीं हैं, जो हमें धर्म के नाम पर धोखा देते हैं, हमारी एकता को तोड़ते हैं, हमारी कड़ी मेहनत से कमाई संपत्ति को लूटते हैं और हमारे समाज और देश को नष्ट करते हैं। वे हमें निर्जीव की तरह जीवन जीने पर मजबूर करते हैं जिसका कोई आत्मगौरव ही न हो।

इस राज को समझे बिना हम खुद इस व्यवस्था में उनकी मदद करते रहे हैं और हम खुद लंबे समय से उनकी सत्ता के अधीन खुद के और अपनी समृद्धि के दोहन का जरिया बने हुए हैं।

जब इसकी व्याख्या की जाती है तो संभव है कि आपका हृदय उत्तेजित हो जाए। लेकिन कृपया मेरी बात धैर्यपूर्वक सुनिए। उसके बाद अगर आप अपनी तार्किकता और निष्पक्षता का प्रयोग करेंगे तो निश्चित तौर पर आप मेरी बातों की सचाई से अवगत होंगे। आप समझ पाएंगे कि मैं सही हूं या गलत?

एक बार फिर याद रखिए कि मैं वेद,शास्त्र या पुराणों की तरह यह नहीं कहता कि मेरी कही बात पर भरोसा करो। यह ईश्वर का कहना है, अगर आप इसे नहीं मानोगे तो नर्क में जाओगे। आप नास्तिक हो जाओगे! मैं ऐसी बातें कहकर आप पर नियंत्रण कायम करने की कोशिश नहीं करूंगा। मैं यही कहता हूं, 'अगर आपकी बुद्धिमता, दिमाग और अनुभव मेरी बातों को स्वीकार करने को नहीं कहते तो इन पर यकीन मत कीजिये। अगर ये स्वीकार्य लगती हैं तो आप मेरी कही बातों में से कम से कम कुछ पर विश्वास कीजिए। अपने भाइयों को इसके बारे में बताइए और उनको भी आजाद कीजिए। यह समझने का प्रयास भी कीजिए कि मेरा इसमें कोई निजी स्वार्थ नहीं है। मैं किसी धर्म का एजेंट नहीं हूं। मैं किसी धर्म का दास भी नहीं हूं। मैं

प्रेम और बुद्धिमता का अनुसरण करता हूं। ऐसे में अपने विचार आपको समझाते हुए मैं सोचता हूं यह मेरा कर्तव्य है और मेरी इच्छा भी है कि मैं यह सब आपको बताऊं। इससे मुझे खुशी मिलती है। वरना मैं यह आपकी इच्छा पर छोड़ता हूं कि आप अपने कर्तव्य के बारे में क्या सोचते हैं। इसे आप अपने तार्किक मस्तिष्क से तय कीजिए।'

किसी भी व्यक्ति, समाज या देश के लिए धर्म क्यों हो? क्या यह देश या समाज को अनुशासित करने या एकरूप करने के लिए है? या उनको बांटने के लिए? क्या यह किसी व्यक्ति विशेष के सोच के नियंत्रण में है या यह व्यक्तिगत स्तर पर लोगों के सोच को नियंत्रित करने का काम करता है? क्या धर्म किसी व्यक्ति के लिए है अथवा व्यक्ति धर्म के लिए? जरा इन बातों पर विचार कीजिए। इस लिहाज से देखा जाए तो सबसे पहले हमारे धर्म की प्रकृति और उसकी गुणवत्ता के बारे में विचार करते हैं। पहली बात, कितने लोग जानते हैं हिंदुत्व कैसे बना? हिंदुओं में से कितने लोगों को इसके बारे में जानकारी है? कितने लोग यह स्वीकार करते हैं हिंदुत्व एक धर्म है?

पहली बात तो यह कि हिंदू किस भाषा का शब्द है? क्या कोई कह सकता है यह शब्द दुनिया की किसी अन्य भाषा में मौजूद है? यह शब्द हमारे देश में कब आया? अगर आप इस बारे में सोचते हैं तो क्या हिंदू और हिंदुत्व जैसे शब्द तमिल साहित्य और व्याकरण में या प्राचीन संगमन काल में सुनायी पड़ते हैं? क्या ये वेद, शास्त्र, अगम, स्मृति, पुराण और इतिहास तथा आर्य भाषा और संस्कृति के किस्से और कहानियों में नजर आते हैं? या फिर क्या ये शैव और वैष्णव श्रद्धालुओं नयमार और अलवर की जीवनियों में उल्लिखित हैं? क्या इनको सिद्ध साधु-संतों के काम, उनके लेखन और उद्धरण आदि में पाया जा सकता है?

अगर हम धर्म शब्द का अर्थ तलाश करने की कोशिश भी करें तो शोधकर्ता हमें बताते हैं कि हमारा धर्म सिद्धांत से बना है। अगर हम इस दलील को स्वीकार कर लें तो हिंदू धर्म का सिद्धांत है क्या?

अगर हम इसे स्वीकार करते हैं तो इसका तात्पर्य है 'हिंदू सिद्धांत':

हिंदू शब्द का अर्थ क्या है? हिंदू धर्म को छोड़ दिया जाए तो धर्म शब्द किसी व्यक्ति के नाम के आगे या पीछे लगा रहता है। मसलन ईसा का धर्म (ईसाइयत), पैगंबर मोहम्मद का धर्म (इस्लाम), बुद्ध का धर्म, रामानुज का धर्म, शंकराचार्य का धर्म आदि। इस लिहाज से देखा जाए तो हिंदुत्व किस व्यक्ति से जुड़ा है? इसमें किसके सिद्धांत निहित हैं? केवल उच्चारण को छोड़ दें और बिना किसी अर्थ के क्या हम धर्म को एक नाम नहीं दे रहे हैं? जरा इस बारे में सोचिए।

दूसरी बात, अन्य धर्मों की तरह हिंदुत्व की स्थापना किसने की? इसकी उम्र क्या है? इसके सिद्धांत क्या हैं? इसका स्रोत क्या है? कम से कम उनके बारे में विचार कीजिए। कुछ लोग कहते हैं कि हिंदुत्व वैदिक धर्म है। वेदों की व्युत्पत्ति ईश्वर से हुई है। जरा इस असफलता पर भी विचार कीजिए। अगर ये ईश्वर द्वारा उच्चारित हैं तो

यह सबके लिए साझा स्वीकार्य होना चाहिए। अगर यह सब ईश्वर द्वारा उच्चारित है तो क्या यह केवल एक ही भाषा में होता? अगर यह हमारे लिए है तो क्या यह हमारी मातृभाषा में नहीं होता? क्या वेदों की भाषा और हमारे बीच कोई संबंध है? इतना ही नहीं अगर ईश्वर ने इसे हमारी नैतिक उन्नति के लिए तैयार किया है तो क्या बेहतर नहीं होगा कि हम इसे सुन, देख, पढ़ और समझ सकें? क्या ये कुछ लोगों के बताए मुताबिक एक, दो, तीन, चार, पांच या छह होंगी? इतना ही नहीं क्या यह विभिन्न लोगों द्वारा दी गई अलग-अलग व्याख्याओं के चलते आसानी से प्रभावित होने वाला भी होगा? साथ ही अलग-अलग व्याख्या के चलते अपने लिए अलहदा अनुयाई जुटाने के लिहाज से भावप्रवण भी? अगर आप इन चीजों पर विचार करते हैं तो स्वाभाविक रूप से आप इस प्रश्न की ओर जाएंगे कि क्या वेद का अस्तित्व है? यदि ऐसा है भी तो इसमें सचाई कितनी है? अगर इसमें सचाई है भी तो क्या यह हम पर बाध्यकारी है? जरा इन बातों के बारे में सोचिए। हमें धर्म, वेद और ईश्वर संबंधी मसलों के बारे में गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा। दुनिया में कितने देवता हैं? हिंदू धर्म में ही कितने वेद हैं जबकि वह दुनिया के कई धर्मों में से केवल एक है? वेदों में कितने देवताओं का उल्लेख है? ईश्वर की उपासना करने वालों में कितना मतांतर है? प्रत्येक देवता के लिए कितने प्रतीक? इन प्रतीकों को लेकर कितने झगड़े? कितने तरह का खाना? कितने प्रकार के विवाह? कितने बच्चे? कितने गलत काम? इन तमाम बातों पर विचार करें। ईश्वर के उपासकों में कितने मतभेद? कितनी जातियां? कितने श्रेष्ठताबोध एवं हीनभाव? इन सबके बीच अत्यंत कम, बेहद कम लोगों को महान, पवित्र और श्रेष्ठ क्यों माना जाए? इसमें कौन सा न्याय है?

अगर ईश्वर की अवधारणा साझा है और हमारे धर्म के लिए भी यह स्वीकार्य है कि वह हर जगह विद्यमान है तो फिर ऐसा व्यवहार चलन में क्यों है कि हममें से कुछ लोग ईश्वर की मूर्ति के पास नहीं जा सकते, मंदिर में नहीं घुस सकते, केवल कुछ ही लोग ईश्वर की मूर्ति छू सकते हैं, उसे नहला सकते हैं और वस्त्र पहना सकते हैं? हमने इस धर्म को स्वीकार किया है। हमने इसमें उल्लिखित ईश्वर को भी स्वीकार किया है। हमने इन देवताओं के लिए मंदिर बनवाए हैं। उन्हें संपत्तियां अर्पित की हैं। हम रोज उनकी उपासना करते हैं। जरा सोचिए, हमें यह सब करके क्या हासिल हुआ?

एक लाख, पांच लाख या 10 लाख रुपये खर्च कर किसी मंदिर की 100,1000 या 10,000 सालों तक देखभाल करना? जरा सोचिए इस दौरान किस चीज की देखभाल की गई। मैं एक नीच व्यक्ति हूं जो इस मंदिर में रखी मूर्ति के करीब नहीं जा सकता। मैं एक निचली जाति का हूं जो इस ईश्वर की उपासना नहीं कर सकता! मुझसे ऊंची जातियां मौजूद हैं! चूंकि मैं निचली जाति से आता हूं, इसलिए मुझे इस मंदिर के बाहर खड़े रहना होगा। हमने अपने आप को कई

तरह से नीचा दिखाया है और उस निम्नता को स्वीकार किया है। जब तक ये पत्थर और मंदिर और भगवान यहां हैं तब तक मेरी अवनति, मेरा हीन दर्जा और कम स्तर बरकरार रहेगा। मेरे वारिसों को भी इन व्यवहारों का पालन करना होगा! मंदिर के निर्माण पर लाखों रुपये का खर्च, उसके लिए पवित्रीकरण समारोह, जो इस बात की स्वीकारोक्ति है कि एक जाति विशेष का व्यक्ति मुझसे श्रेष्ठ है। वह भूखा न मरे इसलिए ईश्वर के नाम पर हम उसे लाखों रुपये दान में देते हैं। जिसका उपभोग वह और उसके परिजन करते हैं। यह सिलसिला पीढ़ी दर पीढ़ी और हमेशा चलेगा। यह चक्र तब तक चलता रहेगा जब तक पत्थर हैं, कावेरी नदी है और तमाम जीव जंतु विद्यमान हैं। वे हमेशा उच्चवर्ण के लोग बने रहेंगे। यही होता है। इस बारे में विचार कीजिए और आप पाएंगे कि कुछ भी नहीं बदला है। इतना ही नहीं हम दूसरों से भी इन मंदिरों पर खर्च करने का आग्रह करते हैं। जरा सोचिए इन मंदिरों को चलाते रहने पर कितनी अधिक धनराशि खर्च हो रही है।

''सरकार हमसे कर लेती है। हमें लूटती है। सरकार यह नहीं करती, वह नहीं करती। वे पैसे की बरबादी कर रहे हैं। लोगों को शिक्षा नहीं दी जा रही। कहीं कोई व्यवस्था नहीं है।'' हम ऐसी बातें चीख-चीख कर करते हैं। क्या हम कभी ईश्वर के नाम पर होने वाली लूट को लेकर चिंतित होते हैं? क्या हम इस बारे में विचार करते हैं कि यह सब कैसे रुकेगा?

जरा तिरुवनवेली जिले में स्थित चार या पांच मंदिरों पर गौर कीजिए। तिरुवनवेली के मंदिर का वार्षिक चंदा संग्रह 70,000 रुपये है। शंकरन कोइल में यह 50,000 रुपये है। कोर्टल्लम में यह 40,000 रुपये सालाना और तिरुचेंदुर में डेढ़ लाख रुपये सालाना है। यानी देवस्थानम अधिकारियों के मुताबिक ये चार मंदिर साल में तीन लाख रुपये से अधिक की आय अर्जित करते हैं। इसके अलावा इन मंदिरों में आने वाले श्रद्धालु भी परिवहन, नारियल, फल, घी, दही, देव स्नान, वादन, नर्तकों, संगीत समारोहों, महिला सेविकाओं आदि पर खूब खर्च करते हैं। इन कामों पर कितना धन खर्च होता है? जरा सोचिए इस पूरे धन का किस प्रकार इस्तेमाल किया जा रहा है? आप निचली जाति के हैं। पूजा करने वाले तथा कुछ अन्य लोग ऊंची जाति के हैं। इसलिए आप हमेशा दीजिए और वे भोग लगाएंगे। पैसे का केवल यही इस्तेमाल है? आखिर कौन सा भगवान है जो आपसे यह सब करने को कहता है?

कुछ पेटपूजक लोग आपको बेवकूफ बना रहे हैं। मंदिर में बैठा देवता हंसता होगा और सोचता होगा, 'क्या मेरे भक्त इतने मूर्ख हैं!' इसे छोडक़र मंदिरों का कोई लाभ नहीं।

(कोर्टल्लम में 27.8.1927 को दिया गया भाषण, रिपब्लिक (कुडियारासू) 11.9.1927)

हिंदुत्व के अत्याचार

हमने कई बार लिखा है कि हिंदू धर्म जैसी कोई चीज नहीं है। ब्राह्मणों ने अपना पेट पालने के लिए तमाम झूठ लिखे और मूर्ख लोगों को धोखा देना आरंभ कर दिया। इसे धर्म, वेद और शास्त्र का नाम दिया गया। हमारे बीच के कुछ बेईमान, मूर्ख लोग उनके झांसे मे आ गए और उन्होंने उनके विचारों का प्रचार-प्रसार करने का काम किया। परिणामस्वरूप यह आलसी लोगों और स्वार्थियों की आजीविका के लिए स्वर्ग में तब्दील हो गया। यह उनके लिए पेशेवर आय और मुनाफे का जरिया बन गया और इस वजह से देश में अधिकांश लोग मूढ़, आत्मसम्मान और ईमानदारी रहित होने लगे। वे एक निरर्थक जीवन जी रहे थे।

हम जानना चाहते हैं कि क्या कोई ईमानदार व्यक्ति ऐसा सामने आएगा जो हिंदुत्व का हिमायती हो और उपरोक्त बिंदुओं पर उचित उत्तर और स्पष्टीकरण मुहैया करा सके। हम पूछना चाहते हैं कि क्या ये लोग जिन्हें राम में दोष निकालने पर बुरा लगता है, उनको लगता है कि उनके धर्म, ईश्वर और उसके मान को ठेस पहुंचाई जा रही है, क्या वे यह जानने का प्रयास करेंगे कि यह सब शुरू कहां से हुआ?

अगर वे ईमानदार हैं, उनमें पौरुष है और उनकी रगों में शुद्ध रक्त बहता है तो वे इस स्पष्टीकरण के साथ सामने आएंगे कि ये अपराध सच्चे हैं या झूठे, हिंदू धर्म के बताए जाने वाले ईश्वरों का अस्तित्त्व है अथवा नहीं? वे इस पर चर्चा भी करेंगे। यह कहने के बजाय हम केवल यह पूछेंगे कि क्या दूसरों पर आरोप लगाना किसी ईमानदार और जिम्मेदार व्यक्ति का काम है?

इसके अलावा कई बेईमान लोग यह बोलते और लिखते रहते हैं कि हम और हमारा प्रकाशन नास्तिकता का प्रचार करने में लगा हुआ है। जब हम इस बात पर विचार करते हैं तो हमें उनकी बात सही प्रतीत होती है। क्योंकि जो लोग यह लिखते और बोलते हैं कि हम नास्तिकता का प्रचार कर रहे हैं, वे खुद नास्तिकता को स्पष्ट करते हैं, उसकी बुराइयों के बारे में बताते हैं और उसके बाद हम पर अपराध करने

का आरोप लगाते हैं। इसे मानवीय आचरण माना जा सकता है। लेकिन ऐसा करने के बजाय, बल्कि बिना यह स्पष्ट किए कि नास्तकिता दरअसल है क्या, वे यह जानते हैं कि नादान लोग इस शब्द से नफरत करते हैं। इसलिए वे इस शब्द का प्रयोग निहायत बेईमानी से करते हैं ताकि लोगों को हमारे खिलाफ भड़काने का सिलसिला जारी रखा जा सके, क्योंकि ऐसे लोग चुप रहना पसंद करते हैं। कुछ पाठकों को लग सकता है कि मैं इस संदर्भ में कटु शब्दों का प्रयोग कर रहा हूं। लेकिन और किया भी क्या जाए? हम अपने पाठकों को बताना चाहते हैं कि कटु शब्दों का प्रयोग करने के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं है। क्योंकि कई बार हमने इस विषय पर सफाई दी है। लेकिन वे जानवर उन्हें आसानी से स्वीकार नहीं करेंगे। वे बार-बार नास्तिकता की बात करेंगे। वे बार-बार लिखेंगे और कहेंगे कि मैं सीता या किसी और के खिलाफ गलत भाषा प्रयोग में लाता हूं। ऐसे में उनका वास्तविक चरित्र उजागर करने के सिवा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है।

कम से कम यहां हम यह उम्मीद तो कर सकते हैं कि हिंदुत्व की वकालत करने वाले अथवा अन्य लोग आम जनता की अनदेखी का फायदा उठाने के बजाय आगे आएं और पूरी ईमानदारी से हिंदुत्व का बचाव करें। इसी प्रकार हम यह भी उम्मीद करते हैं कि जो लोग नास्तिकता की बात करते हैं, वे पहले यह स्पष्ट करें कि नास्तिकता है क्या, उसके बाद ही वे इसकी हिमायत या इसका प्रचार करें। लेकिन इसके बजाय फिलहाल वे जो कर रहे हैं वह कुछ और नहीं बल्कि बेईमानी और गलत काम है। हम यह भी बताना चाहते हैं कि ऐसे लोग हमें झुका नहीं सकते।

इसी तरह तमाम बेईमान तत्व जो पहले लोगों की अनभिज्ञता का लाभ लेते थे, उन्होंने जस्टिस पार्टी को द्रविडियन बताते हुए लोगों में उनके प्रति घृणा का संचार किया और अपनी आजीविका स्थिर बनाए रखी। लेकिन चूंकि हम बिना किसी भय के और परिणाम की चिंता किए बगैर काम कर रहे थे इसलिए लोगों को आज सच का अंदाजा हो गया है। इतना ही नहीं वे बेईमान और धोखेबाज प्रकृति के लोग भी सबके सामने आ चुके हैं और अब हाशिए पर हैं। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता है। इसलिए हालांकि लंबे समय तक आम लोगों के साथ धोखा किया गया लेकिन यह तय है कि एक वक्त आएगा जब उनको सच का पता चलेगा।

(रिपब्लिक (कुडियारासू) में प्रकाशित निबंध 24.6.1928)

हिंदुत्व का दर्शन

तिरुपति में 'तिरुपति देवस्थानम फंड्स' द्वारा संचालित एक स्कूल में अधिकारियों ने गैर ब्राह्मण छात्रों को संस्कृत साहित्य पढने़ की इजाजत देने से इनकार कर दिया। जब जनता इस बात को देवस्थानम के अधिकारी महंत के समक्ष ले गई तो उन्होंने कहा कि वे इस बारे में कुछ नहीं जानते। जब मिस मेयो ने अपनी पुस्तक 'मदर इंडिया' में लिखा कि भारत में निरक्षरता के लिए ब्राह्मण जिम्मेदार हैं तो राष्ट्रवादी नेता सत्यमूर्ति ने पंगल राजा को समाज और राष्ट्र को धोखा देने वाला बताया। एक अन्य राष्ट्रवादी नेता ने मिस मेयो को कचरा बीनने वाली करार दे दिया। हम जानना चाहते हैं कि वे तिरुपति स्कूल की घटना को लेकर क्या रुख रखते हैं?

संस्कृत ईश्वरों की भाषा है, वह ज्ञान और बुद्धिमता की भाषा है। गैर ब्राह्मणों के फंड से शुरू किए गए एक स्कूल में अगर गैर ब्राह्मण छात्र संस्कृत पढ़ना चाहता है तो उसे इसकी इजाजत नहीं दी जाती। हम जानना चाहते हैं कि क्या कोई राष्ट्रवादी नेता इस किस्म की मूढ़ता से निजात के लिए आगे आया, या किसी ने इसकी निंदा की?

हम यह भी पूछना चाहते हैं कि 'देशीय वीरा मुझक्कम' जो हमेशा ब्राह्मणों से डरते हैं और उनके चरण चूमते हैं वे कहां चले गए या छिप गए हैं? मरे हुए सांप को मारने की तरह और साइमन कमीशन के बायकॉट की बातों के साथ यह धूर्त और षडयंत्रकारी समूह जिसमें ब्राह्मण पदाधिकारियों का दबदबा है, वह हमेशा राष्ट्रवाद के नारों के साथ अपनी कमी को दूर करने का प्रयास करते हैं। क्या उनमें से किसी ने आगे आकर इन घटनाओं के प्रति चिंता जताई? हम यह जानना चाहते हैं।

उनके मुताबिक शूद्र, गैर ब्राह्मणों (ब्राह्मणों के दासों की पत्नियों के पुत्र आदि समेत) को वेद नहीं पढने़ चाहिए। अब कहा जाने लगा कि उनको संस्कृत भी नहीं पढऩी चाहिए। मैं कहूंगा कि मुझे कुछ भी स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। यह

मूर्खता का चरम है। आखिर क्यों गैर ब्राह्मणों का धन एक ऐसी विद्या को बढ़ावा देने में लगाया जाए जिसे गैर ब्राह्मण हासिल ही नहीं कर सकते। हमने यह प्रश्न उठाया। हमने यह भी जानना चाहा कि अगर इस भीड़ में शर्म, आत्मसम्मान की भावना होती और उनकी रगों में शुद्ध रक्त होता तो क्या वे (ब्राह्मण) ऐसा काम कर पाते?

हम यहां यह कहना चाहते हैं कि क्या सरकार या धार्मिक बोर्ड अथवा आम जनता इस मुद्दे पर हस्तक्षेप करेगी और यह सुनिश्चित करेगी कि आम जनता के पैसे को किसी खास समूह के निहित स्वार्थ के लिए प्रयोग में लाने पर रोक लगाई जा सके। उनको इस मसले पर आंखें मूंदे नहीं रहने दिया जा सकता। उनको यह समझना ही होगा कि आत्मसम्मान (आंदोलन) दरअसल क्या होता है।

(रिपब्लिक निबंध (कुडियारासू) 19.8.1928)

ब्राह्मण धर्म (पवित्रता का धर्म)

ब्राह्मण शिक्षक शंकराचार्य ने हिंदू धर्म के बारे में निम्नलिखित बातें कहीं थीं- (दीनामणि 27.2.1969):

'हिंदू धर्म अत्यंत प्राचीन है। इसका उद्‌भव दुनिया के साथ ही हुआ। हिंदू धर्म बताता है कि हर व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। ये कर्तव्य उस पर सनातन धर्म द्वारा आरोपित हैं।'

वह आगे कहते हैं, 'धर्म वह है जिसे कोई व्यक्ति अपने सिद्धांत के रूप में स्वीकार करता है। हिंदू धर्म की कोई शुरुआत नहीं है। अन्य धर्मों के लोग कहते हैं कि उनके धर्म की स्थापना ईश्वर के पुत्र अथवा ईश्वर के संदेशवाहक ने की है, लेकिन यह बात हिंदू धर्म के बारे में नहीं कही जा सकती है। इस धर्म की शुरुआत वैदिक काल से हुई। कोई नहीं कह सकता है कि वेद कब लिखे गए। अलग-अलग लोग इस बारे में अलग-अलग बात कहते हैं।'

स्वयं शंकराचार्य स्वीकार करते हैं कि कोई यह नहीं कह सकता कि हिंदुत्व की शुरुआत कब हुई? वे यह भी कहते हैं कि इसकी शुरुआत दुनिया के उद्‌भव के समय हुई। अपने उद्‌भव के समय दुनिया कितनी बर्बर रही होगी?

''पवित्र आचरण की संहिता, मानक और उस वक्त इससे जुड़ी गतिविधियों को आज भी जारी रखने की आवश्यकता है। अगर ऐसा नहीं किया गया तो नुकसान होगा। यह पाप होगा।'' हमें यह देखना चाहिए कि इस तरह की बातों में कितनी सार्थकता है।

इसलिए हिंदू धर्म एक बहुत बड़ा धोखा है। इस धर्म की प्रभुता का कोई सबूत नहीं है। इसके कोई औपचारिक मानक या योजनाएं नहीं हैं।

यह न केवल ब्राह्मणों की रचनात्मकता पर आधारित है बल्कि गैर ब्राह्मणों की मूर्खता और बेशर्मी भी इसके लिए उत्तरदायी है। समय-समय हिंदुत्व की व्याख्या के रूप और मानक बदलते रहते हैं।

देश के अलग-अलग हिस्सों में इसमें भी अंतर देखने को मिलेगा। तमाम शहरों,

नगरों और कस्बों में इसमें भेद मिलता है। अलग-अलग समय, अवसर और कई बार व्यक्ति-व्यक्ति पर भी यह भेद निर्भर करता है। राजाजी किसी पंचम (जाति व्यवस्था में पांचवी जाति यानी अस्पृश्य) के घर खाना खा लेंगे, शंकराचार्य अगर इस जाति को देख भर लेंगे तो वे स्नान करेंगे। कुछ लोग तो पंचम की छाया भर से छू जाने पर स्नान करेंगे। कुछ लोग स्त्री या पुरुष पंचम से विवाह कर लेंगे और उसके बावजूद ब्राह्मण बने रहेंगे। ब्राह्मणत्व और हिंदुत्व का यही लक्ष्य है कि जब तक चलता है, चलने दो।

ईश्वर पर भी यही बात लागू होती है। जब तक यह मंदिर में है, अगर ब्राह्मण के अलावा कोई उसे छूता है या उसके पास जाता है तो वह संक्रमित हो जाता है। उसी देवता को अगर बरगद के वृक्ष के नीचे जगह दी जाती है, या गलियों में या किसी घर के बाहर उसे रखा जाता है तो कोई भी उसे छू सकता है। यहां तक कि एक कुत्ता भी उसे चाट सकता है। मंदिर के भीतर चूहे और तिलचट्टे एवं बिल्लियां यही काम करती हैं।

तमिलनाडु में शिव अथवा विष्णु के रूपों, बनारस, पंडारीपुरा और जगन्नाथ जैसे सुप्रसिद्ध तीर्थ स्थलों में कोई भी इन देवताओं को छू सकता है।

पंजाब में आर्यसमाजी वैदिक मंत्रों का उच्चारण जोर-जोर से करेंगे ताकि कुत्ते, घोड़े, गधे आदि सब इसे सुन सकें। तमिलनाडु में वे कहते हैं कि वैदिक ध्वनियां तो हमारे कानों में भी नहीं पडऩी चाहिए।

ब्राह्मणों की परंपरा सन 1900 में अलग थी, सन 1940 में यह बदल गयी थी और सन 1940 के बाद उसका अलग रूप देखने को मिल रहा है।

सन 1930 में पांचवीं जाति के लोग मंदिर में नहीं घुस सकते थे। केरल में तो चौथे वर्ण के कुछ लोग भी मंदिर के घुसने के पात्र नहीं थे। आज हर कोई मंदिर में प्रवेश कर सकता है। ऐसा देखकर कोई देवता मंदिर छोडक़र भाग नहीं गया है।

यहां तक कि कुछ पवित्र स्थानों पर ब्राह्मण युवतियों को यौन आनंद के लिए रखा जाता है। ब्राह्मण लडक़े उनके दलालों की भूमिका निभाते हैं। कुछ मंदिरों के पुजारियों की दो पत्नियां हैं। एक अपने लिए और दूसरी श्रद्धालुओं के लिए। एक वक्त था जब मंदिर के पुजारियों को अन्य ब्राह्मणों से नीचा समझा जाता था। आज वह भी अन्य ब्राह्मणों के समान ही स्वीकार्य है।

कुछ वक्त पहले वैष्णव और शैव पुजारी केरल के लोगों के तर्ज पर अपने बालों में चोटियां करते थे। अब यह भेद मिट गया है। आज ब्राह्मण सोचते हैं कि जो भी होता है, जो भी बदलता है उस सबके बीच उनकी सर्वोच्च जाति और सर्वोच्च दर्जा कायम है। ऐसे में वे उच्च धर्म के नाम पर कुछ भी करने के लिए पूरी तरह तैयार नजर आते हैं।

- *(विदुथलई, संपादकीय 4.3.1969)*

धर्म

धर्म एक ऐसा विषय है जिसका विश्लेषण और शोध किया ही जाना चाहिए। पहले मनुष्य जंगलों में जानवरों की भांति रहता था। जब इस प्रक्रिया में बदलाव आया और मानवता ने प्रगति करनी शुरू की, मनुष्य ने झोपड़ियों में रहना शुरू किया तो उसे जीवन जीने के लिये कुछ नियमों की आवश्यकता महसूस हुई। अगर अलग-अलग रहने वाले लोगों को कोई काम साझा बेहतरी के लिए करना हो तो उनको एक संघ बनाना होता है और जरूरी है कि ऐसे संघ के कुछ नियम कायदे भी हों। इसी तरह जो लोग सामुदायिक जीवन जीना शुरू करते हैं उनको भी कुछ सिद्धांतों की आवश्यकता होती है जो उस सामाजिक जीवन का निर्धारण करे। ऐसे लोगों को पालन के लिए साझा सिद्धांत गठित करने होते हैं। ऐसे व्यवहार को धर्म नहीं कहा जाता। यह तय करने के लिए कि ऐसे व्यवहार का उल्लंघन नहीं हो, कुछ नियम भी तय किए गए। जब ऐसे नियमों का उल्लंघन करने वालों को दंडित करना संभव नहीं था तब या फिर जब लगा कि ऐसे लोगों को दंडित करना जरूरी नहीं है तब या अन्य लोगों के निजी हित को ध्यान में रखते हुए और लोगों को मूर्ख बनाने की अवधारणा पर यह सोचते हुए कि अन्य लोगों को बेवकूफ बनाया जा सकता है, ईश्वर की अवधारणा का जन्म हुआ। तब यह कहा जाने लगा कि लोगों ने ईश्वर को बनाया है या नियम उल्लंघन करने पर ईश्वर दंडित करेगा। यहीं पर मनुष्य ने सबसे बड़ी भूल की।

लेकिन अगर हम देखें कि ये सिद्धांत किस प्रकार निर्धारित किए जाते हैं और इनका आधार क्या होता है तो हम कह सकते हैं कि ये उस वक्त, जलवायु वहां के लोगों की बुद्धिमता आदि तमाम परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आम लोगों की अनदेखी और कुछ लोगों की धूर्तता और तात्कालिक परिस्थितियां इसकी निर्धारक होती हैं। यदि एक खास सिद्धांत अनुपयुक्त हो जाता है या वह बाद के समय के लिए अप्रासांगिक हो जाता है तब या फिर जब एक चतुर सुजान अथवा धूर्त व्यक्ति

इसे बदलना चाहता है तब अक्सर मूढ़ जनता अपनी जिद्दी प्रकृति के चलते इसे बदलने से इनकार कर देती है। ऐसे में उक्त लोग समाज से कटकर अपना एक अलग समाज स्थापित कर लेते हैं। वे पुराने सिद्धांतों को बदलकर या उनका आधुनिकीकरण करके अपने नए सिद्धांत स्थापित करते हैं। या फिर कुछ एकदम नए सिद्धांत पेश करते हैं। इस प्रकार एक नए धर्म की स्थापना होती है। परिणामस्वरूप लापरवाह और जिद्दी लोग धर्म के आधार पर झगड़े करते हैं और अपने-अपने धर्म को महान बताते हैं या दूसरे के धर्म को कमतर बताने की कोशिश करते हैं।

कुछ सम्मानित, समझदार, बुजुर्ग इस बात पर आश्चर्य भी कर सकते हैं कि क्या लड़े-झगड़े बिना बदलाव आ सकता है? वे पुराने सिद्धांतों की नई व्याख्या के जरिए हर किसी को संतुष्ट करने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार बदलाव को दूर रखना चाहते हैं। लेकिन ऐसी कोशिशों के चलते आखिर में असहमति के कारण नए पंथ निर्मित हो जाते हैं। इस प्रकार प्राथमिक सिद्धांत में कभी भी सुधार हो ही नहीं पाता।

इस तरह धर्मों में बदलाव का लंबा इतिहास है। इन सब बातों से आगे चलकर ऐसी स्थिति बन गई कि धार्मिक सिद्धांतों का वास्तविक उद्देश्य ही छिप गया और उन्हें समझने की भी कोई आवश्यकता नहीं रह गई। आखिर में धर्म कर्मकांडों का समुच्चय बनकर रह गया। अगर आज आप किसी व्यक्ति से पूछेंगे कि आपका धर्म क्या है? उसके सिद्धांत क्या हैं? तो वह केवल कुछ कर्मकांडों और प्रतीकों के बारे में ही बता पाएगा। वह धर्म की स्थापना के मूल उद्देश्य के बारे में कोई जानकारी नहीं दे पाएगा। उसे इसके बारे में कुछ पता भी नहीं होगा। इतना ही नहीं। मूल सिद्धांतों के क्षय के अलावा लापरवाही और नैतिक चूक ने भी धर्म में घर कर लिया है और अब वह कुछ लोगों के स्वार्थी उद्देश्यों की पूर्ति की वजह बनकर रह गया है। खासतौर पर सभी धर्म जिन्हें आज बड़े धर्मों में गिना जाता है। वे भोली और मूर्ख जनता को धोखा देने के काम में लगे हैं। ये धर्म केवल पुजारी वर्ग, सरकार और पैसे वालों को अमीर बनाने का जरिया हैं। आम जनता को इनसे कोई लाभ नहीं होता है। अगर हम धर्म के कारण आई बुराइयों पर नजर डालें तो सबसे अधिक प्रभाव यह है कि धर्म किसी मनुष्य की बुद्धिमता को पूरी तरह नष्ट कर देता है। एक धर्म के लोग ईश्वर में अपने धार्मिक विश्वासों में आस्था रखते हैं और वे यह भी मानते हैं कि उनका धर्म ईश्वर द्वारा स्थापित है। परंतु यही बात अन्य धर्मों के अनुयाइयों पर भी लागू होती है।

कोई यह नहीं सोचता है कि आखिर ईश्वर कुछ लोगों के लिए धर्म और बाकियों के लिए अलग धर्म क्यों बनाएगा? लोग यह भी नहीं सोचते कि क्या ईश्वर ऐसा धर्म बनाएगा जिसके मानने वाले किसी अन्य धर्म को नहीं मानते बल्कि उसे मानने

वालों पर प्रतिकूल टिप्पणियां भी करते हैं। लोग इन विरोधाभासों के बारे में नहीं सोच रहे हैं। इनमें धार्मिक व्याख्याकार और खास धर्म को चाहने वाले भी शामिल हैं।

अकेले यह वजह बताने के लिए काफी है कि आखिर धर्म ने लोगों की बुद्धिमता को किस हद तक प्रभावित किया है। दूसरी बात, लोगों के बीच एकता को बढ़ावा देने के बजाय धर्म उनको बांटता है। तीसरा, धर्म लोगों को बाहरी औपचारिकताओं और प्रस्तुतियों से संतुष्ट होना सिखाता है। वह उनके चरित्र निर्माण में कोई मदद नहीं करता। चौथी बात, किसी भी धर्म में तार्किक सोच के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। धर्म चाहे जो भी हो, उसके सिद्धांत चाहे जितने बेहतर हों लेकिन सबसे पहले वह हमें यही कहता है कि हम ऐसी कुछ बातों पर आंख मूंदकर भरोसा कर लें जो हमारी पांचों इंद्रियों की पकड़ से परे हों और हमारी बुद्धिमता की सीमा से बाहर।

ऐसी स्थिति में हम एक मानक को तो स्वीकार कर लेते हैं जबकि बिना किसी ठोस वजह के हम दूसरे मानक को खारिज कर देते हैं। पांचवीं बात, धर्म ईश्वर और लोगों के बीच बिचौलिये खड़े कर देता है। वह इस बात पर जो देता है कि इन बिचौलियों के शब्द और काम तमाम विसंगतियों और गड़बड़ियों के बाद भी हमारी निजी बौद्धिकता और अनुभव से बेहतर हैं। इसके अलावा धर्म यह भी बताता है कि कोई व्यक्ति जितना धन खर्च करेगा उसके पाप उतने ही ज्यादा कटेंगे और वह उसी अनुपात में स्वर्ग का हकदार होगा। यह भी कि किसी व्यक्ति द्वारा किए गए तमाम पाप, प्रसाद चढ़ाने से खत्म हो जाते हैं और पूजा अर्चना करके वह अपने पापों से मुक्ति पा सकता है। ऐसी बातों के चलते अत्याचार बढ़े और धन देकर पापमुक्ति हासिल की जाने लगी। धर्म आलसी व्यक्ति को अपना जीवन चलाने के लिए तमाम अवसर प्रदान करता है।

धर्म लोगों को भीरू बनाता है। धर्म चाहे जितना अन्याय करे, लोगों को उसी धर्म का भय दिखाकर ऐसी घटनाओं से जुड़ा सच नहीं जानने दिया जाता है। सबसे बढ़कर यह एक व्यक्ति को दूसरे के श्रम से जुटाए गए पैसों पर जीवन बिताने के लिए प्रोत्साहित करता है। एक सच्चा शैव कहता है कि उसके तमाम प्रकट छल के बावजूद अगर पवित्र भस्म या भभूत का एक कतरा भी उस पर छिड़क दिया जाए तो वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है और वह सीधे भगवान शिव के निवास कैलाश पर्वत पर जा सकता है। एक अधिवक्ता और पेशेवर व्यक्ति बहस में झूठे पौराणिक और मिथकीय उल्लेख देते हुए सोचता है कि वह सच्चा शैव है क्योंकि वो अपने माथे पर भभूत लगाता है। उनको लगता है कि अन्य लोगों को भी उनका सम्मान करना चाहिए। क्या बेईमानी और मूर्खता का कोई और उदाहरण चाहिए। इसी तरह एक सच्चा वैष्णव कहता है कि एक बार वह राम शब्द का उच्चारण कर ले तो उसके सारे पाप कट जाते हैं। वह कहता है कि राम के

अलावा दुनिया में कोई देवता नहीं है। एक सच्चा ईसाई कहता है कि जब कोई व्यक्ति पूरी तरह आत्मसमर्पण करके ईसा मसीह तक पहुंचता है तो उसके सारे पाप धुल जाते हैं। ईसा के समक्ष आत्मसमर्पण करने के सिवा कोई राह नहीं है। एक मुस्लिम कहता है कि कुरान में जो भी कुछ लिखा है वह ईश्वर की वाणी है। यह सभी देशों और प्रदेशों पर लागू होती है। अगर उसमें एक अक्षर भी बदला गया तो इस्लाम की नींव हिल जाएगी। इस प्रकार प्रत्येक धर्म अपनी महानता का दावा करता है और कहता है कि वही एकमात्र सच्चा धर्म है। उसका ईश्वर ही एक मात्र सच्चा देवता है या ईश्वर की संतान है। उसका पैगंबर ही ईश्वर का असली संदेशवाहक है आदि।

(रिपब्लिक (कुड्ईरासू) निबंध- 23.4.1949)

क्या शोषित वर्ग हिंदू हैं?

हम लंबे समय से कहते रहे हैं कि हिंदू धर्म का अर्थ है आर्य धर्म और हिंदू आर्य हैं। इसलिए हम यह कहते रहे हैं कि हम द्रविड़ों को खुद को हिंदू नहीं कहना चाहिए न ही खुद को हिंदुत्व को मानने वाला कहना चाहिए। इसी के अनुरूप सन 1940 में जस्टिस पार्टी के प्रांतीय सम्मेलन में मेरी अध्यक्षता में एक प्रस्ताव पारित हुआ। फैसला किया गया कि हम द्रविड़ खुद को हिंदू नहीं कहेंगे और न ही यह कहेंगे कि हम हिंदू धर्म से ताल्लुक रखते हैं। मैंने उस वक्त भी यह बताया था कि ये फैसला क्यों किया गया। अब भी कुछ लोग हैं जो कहते हैं कि हम हिंदू हैं और हमें हिंदू धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। हम इस बिंदु की और व्याख्या करना चाहेंगे। हिंदू नाम हिंदुस्तान में रहने वाले आर्यों को अन्य देश के लोगों ने दिया था। हिंदू शब्द की कोई सुस्पष्ट व्याख्या नहीं है। इसका भी कोई सबूत नहीं है कि हिंदू धर्म जैसी कोई चीज अस्तित्त्व में है। कहा केवल यही जा सकता है कि हिंदुस्तान में रहने वाले लोग एक धर्म का पालन करते हैं और विदेशियों द्वारा इसे ही क्रमशः हिंदू और हिंदुत्व कहा जाता है। शब्दकोषों में भी हिंदू शब्द का अर्थ हिंदुस्तान में रहने वाले व्यक्ति के रूप में दिया गया है। अब इस शब्द का अर्थ उन लोगों से लगाया जाता है जो इस्लाम के विरोधी हैं और ब्राह्मणवाद के समर्थक। यह भी कहा गया कि इस शब्द का अर्थ सनातन धर्म को मानने वाले लोग भी हैं। इससे उलट यह भी कहा जाता है कि फारसी भाषा में हिंदू शब्द का अर्थ चोर होता है।

तो आप इसे चाहे जिस तरह देखें लेकिन यह स्पष्ट है कि हिंदू शब्द का कोई समुचित अर्थ नहीं है। इसका अर्थ केवल लोगों का एक समूह और एक धर्म है जिसका यह समूह पालन करता है। हमें अलग से यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि यह कौन सा समुदाय है और यह किस धर्म की ओर संकेत करता है। ऐसा इसलिए क्योंकि इतिहास बताता है कि आर्यों के आगमन के बाद ही विदेशियों ने भारत पर हमला किया और कब्जा किया।

अतीत में जो लोग भारतीय उपमहाद्वीप में आए, वे कुछ खास रास्तों से आए न कि समुद्री मार्ग से। निश्चित तौर पर उन्होंने उत्तर पश्चिम और उत्तर पूर्व की दिशा में मौजूद रास्तों का प्रयोग किया होगा। हम इतिहास से यह भी सीख सकते हैं कि सबसे पहले आकर बसने वाले लोगों ने उत्तर पश्चिम के दर्रों का प्रयोग किया। आर्य ऐसे पहले लोग थे। अगर बाद में आने वाले लोगों ने यहां के निवासियों को हिंदू कहा तो यह तो कोई भी समझ सकता है कि उनका इशारा किसकी ओर रहा होगा। मुझे नहीं लगता कि आज भी यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि आर्य किस तरह के लोग थे और वे किस धर्म का पालन करते थे।

अगर आज हम इन परिस्थितियों में जीवन बिता रहे हैं और विदेशियों के इस कदर नियंत्रण के शिकार हैं तो इसकी वजह क्या है? क्या यह आर्यों द्वारा बोए गए बीज का नतीजा नहीं है? हमारे देश के लोग इस दर्शन के अधीन जीवन बिताते हैं कि हर कोई एक समाज का हिस्सा है और हम सभी भाई हैं। चार वर्णों की स्थापना के लिए कौन जिम्मेदार है? हमारे समाज की एकता को नष्ट करने वाली सैंकड़ों जातियां किसने बनाई हैं और देश की एकता को नष्ट किसने किया? क्या यह काम आर्यों ने नहीं किया? इन वर्णों और जातियों को बनाकर और एक जाति का दूसरे जाति से हर तरह का संपर्क रोककर, हर जाति के लिए काम और कर्तव्य निर्धारित करके क्या आम जनता के बीच की एकता को खंडित नहीं किया गया? क्या यही वजह नहीं है कि हमारे लोग देश के बारे में चिंता नहीं करते और अन्य लोगों की भी उनको कोई परवाह नहीं रहती? ऐसे में आक्रमणकारियों के लिए और भारतीय उपमहाद्वीप को अपना उपनिवेश बनाने वालों के लिए यह सुनहरा अवसर था। यह कहना कोई अतिरंजना नहीं होगा कि हम लोग, जिन्होंने इस भूमि पर शासन किया, दूसरों में डर पैदा किया, जिन्होंने शेष विश्व को संस्कृति और सभ्यता का पाठ पढ़ाया, वही अब अपने शहर और देश गंवा चुके हैं। हम शर्मिंदगी के शिकार हैं और आर्यों और विदेशियों के गुलाम बन गए हैं।

अगर वास्तव में भारतीय उपमहाद्वीप को स्वतंत्र बनाना है तो यहां रहने वाले लोगों को आजाद रहना होगा। क्या हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि हमें इस दशा में पहुंचाने वाले लोगों को उखाड़ फेंका जाए। यही वजह है कि हम जोर देकर कहते हैं कि हम द्रविड़ों को खुद को हिंदू नहीं कहना चाहिए। हमें हिंदू धर्म का आचरण और व्यवहार भी नहीं अपनाना चाहिए। अगर द्रविड़ समुदाय को प्रगति करनी है तो उसे आत्म गौरव के साथ जीना होगा।

यही वजह है कि 4.1.1945 को जब डॉ. आंबेडकर ने कलकत्ता में वंचित वर्ग के साप्ताहिक पीपुल्स हेराल्ड की शुरुआत की तो उन्होंने बहुत दुखी मन से कहा था कि हिंदू परजीवी हैं। हम कड़ी मेहनत करते हैं, वे हमारे श्रम का रस चूस लेते हैं। अगर आजादी इस शोषण का अंत नहीं कर सकती तो ऐसी आजादी मिले

या न मिले कोई फर्क नहीं पड़ता।

जो लोग दूसरों का रक्त चूसते हों, जो बिना मेहनत का मामूली सा काम किए भी सुख और आराम का जीवन बिताते हों, उनके खिलाफ गुस्सा और क्रोध तो उत्पन्न होगा ही। मैं भी ऐसी प्रतिक्रिया देखकर कतई चकित नहीं होने वाला। हजारों सालों से जिन लोगों ने हमें मेढक की तरह समझा और हमारे साथ दुर्व्यवहार किया और उस आधार पर एक आसान और सहज जीवन जिया, ऐसे में इस सुखद जीवन को यूं आसानी से छोड़ देना संभव नहीं। उन्हें तो अपनी इस जीवन शैली की आलोचना सुनना भी गवारा नहीं होगा। जाहिर है वे नाराज होंगे, हम पर नियंत्रण करना चाहेंगे, सत्ता की मदद लेना चाहेंगे और गाली-गलौज की भाषा का इस्तेमाल भी कर सकते हैं। हमें इसकी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। यह एकदम स्वाभाविक है।

अगर आप किसी चोर को चोर कहेंगे तो निश्चित तौर पर उसे बुरा लगेगा। अगर आप किसी वेश्या को वेश्या कहेंगे तो वह गुस्से से लाल हो जाएगी। इसी तरह अगर आप दूसरों की मेहनत पर जिंदा रहने वाले लोगों को परजीवी कहेंगे तो उनको दिक्कत होगी। हम इन लोगों को भला और क्या कहें? क्या हमें उनकी अनभिज्ञता से सहानुभूति होनी चाहिए या फिर उनको मोटी चमड़ी वाला या बेशर्म कहते हुए हमें चीजों को यूं ही उनके हाल पर छोड़ देना चाहिए।

चूंकि हम सभी चीजों को यूं ही उनके हाल पर छोड़ देते हैं इसीलिए उपमहाद्वीप में आर्यों के विरुद्ध उपजे तमाम विद्रोह ठंडे पड़ गए या उनको आसानी से दबा दिया गया। आज हम विश्वयुद्ध में ऐसी ही घटनाओं का दोहराव देख रहे हैं। जो देश दूसरे देशों से लड़ रहे हैं वे विजित देश में अपना काडर तैयार करने की रणनीति अपना रहे हैं जो उन्हें स्थानीय सरकार के खिलाफ मदद करे। ठीक यही बात अपने देश में घटित हो रही है। जब भी वे देखते हैं कि आर्यों के खिलाफ प्रतिरोध मजबूत हो रहा है तो वे इसे नष्ट करने के उपाय अपनाते हैं। एक विरोधी समूह तैयार किया जाता है और उसकी मदद से उन लोगों को खत्म किया जाता है जो वास्तव में प्रतिरोध के लिए खड़े हुए थे। हमें कभी भी ऐसे लोगों से सहानुभूति नहीं दिखानी चाहिए।

इस लड़ाई में, आर्यो के खिलाफ जंग में अगर आर्यों का विरोध करने वालों को सफल होना है तो उनको आर्यों की उपरोक्त जैसी किसी भी योजना को पहले विफल करना होगा। अगर आप इससे निपट नहीं सकते तो सभी लोग आर्यों के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाएंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो हमारे सारे प्रयास नाकाम साबित होंगे। अगर किसी बर्तन में छेद हों, तो कितना भी प्रयास कर लिया जाए उसमें पानी नहीं भरा जा सकता। अगर बर्तन को पानी से भरना है तो सभी छेदों को पहले मूंदना होगा या फिर बर्तन बदलना होगा। समझदार लोग यही करते हैं। हमें भी यही करना

होगा।

हम इस पर जोर क्यों दे रहे हैं यह भी एकदम स्पष्ट है। डॉ. आंबेडकर ने कहा है कि वंचितों की यह स्थिति और उनके इस खराब जीवन स्तर की वजह हिंदू धर्म है। एक व्यक्ति हिंदू तब होगा जब वह आर्य वेदों, पुराणों, इतिहास और मिथक आदि में भरोसा करेगा और उनका समर्थन करेगा। अगर आप इनको नहीं मानते या इनका पालन नहीं करते तो आपको हिंदू नहीं कहा जाएगा। अगर ऐसा नहीं होगा तो जातीय भेद, उपजातियां, धर्म के अलग-अलग पंथ और वर्ण आदि सब निष्प्रभावी हो जाएंगे और गायब हो जाएंगे। क्या समाज अर्थव्यवस्था और राजनीति में प्रगति नहीं करेगा? यही वजह है कि डॉ. आंबेडकर ने जोर देकर कहा कि वंचित वर्ग के लोगों को खुद को हिंदू नहीं कहना चाहिए। इसके अलावा वेद, पुराण, इतिहास आदि जिन्होंने समाज में इतना हव्वा बनाया है और जो लोगों के अलगाव के लिए उत्तरदायी हैं। जिन्होंने देश को नष्ट कर दिया। उनको भी खत्म किया जाना आवश्यक है। लेकिन दक्षिण भारत में जो लोग वंचितों के नेता होने का दम्भ भरते हैं मसलन मुनिस्वामी पिल्लई और शिवषडमुगम जैसे लोग कहते हैं, 'हरिजनों को डॉ. आंबेडकर के उस हिंदू विरोधी प्रोपगंडा का शिकार नहीं होना चाहिए जो उन्होंने अभी हाल में चेन्नई में फैलाया। उनको हिंदू सिद्धांतों के मुताबिक अपनी भूमिकाओं का अपने कर्तव्य का निर्वहन करना चाहिए।'

उन्होंने यह भी कहा कि डॉ. आंबेडकर द्वारा हिंदू धर्म के बारे में कही गई बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है।

आम जनता को जरूर यह सोचना होगा कि क्या इन लोगों ने ये विचार अपने समाज की अतीत की स्थिति और उसके कष्टप्रद वर्तमान को ध्यान में रखने के बाद दिया है? अगर उनके समुदाय के कुछ लोगों को मंत्री पद मिल गया और राव बहादुर और दीवान बहादुर जैसी पदवी मिल गई तो क्या यह पर्याप्त होगा? समुदाय की आम हालत कैसी है? क्या कुछ लोगों का आर्थिक रूप से संपन्न हो जाना पर्याप्त होगा? उनका आर्थिक आधार क्या है?

मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी कहेगा कि अगर उन लोगों ने अपने समाज की मौजूदा व्यवस्था पर गहराई से निगाह डाली होती तो वे ऐसी बात कभी नहीं कहते। ऐसे लोगों की जीवन परिस्थितियां बदलने की योजना धीरे-धीरे आगे आएगी। अगर लोगों ने इसी समझ के साथ बात की कि कुछ लोगों के जीवन में आया बदलाव और कुछ लोगों की सराहना पर्याप्त है तो यह ठीक नहीं है। अभी भले तालियां और फूलमाला जैसी अस्थायी चीजें कुछ देर के लिए ठीक लगें लेकिन भविष्य के इतिहासकार ऐसे लोगों की आलोचना करेंगे। इतना ही नहीं भविष्य के लोग ऐसे नेताओं पर हंसेंगे।

ऐसे में आज कुछ हलकों के नामधाम की चमक में बहने और केवल अपने

कल्याण के बारे में सोचने के बजाय अगर लोग व्यापक समाज के कल्याण के बारे में सोचें और इस पर विचार करें कि ऐसे लोगों की बेहतरी के लिए क्या कुछ किया जा सकता है, इसके लिए क्या बलिदान देने होंगे, इन लोगों की प्रगति में बाधा बन रहे लोगों से किस तरह निपटना होगा, केवल ऐसा करके ही संबंधित समुदाय और लोगों की हालत में सुधार लाया जा सकता है।

इन लोगों को यह भी विचार करना चाहिए कि आखिर डॉ. आंबेडकर ने हिंदू धर्म की बुराई क्यों की और उन्होंने हिंदुओं को परजीवी क्यों कहा? अगर आप इतिहास पर नजर डालें, पुराणों को देखें, मनु शास्त्र को पढ़ें या आर्यों के किसी भी साहित्य पर गहराई से नजर डालें तो आप पाएंगे कि आर्य हिंदू बिना मेहनत किए परजीवियों की भांति दूसरों की मेहनत पर जीवित रहते थे। वे आज भी ऐसा ही कर रहे हैं।

आप चाहे जो किताब उठा लीजिए। आप पाएंगे कि उनमें आर्यों के बारे में यही लिखा होाग कि वे खूब आराम से रहते थे जबकि शेष लोग उनके आदेश का पालन करते। यह देखकर किसका दिल नहीं दुखेगा? उन लोगों को दुखी दिलों की इन आवाजों को सुनकर सचाई का आकलन करना ही होगा बजाय कि उनकी अनदेखी करने के।

- *(रिपब्लिक (कुडियारासू) संपादकीय 6.01.1945)*

अस्पृश्यता

'भले ही आप लोग इस कुएं के इस्तेमाल का उद्घाटन मुझसे कराकर मुझे मान दे रहे हैं, लेकिन स्पष्ट कहूं तो मैं ऐसा करते हुए बहुत खुश नहीं हूं। दरअसल मैं इस कार्यक्रम में भागीदारी को काफी कष्टप्रद काम मान रहा हूं। मेरा विचार है कि आदिद्रविड़ों के लिए अलग कुआं खोदना एक तरह का अत्याचार है। आदिद्रविड़ों के लिए अलग कुओं का निर्माण हमारे और उनके बीच एक स्थायी गतिरोध को जन्म देता है। यह बात हमें हमेशा यह याद दिलाएगी कि आदिद्रविड़ हमसे कमतर हैं और वे हमसे मेलजोल के लायक नहीं। आखिर उनके लिए अलग कुआं क्यों होना चाहिए? ऐसे परोपकार के काम कुछ ऐसे लोगों की मदद करते हैं जो खुद को आदिद्रविड़ों का हितैषी और उनसे बेहतर दिखाना चाहते हैं। हम उनको अपने कुओं से पानी निकालने की इजाजत क्यों नहीं दे सकते? क्या पशु-पक्षी तालाबों से पानी नहीं लेते? क्या हम नहीं जानते कि उनमें पानी किस प्रकार भरा जाता है? क्या आप नहीं जानते कि उस पानी में कितने प्रकार की अशुद्धियां होती हैं। यह भी उस पानी का प्रयोग करने से आदिद्रविड़ों को कितनी तरह की परेशानियां हो सकती हैं?'

'मेरे स्वागत में जो उद्बोधन दिया गया उसमें आपने मेरी तारीफ करते हुए कहा कि मैंने आपके लिए काफी कुछ किया है। यह सच नहीं है। मैंने कभी खासतौर पर आपके लिए कुछ नहीं किया। अगर कोई कहता है कि उसने आदिद्रविड़ों के कल्याण के लिए, उनकी स्थिति में सुधार के लिए कुछ किया है तो वह साफतौर पर दिखावा कर रहा है। यह कुछ ऐसा ही है जैसे कहा जाए कि भारत पर यूरोपीय शासन अच्छा था। मैं ऐसा नहीं सोचता।'

हमारे देश में पारियार नामक एक जाति है और एक जाति का नाम 'शूद्र' भी है। 'शूद्र' जाति नाम परइयर की तुलना में अधिक अपमानजनक है। हिंदू शास्त्रों के मुताबिक ऐसे शुद्ध रक्त वाली महिलाएं और अन्य लोग हो सकते हैं जो एक ही पिता और मां की संतान हों। लेकिन उनके मुताबिक 'शूद्रों' पर यह बात लागू नहीं

होती। क्योंकि 'शूद्र' स्त्री अन्य लोगों की भी सेवा करती है। वह एक 'वेश्या' के समान होती है। 'शूद्र' पुरुष से तात्पर्य था एक ऐसी स्त्री का पुत्र जो दूसरों की सेवा करती हो यानी वेश्या का पुत्र। शास्त्रों के मुताबिक अगर आप इस विचार को स्वीकार नहीं करते तो आप हिंदू नहीं हैं। ऐसे में अगर मुझ जैसे 'शूद्र' कहे जाने वाले लोग पारियार के लिए काम करें तो इसका अर्थ है कि बस हम दूसरों से शूद्र कहे जाने से बचने की कवायद कर रहे हैं। ऐसे में जब मैं अपने लिए कड़ा परिश्रम करता हूं तो आपको लगता है कि मैं आपके लिए काम कर रहा हूं। जो स्त्री-पुरुष आपको कमतर समझते हैं, वे यह नहीं जानते कि खुद उनको अन्य लोग अपने से कमतर समझते हैं। दूसरों को अपने से कमतर समझने के कारण वे अन्य लोगों की नजर में खुद की कमतरी को बुरी चीज नहीं समझते।

मानो इतना ही पर्याप्त नहीं हो तो वे आपमें और कमियां निकालना शुरू कर देते हैं। उनको आपके शरीर से बदबू आती है, उनकी नजर में आप स्नान नहीं करते, कपड़े नहीं धोते, आप गोमांस खाते हैं, आप शराब पीते हैं। वे आपको उपदेश देते हैं कि आपको ये सारे काम छोड़ देने चाहिए। वे समझते नहीं है कि आपके न नहाने या कपड़े न धोने के पीछे कौन जिम्मेदार है। जब आपके पास पीने के लिए ही पानी नहीं होगा तो नहाने और कपड़े धोने के लिए पानी कहां से आएगा? अगर आप संत या शंकराचार्य कहे जाने वाले लोगों को ही नहाने न दें और कपड़े न धोने दें तो क्या उनके कपड़े मैले नहीं होंगे, क्या उनके शरीर और मुंह से बदबू नहीं आएगी? हम किसी व्यक्ति को भूखा रखें और उसके मर जाने पर कहें कि वह भूख से मर गया। जरा सोचिए इसमें पाप किसका है? यह कहना ईमानदारी की बात नहीं है कि गोमांस खाने या शराब पीने से आप पारियार हुए। वास्तव में गोमांस खाने और शराब पीने वाले तो आज दुनिया पर शासन कर रहे हैं। इसके उलट अगर आप गोमांस खाते हैं तो यह आपका दोष नहीं है क्योंकि आपको तो बढिया़ कमाने, खाने, सडक़ों पर चलने, मर्जी से काम करने तक की इजाजत नहीं दी गई। आपको अपने सीमित संसाधनों में ही भोजन करना है और एक सीमित धनराशि में जो मिल जाए वही खाना है। यहां तक ईसाई और इस्लाम अपनाने वाले जो गोमांस खा सकते हैं वे भी यही कहते हैं कि अगर उनके पास खाने पर खर्च करने के लिए और पैसे होते तो वे गोमांस नहीं खाते। लेकिन हमारे देश में गोमांस खाने की सबसे प्रधान वजह गरीबी है। इतना ही नहीं प्रश्न यह भी है कि आखिर कैसे गोमांस खाना बकरी, मुर्ग, मछ्ली या सुअर खाने से अलग है? मुर्ग, मछ्ली और सुअर आदि तो गंदी सामग्री खाते हैं। जब उत्तर भारत के ब्राह्मणों से लेकर दक्षिण भारत के शूद्रों तक इन चीजों का सेवन किया जाता है तो गोमांस खाने वाले कमतर कैसे हो गए, जबकि गाय तो गंदगी नहीं बल्कि चारा और घास जैसी शाकाहारी चीजें खाती है। इसके बावजूद वे गोमांस खाने वालों के बारे में कहते हैं कि मत छुओ, सडकों पर मत चलो, टंकी

से पानी मत पियो और गांवों में मत रहो।

मेरा निष्कर्ष यह है कि यह आपको खराब परिस्थितियों में रखने की किसी ठोस वजह के बजाय एक बेईमान और गैर जिम्मेदार वजह है। मैं इस बात पर आपत्ति नहीं कर रहा हूं कि गोमांस और शराब को प्रतिबंधित किया जाना चाहिए। लेकिन जब कुछ लोग कहते हैं कि अगर आप इनको छोड़ देंगे तो आपकी जात ऊंची हो जाएगी तो मैं इस बात पर आपत्ति करता हूं क्योंकि यह एक किस्म की बेईमानी है। मैं आपसे केवल अपनी जाति का दर्जा ऊंचा करने के लिए शराब या गोमांस त्यागने को नहीं कहूंगा। उसके लिए आपको दोनों में से कोई काम करने की आवश्यकता नहीं है। नारियल और ताड़ से निकलने वाली ताड़ी का सेवन आप नहीं करते, हमारे प्रांत में आने वाली 10 से 15 करोड़ रुपये मूल्य की विदेशी शराब का सेवन आप नहीं करते। इन बातों पर कोई यकीन नहीं करेगा। अगर कोई कहता कि ऊंची जाति का दर्जा हासिल करने के लिए आपको यह करना होगा तो पहले उनको शराब छोडने दीजिए।

मैं मानता हूं कि शराब पीना अच्छे आचरण का प्रतीक नहीं है। मैंने शराबबंदी के लिए भी काम किया है। लेकिन शराब पीने का जाति व्यवस्था से कोई ताल्लुक नहीं है। ऐसे में यदि कोई कहता है कि गोमांस भक्षण और शराब छोडने से कोई ऊंची जाति का बन जाता है तो मैं कहूंगा कि वह झूठ बोल रहा। मैं आपकी कुछ कमियां भी सामने लाना चाहता हूं। आप अपनी जातीय गिरावट के लिए खुद भी उत्तरदायी हैं। आप अनावश्यक रूप से हर किसी को नमस्कार करते हैं, उनको स्वामी कह कर पुकारते हैं। आपके रक्त में ही यह शामिल हो गया है कि आप खुद को दूसरों से कमतर समझते हैं। आपको अपने आपमें बदलाव लाना होगा। जब आप किसी को देखें तो खुद से पूछें कि आखिर किन मायनों में आप उससे अलग हैं? यदि किसी जाति ने आत्मगौरव का भाव ही गंवा दिया हो तो आप उसका स्तर ऊंचा नहीं उठा सकते। हर किसी को यह समझना होगा कि वह मनुष्य है। आज के बाद किसी को स्वामी मत कहिए। अगर आप चाहते ही हैं तो अय्या कहकर पुकारिए। आपको दूसरों से अलग दिखने की बुरी आदत छोड़नी होगी। केवल तभी आपके साथ बराबरी का व्यवहार किया जाएगा।

(6.4.1926 को कराईकुड सिरवयाल में गांधी रीडिंग लाइब्रेरी के वार्षिक उत्सव के दौरान एक कुएं के उद्घाटन समारोह में दिया गया भाषण।)

(रिपब्लिक (कुडियारासू)25.4.1926)

शोषित वर्ग के लोग कौन हैं?

मित्रो!

आज इस वार्षिकोत्सव में यू पी ए सौदिरपांडियन, एन शिवराज, एस गुरुसामी, टी एन रामन, कुंजीतम, विद्वान मुनीस्वामी, अरोकियासामी और कल्याण सुंदरम ने अपनी बात कही। मुझे लगता है कि मेरे भाषण के साथ वार्षिकोत्सव का समापन होगा। अधिकांश वक्ताओं ने वे बातें कह दी हैं जो मैं कहना चाहता था। इसलिए आप यह सोच सकते हैं कि मैं शायद बहुत अधिक न बोलूं। आप सभी को एकजुट रहना चाहिए और अधिक से अधिक महिलाओं को सदस्य के रूप में अपने साथ जोडऩा चाहिए।

तर्कवाद

सच तो यह है कि हर किसी को तर्कवाद को तवज्जो देनी चाहिए। आपको तार्किक सोच विकसित करनी ही चाहिए। आपको हमेशा हर चीज के बारे में गहराई से अध्ययन करना चाहिए। जो भी दिमाग में आता है उसे ही तार्किकता समझना सही नहीं है। किताबों में लिखे विचारों को याद करना भी तार्किकता नहीं है। हमें क्या संभव है और क्या असंभव है इसका भेद करना आना चाहिए। हमें यह पता होना चाहिए कि हमारी ताकत और मजबूती क्या है। हमें समय, स्थान और परिस्थितयों पर पूरा ध्यान केंद्रित करना चाहिए। अगर हमारी बुद्धिमता कहती है कि कोई खास बात सही है तो भी उसे कड़े परीक्षण से गुजारने के बाद ही उसका क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। जाहिर है तार्किकता विकसित करने के लिए हममें तार्किक सोच का होना आवश्यक है।

आपके सिद्धांत

यहां कई लोगों ने आत्मसम्मान और राजनीति के बारे में बात की। चूंकि इस

संगठन में बहुत बड़ी संख्या में ऐसे लोग भी हैं जो वंचित वर्ग से आते हैं तो ऐसे में सरकारी समर्थन हासिल करना आपकी राजनीति के अनुरूप होना चाहिए। राजनीति में आपका समुदाय अलग-थलग है। आपके और अन्य समुदायों के दर्जे और लक्ष्यों में काफी अंतर है। ऐसे में आपको अलग अधिकार मांगने का हक है। इसी तरह अगर सरकार ने आपको अलग अधिकार दे भी दिए हैं तो भी तथाकथित ऊंची जाति के लोग आपको ठगते हैं। ऊंची जाति के लोगों में जन्मजात धूर्तता और चालाकी है। यही वजह है कि वे उच्च वर्ण के लोग बने हुए हैं। आप को वंचित जाति के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है और वे तमाम सुविधाओं का लाभ ले रहे हैं। कॉमरेड अरोकियासामी तो आपको वंचित वर्ग का कहने तक पर आक्रोशित होते हैं। गुस्सा होने से क्या होगा? क्या हकीकत में आप वंचित और दमित नहीं हैं? अगर ऐसा नहीं होता तो अलग से अधिकार मांगने की आवश्यकता ही नहीं होती। जरा सोचिए सामाजिक जीवन में कितनी कानूनी बाधाएं आपके सामने हैं। आपके पास मंदिरों में घुसने का अधिकार नहीं है। यहां तक सड़कों पर चलने, जलस्रोत से पानी लेने और स्कूल में जाने तक का अधिकार आपको जस्टिस पार्टी के आगमन के बाद मिला। इसके बावजूद अनेक इलाकों में इन अधिकारों की राह में बाधाएं हैं।

मंदिर प्रवेश

आपमें से कई ने त्रावणकोर मंदिर में प्रवेश का अधिकार मिलने की सराहना की है। यह आपके किस उपयोग का है? अपनी ही मातृभूमि में आपकी स्थिति क्या है? कई लोग ऐसे भी हैं जो आपसे भी ऊंची जाति के माने जाते हैं उनको मंदिर परिसर के आसपास जाने की इजाजत तक नहीं है।

जब हालात ऐसे हैं तब कुछ लोग बेशर्मी से राजनीति की बातें कर रहे हैं। यह अपने आप में बताता है कि वे मानवाधिकार हासिल करने तक के अयोग्य हैं। अगर साफ कहा जाए तो केवल आप ही वंचित नहीं हैं। कुछ जगहों पर तो ऐसे लोगों को भी मंदिर प्रवेश की इजाजत नहीं है जो वंचित वर्ग से नहीं हैं। हम, जिन्हें हर मंदिर में प्रवेश की इजाजत है, भी वंचित हैं। कुछ मंदिरों में हमें भी कुछ खास अधिकार हासिल नहीं हैं। कॉफी शॉप और होटलों में हमारे साथ अलग व्यवहार होता है। हमें कई जगह प्रवेश का अधिकार नहीं है। आपके दमन और आपकी अवनति को लेकर बातों में जो सहानुभूति जताई जाती है, उसका तात्पर्य यह भी है कि हमारी वंचनाओं का भी अंत हो। क्या आप कुछ लोगों की चतुराई से नहीं जूझे हैं। ऐसे लोग पंक्तिबद्ध व्यवस्था में औरों के साथ भोजन करते हुए भी परोसने वालों से कहते हैं कि वे उनके आसपास बैठे लोगों पर अधिक ध्यान दें। इस तरह वे अपने लिए ज्यादा खाना जुटाते हैं। ठीक उसी तरह हम सोचते हैं कि अगर आपके कष्टों

का अंत होगा तो हमारी दिक्कतें खुद समाप्त हो जाएंगी।

कांग्रेस में शामिल होने के बारे में

मेरा विचार है कि आप 'राजनीतिक कोलाहल' से जितनी घृणा करेंगे और 'राजनीतिक दलों' में शामिल होने से जितना इनकार करेंगे, आपकी समस्या दूर होने की संभावना उतनी ही बढ़ती जाएगी। अगर आप उन लोगों के सामने झुकना बंद कर दें जो आपके सर कुचलकर चलना चाहते हैं तो आप पर होने वाले अत्याचार शीघ्र समाप्त हो जाएंगे। अन्यथा आप दूसरों के लिए आगे बढने का जरिया बने रहेंगे।

हालांकि कांग्रेस की स्थापना को 50 वर्ष से अधिक हो चुके हैं लेकिन केवल जस्टिस पार्टी की स्थापना और राजनीतिक और सामाजिक जीवन में हिस्सेदारी की इसकी मांग के बाद ही हमें सुधार देखने को मिला। उसके बाद पिछ्ले 10 सालों में कई बदलाव आए हैं। उसके बजाय अगर आपने कांग्रेस के समर्थन में हाथ बढ़ाना जारी रखा होता तो आप बस उच्च जाति के लोगों के पीछे 'गोविंदा' 'गोविंदा' का नारा लगाते रह जाते। जरा सोचिए उस स्थिति में अब तक आपकी स्थिति क्या होती?

त्रावणकोर घोषणा

जरा त्रावणकोर मंदिर प्रवेश के प्रोपगंडा को देखिए। यह कैसे सामने आया या घटित हुआ? क्या हमें अपने मित्र डॉ. सीपी रामासामी अय्यर के बारे पता नहीं है? जब जस्टिस पार्टी के मंत्रियों ने यह कानून बनाया कि सभी लोगों को सार्वजनिक देखरेख वाली सडकों पर चलने का अधिकार है तो उन्होंने क्या किया? क्या उन्होंने इसे नहीं रोका? जब एक ब्राह्मण मजिस्ट्रेट ने एझावा समुदाय के लोगों को इस कानून के तहत कलपाती में सडक पर चलने से रोकने के लिए धारा 144 लागू की और जब विधानसभा में इस बारे में प्रश्न किए गए तब श्रीमान अय्यर ने क्या कहा? उन्होंने इसके समर्थन में वक्तव्य दिया। उन्होंने इस कानून की ही एक नई परिभाषा दे डाली है। उन्होंने कहा कि यह कानून केवल उन्हीं लोगों पर लागू होता है जिनको किसी खास काम से सडक पर चलना हो। उनके मुताबिक यह कानून उन लोगों के लिए नहीं था जिन्हें यूंही अनावश्यक सडक पर टहलना हो। उन्होंने कहा कि धारा 144 लागू करने का अर्थ था उच्च जाति के लोगों को उस शर्मिंदगी से बचाना जो उनके सामने तब पैदा होती है जब कोई निम्न जाति का व्यक्ति सडक पर यूं ही चला आता है। इस प्रकार इस धारा का प्रयोग उचित था।

इस प्रकार हम बहुत अच्छी तरह समझ सकते हैं कि त्रावणकोर के दीवान सर सी पी अय्यर के 'उदार विचार' किस प्रकार के हैं। इसके अलावा यह भी सोचिए

कि आखिर उन्होंने अपने मंदिरों के दरवाजे हमारे लिए कैसे खोले। वहां वंचित वर्ग के लोगों एझावार और नादार तथा अन्य तमाम लोगों के मंदिर को ध्वस्त करके उन्होंने लघु मूर्तियां स्थापित करनी चाहीं। उन्होंने सम्मेलन किए और हजारों लोगों ने यह शपथ ली कि हिंदू धर्म धोखा है, उसके मंदिर धोखा हैं और ईश्वर की अवधारणा ही धोखा है। कई लोग मुस्लिम बन गए। उन्होंने इस्लामिक टोपियां पहन लीं। कुछ ने दाढ़ी बढ़ा ली और सिख धर्म अपना लिया। कुछ अन्य सपरिवार ईसाई हो गए। तब जाकर मंदिरों के दरवाजे खोले गए। ब्राह्मणों समेत उच्च जाति के तमाम लोगों ने त्रावणकोर के शासक की तारीफ की। जरा देखिए तो इस जीत का राज कहां छिपा है? इसी तरह अगर आप कांग्रेस को तोड़ना शुरू करेंगे, मंदिरों, धर्म और देवताओं की मूर्तियों को भंग करना शुरू करें तो बिना किसी की दया के सारे अधिकार खुद ब खुद आप तक पहुंचेंगे।

केवल नाम बदलने का कोई फायदा नहीं

अगर आपको वंचित कहा जाता है और आपको इस पर गुस्सा आता है तो आप कुछ भी हासिल नहीं कर सकते। जिस तरह 'पारियार' शब्द बदलकर आदिद्रविड़ हो गया, अब वह हरिजन है आगे वह कुछ और हो सकता है। इससे आपके कष्ट या आपकी अपमानजनक स्थिति में कोई बदलाव नहीं आने वाला। वेश्याओं को देवदासी कहने भर से क्या उनकी सामाजिक स्थिति में कोई बदलाव आता है?

ठीक इसी प्रकार गैर ब्राह्मणों के लिए केवल नायकर, मुदलियार, देवार, वेल्लर, राजार, रायार आदि नाम रख लेने भर से समाज में उन पर लगा शूद्र का ठप्पा दूर नहीं होने वाला। इसका उपाय केवल यही है कि जो लोग हमारे साथ अनुचित व्यवहार करते हैं, उनके साथ असहयोग किया जाए और उनकी प्रगति की राह रोकी जाए।

विश्वासघाती

अगर कुछ विश्वासघाती उनके साथ सहयोग करें तो हमें निराश नहीं होना चाहिए क्योंकि ऐसे गिरे हुए और बेशर्म लोग मौजूद हैं। हमें संगठित होकर अपने अधिकारों के लिए लडना ही होगा। अगर हर किसी में आत्मसम्मान हो, तो वंचित वर्ग के लोगों या गैर ब्राह्मणों की स्थिति सुधारने के लिए किसी संस्थान की आवश्यकता ही नहीं। हममें से कई लोगों को उन लोगों के चरण चूमने को मजबूर किया जाता है, जो हमें लात मारते हैं। हमें इस अपमानजनक स्थिति से उबरने का रास्ता निकालना ही होगा। इसका हल केवल हमारे बहादुर सहयोगी सहकारी प्रयासों, हमारी खुद की मजबूती और उनके लिए बाधाएं खड़ा करने पर निर्भर है। कुछ वक्ताओं ने आत्मगौरव की बात की और कुछ अन्य ने मुझे नोट भेजकर विस्तृत जानकारी भी मांगी है।

प्रश्न

1. एक सज्जन ने मुझसे पूछा है कि जीवनानंदम और हम जैसे लोगों में क्या फर्क है। इसका उत्तर है कि अब कोई अंतर नहीं। पहले वे कहते थे कि चुनावी प्रोपगंडा करना एक गंदा काम है। अब प्रेस से मिलने वाली रिपोर्ट से मुझे जानकारी मिलती है कि वे भी बेहद रुचिपूर्वक यही काम कर रहे हैं। वे यही काम कांग्रेस के लिए कर रहे हैं। इसके अलावा कोई अंतर नहीं है।

2. एक मित्र ने पूछा है कि जस्टिस पार्टी और डेमोक्रेटिक पार्टी में क्या अंतर है?

इसका उत्तर भी यही है कि कोई अंतर नहीं है। अगर जस्टिस पार्टी के सिद्धांतों के अनुरूप रोजगार में सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व में लोगों को कुछ भी लाभ हो रहा है तो मैं यही कहूंगा कि ऐसा मोटे तौर पर मत्तियास मुदलियार नामक व्यक्ति की सेवाओं के कारण हो रहा है, जिन्होंने शुरू में इसके लिए प्रयास किया। हालांकि जस्टिस पार्टी के अनेक नेताओं और कई गैर ब्राह्मणों ने उनके प्रति पर्याप्त आभार प्रदर्शन नहीं किया, लेकिन जहां तक मेरी बात है, मैं उनके प्रति शुक्रगुजार हूं। अन्यथा डेमोक्रेटिक पार्टी के राजनीतिक अनुभव के आधार पर कुछ लोग कह सकते हैं कि उसमें और जस्टिस पार्टी में अंतर है। लेकिन मेरी नजर में ऐसा कुछ नहीं है।

एकमात्र राजनीतिक दल

आज भारत में केवल एक राजनैतिक दल है। वह ऐसे लोगों का दल है जो चुनाव जीतना चाहते हैं, मंत्री पद चाहते हैं पैसे और ताकत अर्जित करना चाहते हैं। ऐसा लग सकता है कि इस लक्ष्य को हासिल करने के कई तरीके और रास्ते हैं। वे सामाजिक मुद्दों पर एक दूसरे के खिलाफ भी नजर आ सकते हैं। परिणामस्वरूप कुछ दल सच बोलते हैं। कुछ अन्य दल अपने सिद्धांत में अस्पष्ट रहते हैं। यही आज के राजनीतिक दलों का सच है।

जस्टिस पार्टी

लेकिन जस्टिस पार्टी अपने सिद्धांतों और योजनाओं में सही प्रतीत होती है। वह खुलकर कहती है कि वह हर संभव प्रयास करेगी। पार्टी के नेता और सदस्य भी पार्टी के सिद्धांतों को लेकर पूरी तरह एकमत हैं। हां, कुछ मौकों पर इन सदस्यों और नेताओं के बीच मतभेद भी होते हैं और संभव है, उनमें से कुछ स्वार्थ के वशीभूत होकर और जनसरोकार की प्रतिबद्धता भुलाकर काम करें। परंतु हम इस बात को लेकर चिंतित नहीं हैं। सभी दलों में आपको ऐसे रुख वाले लोग मिलेंगे। हर पार्टी को ऐसे लोगों के लिए गुंजाइश छोड़ देनी चाहिए। अन्यथा तो मैं यही कहूंगा कि दासता और अपमान से जूझ रहे लोगों के लिए जस्टिस पार्टी रामबाण है।

मैं कांग्रेस को केवल इसलिए दोष नहीं दे रहा हूं क्योंकि उसके सदस्यों में सत्ता और पद की भूख है। बल्कि मैं उसे दोषी इसलिए मानता हूं, क्योंकि अपने एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत के तौर पर वह पिछड़े और दमित वर्ग के लोगों को समान अधिकार देने से इनकार कर रही है, इसलिए मैं कहता हूं कि हमें इसे नष्ट करना ही चाहिए। मेरा इसमें कोई भरोसा नहीं है और न ही मैं इसके उन नेताओं की इज्जत करता हूं जो वर्ण व्यवस्था में यकीन करने वाले रुढ़िवादी लोग हैं। मैं अन्य दलों को लेकर चिंतित नहीं हूं।

प्रचार और आत्मसम्मान

3. एक प्रश्न यह पूछा गया है कि आत्मसम्मान के लिए कहीं कोई प्रचार क्यों नहीं है।

मेरे मित्र और मैं ऐसा कर रहे हैं। लेकिन हमारा मुख्य ध्यान जस्टिस पार्टी पर है। मुझे लगता है कि आत्मसम्मान आंदोलन की बेहतरी के नजरिये से ऐसा करना आवश्यक है। चाहे जो भी हो लेकिन जस्टिस पार्टी के लिए चुनाव प्रचार का काम डेढ़ महीने में समाप्त हो जाएगा।

उसके बाद चुनावों में पार्टी जीते या हारे मैं और मेरे मित्र आत्मसम्मान आंदोलन का प्रचार करना जारी रखेंगे।

चुनावों में इसे जीत मिलेगी या हार?

4. एक प्रश्न यह पूछा गया कि जस्टिस पार्टी चुनाव जीतेगी या नहीं? अगर जस्टिस पार्टी हार जाती है तो मैं बहुत खुश होऊंगा। आत्मसम्मान आंदोलन को गैर ब्राह्मणों से और अधिक समर्थन मिलेगा। इसके प्रचार के काम को और गति मिलेगी। अगर जस्टिस पार्टी जीत जाती है तो सत्ता और पद लाभ पाने वाले उसके नेताओं की ओर से कोई सहयोग नहीं मिलेगा। पराजय गैर ब्राह्मणों में एकता लाने की वजह बनेगी जबकि अभी वे बंटे हुए हैं और बेहतरी के लिए कड़ी मेहनत कर रहे हैं। लेकिन जस्टिस पार्टी हारेगी नहीं। राजनीतिक दलों द्वारा इसके विरोध की साधारण सी वजह यह है कि उनके पास पर्याप्त मजबूत सिद्धांत नहीं हैं। अगर कुछ नेता अलग अंदाज में बात करें, मसलन गैर जिम्मेदारी और स्वार्थ दिखाएं और खुद को अवनत करें तो भी मुझे नहीं लगता कि पार्टी हारेगी। इसलिए क्योंकि उसके सिद्धांत मजबूत हैं। कांग्रेस में उनका सख्त अभाव है। इसलिए मुझे लगता है कि जस्टिस पार्टी नहीं हारेगी।

समानता, सामाजिक न्याय

5. एक मित्र ने समता और सामाजिक न्याय की बात की है। याद रखिए कि

जस्टिस पार्टी एक सामाजिक न्याय की पार्टी है। उसके आगमन के बाद ही परियाह और ब्राह्मण कुछ स्थानों पर पूरी समानता के साथ मंच साझा करने लगे हैं। पुराने दिनों में कहा जाता था कि अगर कोई शेर और गाय एक ही घाट पर पानी पियें तो यह सामाजिक समता होगी। लेकिन ऐसा केवल सर्कस कंपनी द्वारा दिखाए जाने वाले तमाशे में होता है। उस लिहाज से वहां सामाजिक न्याय मौजूद है। लेकिन आज एक परियाह, एक ब्राह्मण, एक शास्त्री, एक शंकराचारी और एक मोची एक ही स्थान पर हैं। कैसे? ऐसा भयवश हुआ है? कैसा भय? रिवॉल्वर की गोली से मारे जाने का? बिल्कुल नहीं। वे समान स्तर पर रहने के लिए 10 से 20 हजार रुपये खर्च करते हैं। ब्राह्मण परियाह के सामने उसे स्वामी और मालिक कहता हुआ गिड़गिड़ाता है। यह कैसे हुआ? जरा सोचिए कि जस्टिस पार्टी की स्थापना के पहले क्या कांग्रेस की बैठकों, गतिविधियों, योजनाओं, उसके सिद्धांतों और प्रस्तावों में वंचित वर्ग या दमित वर्ग का कोई संदर्भ मिलता है? इसलिए मैं आपसे पूछता हूं कि क्या आपको अभी भी जस्टिस पार्टी द्वारा लाए गए सामाजिक न्याय पर कोई संदेह है? मैं सामाजिक न्याय और समता के हित काम करना जारी रखूंगा।

मैं आर्थिक समता और न्याय के क्षेत्र में काम करने और सेवा देने के लिए उत्सुक हूं। लेकिन कांग्रेस ऐसे किसी भी विचार के पूरी तरह खिलाफ है और वह इस काम में धोखा देगी। जब वह नष्ट हो जाएगी तभी आर्थिक न्याय सुनिश्चित हो सकता है। अभी भी बिना सरकार को ठेस पहुंचाए और उसका विरोध किए मैं आर्थिक न्याय के लिए जितना प्रचार कर सकता हूं कर रहा हूं। मैं ऐसा करना जारी रखूंगा। मैं इतने सम्मान के लिए और अपने विचार प्रकट करने का अवसर देने के लिए आपका आभारी हूं।

(कोडंबक्कम रेशनलिस्ट्स सोसाइटी के चौथे वार्षिक दिवस आयोजन में मित्र ई वी रामासामी का समापन भाषण)

(रिपब्लिक, (कुडियारासू) 10.1.1937)

जाति व्यवस्था

भारत के अलावा दुनिया के किसी अन्य देश में ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि एक ही देश के लोग जन्म के आधार पर इतनी जातियों में बंटे हों।

हिंदुओं के बीच जाति व्यवस्था के तहत लोगों को प्रमुख तौर पर चार जातियों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र में बांटा गया है। यह व्यवस्था उन लोगों में प्रचलित है जो आर्य सिद्धांतों को मानते हैं, कहते हैं कि वे 'ईश्वर द्वारा बनाए' गए हैं। हर व्यक्ति जानता है कि इस सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण शीर्ष पर हैं और उसके बाद शेष जातियां क्रमशः निचले क्रम में। इनमें से आखिरी यानी शूद्र को सर्वाधिक निम्नस्तर का माना जाता है। इसके बावजूद इतनी अधिक जातियों की मौजूदगी की वजह क्या है। ऐसा इसलिए क्योंकि लोग ईश्वर के अनुसार वर्ण में बंटे हुए थे वे धीरे-धीरे पथभ्रष्ट हुए और मिश्रित वर्ण के होने लगे। वर्णों के आपस में मिल जाने के कारण अलग-अलग जातियों का उदय हुआ। ऐसी चूकों के बाद प्रत्येक वर्ण पर नैतिक संहिता लागू की गई। हम यह भी देखते हैं कि ऐसे जातीय विचलन व भेद के बाद पंचम जाति (सर्वाधिक निचली) अस्तित्व में आई।

ऐसे सूत्रों ने यह भी कहा कि हमारे देश में अनेक महत्त्वपूर्ण जातियां ऐसे ही आपसी मेलजोल से सामने आईं। उच्च जाति के लोग पथभ्रष्ट हुए और अपने नैतिक मानकों से डिगे तो इसके परिणामस्वरूप पंचम जाति यानी सबसे पिछड़ी जाति अस्तित्त्व में आई। यह भी कहा जाता है कि तमिलनाडु में लोकप्रिय और महत्त्वपूर्ण वेलाला जाति पंचम जाति में आती है और इस जाति के लोग उन ब्राह्मण और क्षत्रिय युवतियों की संतान हैं, जिन्होंने अन्य वर्ण के पुरुषों के साथ मेल किया।

यह भी कहा जाता है कि इन वेलाला लोगों में से जो लोग खेती से अपनी आजीविका अर्जित करते हैं तो इनको 'कनियालार' कहा जाता, अगर ये प्रशासनिक पद संभालते तो इनको 'वेलन सामंतर' कहा जाता। सुप्रा भूतकम, ब्रह्मा पुराणम, वैकंसम, माधवीयम और सतीविलक्कम जैसी पुस्तकों में इस वर्गीकरण के बारे में

जानकारी दी गई है।

अगर एक ब्राह्मण किसी वैश्य युवती के जरिये बच्चे पैदा करता तो उनको अंबत्तन कहा जाता और अगर ऐसे बच्चे विवाहेत्तर संबंधों से पैदा होते तो उनको 'कुयवार'(कुंभकार) और 'नविता' (नापित) कहा जाता।

इसी तरह अगर एक ब्राह्मण व्यक्ति किसी शूद्र स्त्री से समागम कर बच्चे पैदा करता तो ऐसे विवाह से उत्पन्न बच्चों को बरदवार अथवा सेंबतवार कहा जाता और जो बच्चे विवाह के रिश्ते से बाहर पैदा होते उनको 'वेत्तईकरन' अथवा 'वेदुवर' कहा जाता।

इसी तरह अगर ब्राह्मण युवती क्षत्रिय पुरुष से संबंध बनाकर बच्चे पैदा करती तो उनको 'सवर्ण' अथवा 'तेलंगर' कहा जाता।

अगर शूद्र व्यक्ति किसी ब्राह्मण युवती के साथ रहता तो इस संबंध से पैदा होने वाले बच्चों को 'चंडाल' कहा जाता।

अगर चंडाल किसी ब्राह्मणी के साथ रहता है तो इस रिश्ते से पैदा होने वाले बच्चों को 'चमार' अथवा 'सकिलियार' (चमड़े का काम करने वाला) कहा जाता, अगर चंडाल किसी क्षत्रिय युवती के साथ रहता तो इस दौरान पैदा होने वाले बच्चों को 'वेनुगर' (बांसुरी बजाने वाला), कनगर (स्वर्णकार), सेलर (बुनकर) आदि कहा जाता।

इसी प्रकार अगर 'अयोवह जाति' की लड़की (एक ऐसी जाति जो निम्न और उच्च वर्ग की संकर जाति थी) निषादों से संबंध स्थापित कर बच्चे पैदा करती तो उनको 'भार्गव' कहा जाता। इस तरह कई जातियों के नाम संबंधी नियम चलन में थे। इन नियमों को अभिज्ञान कोसाक, अभिज्ञान चिंतामणि और हिंदू पंडितों द्वारा उल्लिखित अन्य पुस्तकों में देखा जा सकता है। इसके अलावा चार प्रमुख जातियों के अलावा उन तमाम अन्य जातियों को कमतर माना जाता जिनकी संतानें किसी उच्च वर्ण की स्त्री और निम्न वर्ण के पुरुष अथवा निम्न वर्ण की स्त्री और उच्च वर्ण के पुरुष के रिश्ते से पैदा होतीं। इसके अलावा विवाह के रिश्ते से बाहर पैदा हुए बच्चों को चेट्टियार और असरियार कहा जाता। इनको अवमाननापूर्ण ढंग से भी संबोधित किया जाता।

ऐसे में अगर हम जाति व्यवस्था को कायम रखते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि हम इन अपमानजनक टिप्पणियों को परोक्ष रूप से स्वीकार कर रहे हैं।

(रिपब्लिक, संपादकीय : (कुडियारासू) 16.11.1930)

जाति के बारे में

वे जो बहुजातीय व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं! हमने कहा कि चार मूल जातियों के समय के साथ 4,000 से अधिक जातियों में बंट जाने की मूल वजह है एक जाति का दूसरी जाति के साथ संबंध कायम होना। इसके बावजूद हमारे बीच ऐसे लोग हैं जिनको 'वेल्लार' कहा जाता है। ये लोग चार जातियों की मूल व्यवस्था को स्वीकार करते हैं। ये जातियां हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और पंचम। ये खुद को शूद्र मानते हैं। कुछ अन्य लोग उन्हें संस्कृत के वर्गीकृत जातीय नामों के बजाय तमिल के खूबसूरत शब्दों से पुकारते। मसलन, अंतनार, अरसार, वनीगर और वेल्लार आदि। उनका दावा है कि वे श्रेणियां तमिलनाडु में पहले से विद्यमान हैं। यहां तक कि आर्यों के आगमन के पहले से यह व्यवस्था थी और वे चौथे वर्ण में आते थे। यह मिथक गढ़ा गया कि इन चार वर्णों के लोगों की सेवा के लिए अनेक जातियां अस्तित्त्व में आईं। इनमें पल्लू, परियाह समेत 18 जातियां शामिल थीं।

'पल्लू, परियाह और 18 जातियों' की इस बात से यह संकेत निकलता है कि ये 18 जातियां चार उच्च वर्णों की सेवा के लिए बनी थीं। इनको निम्नलिखित नाम दिए गए : इलइ वणिकन, उप्पू वणिकन, एन्नई वणिकन, ओछ्छन, कलचछन, कन्नन, कुयवन, कोल्लन, कोयिकुडियन, थचन, थट्टन, नवीथन पल्ली, परियाह, पन्न, पूमलईक्करन, वन्नन और वलयान।

परंतु एक शोधपरक पुस्तक अभिधनकोसाम के मुताबिक यही 18 जातियां शिविगैयर, कुयावर, पनार, मेलाकार, परतवर, सेमबदवार, वेदार, वलईयार, थिमलार, करइयार, सनरार, सैलियार, एन्नई वणिकर, अंबत्तार, वन्नार, पल्लार, पुलियार और सक्किलियार के रूप मे नौकरों की जाति के रूप में उल्लिखित हैं।

इसके अतिरिक्त वेलारों के बीच भी अंतर कुछ इस प्रकार उल्लिखित हैः वेल्लार शूद्रों में सबसे श्रेष्ठ हैं, उनमें भी मुंडालियों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, उसके बाद आते हैं वेलंचेट्टी। ये वेलंचेट्टी चोलापुरतर, सीताकत्तर, और पंचुक्कर मे बंटे हुए हैं। ये सिवार हैं और बिना किसी भेदभाव के अन्य लोगों के साथ एक कतार में बैठ और खा सकते हैं। इसके बाद नंबर आता चोलिया, थुलुवा और विभिन्न श्रेणियों के कोडिक्कल वेल्लार का। इस क्रम में आते हैं अहमबदियार, उनके नीचे मरवार और

सबसे नीचे कल्लार। उनके नीचे आते हैं इदइयार और सामाजिक सोपान पर सबसे नीचे हैं कवरइगल और कमावरगल।

यह बात देखी जा सकती है कि उपरोक्त व्यवस्था में बहुत सावधानी से ब्राह्मणों के बीच भेद को दूर रखा गया है। वे ऊंची नीची जातियों की इस बहस से बाहर हैं और उनकी जातीय स्थिति पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता है। यह बात स्पष्ट बताती है कि जाति व्यवस्था की प्रकृति कितनी धूर्ततापूर्ण है। अन्यथा इसमें क्षत्रियों और वैश्यों के झगड़ों की बातें हैं, कौन किससे श्रेष्ठ है इसका उल्लेख है और बिना किसी पूर्वग्रह के एक दूसरे पर श्रेष्ठता के लिए लड़ाई है। इसके तहत अन्य जातियों को खुद से नीचा बताया गया है। ये सारी बातें देखी जा सकती हैं। अगर अन्य जाति के लोग खुद को साथी जातियों से श्रेष्ठ बताने का तरीका खोजने की कोशिश करते हैं तो बेहद चतुराईपूर्वक उनको यह संकेत कर दिया जाता है कि वे परप्पनार यानी ब्राह्मणों से कमतर हैं। अन्यथा वे ऐसे वर्ग निर्माण के रहस्य की गुत्थी का खुलासा करने में कतई उपयोगी नहीं हैं।

इस प्रकार यह स्थापित किया गया था कि ब्राह्मणों के अलावा अन्य जातियां नीची हैं। वे ब्राह्मणों के स्पर्श के काबिल नहीं हैं न ही ब्राह्मण उनके साथ भोजन करके उनको समान दर्जा देगा। अन्य जातियां कई तरह के अधिकारों से भी वंचित थीं। वे केवल ब्राह्मणों की सेवा करने लायक थे। उनका जन्म अवैध संबंधों, ऊंची-नीची जातियों के संबंधों की परिणति थी। इसकी वजह से विभिन्न वर्ण एक दूसरे से मिल गए और व्यापक तौर पर लोगों की सामाजिक स्थिति खराब हुई। संक्षेप में यही जाति व्यवस्था है।

इसके अलावा इस संबंध में अगर कोई दार्शनिक या तार्किक स्पष्टीकरण दिया जाता है तो वह केवल उन मूर्खों के लिए होगा जो धर्म और वेद, शास्त्र एवं तथाकथित संहिताओं आदि पर यकीन करते हैं। और इन स्पष्टीकरणों को लेकर कोई प्रश्न या आपत्ति खड़ी किए बिना लोगों को अपनी कमतर स्थिति को सहज स्वीकार कर लेने के अलावा कोई चारा नहीं रहता।

इसे छोड़ दिया जाए और अगर हम ब्राह्मणों के अलावा अन्य लोगों की स्थिति और उनको मिले अधिकारों को देखें तो आसानी से यह समझा जा सकता है कि कोई तार्किक अथवा आत्मगौरव संपन्न व्यक्ति इस जाति व्यवस्था को स्वीकार नहीं करेगा। वास्तव में वह इस जातिभेद के अपमानजनक परिणामों के बारे में तो सपने में भी नहीं सोच सकता। ऐसे में अगर आप ब्राह्मणों द्वारा चौथे वर्ण यानी शूद्रों को दिए गए अधिकार और उस वर्ण की स्थिति को देखेंगे तो यह कुछ वैसा ही है जैसे कि मौजूदा सरकार द्वारा कुछ लोगों को पारंपरिक रूप से अपराधी वर्ग का बताना और उन्हें सरकार द्वारा तय किए गए नियम एवं शर्तों के मुताबिक जीवन बिताने को कहना।

उदाहरण के लिए हम धर्म शास्त्रों अथवा संहिता को उद्धृत करेंगेः 'स्नातमश्वम गजमस्तम ऋषभम काममोहितम शुद्रम क्षरासंयुक्तम दूरता परिवर्जियेम।' अर्थात 'एक घोड़ा जिसे स्नान कराया गया हो, एक हाथी जो तनाव में हो, एक सांढ़ जो काम के

वशीभूत हो और एक पढ़ा लिखा शूद्र, इन सभी को करीब नहीं आने दिया जाना चाहिए।'

'जप तप तीर्थ यात्रा प्रवर्ज्या, मंत्र साधना देवर्धनम, सचैस्व स्त्री, शूद्र पठठनिशन' अर्थात 'मानसिक प्रार्थनाएं, पश्चाताप, पवित्र स्थानों की तीर्थ यात्रा, संन्यास या दुनिया को त्यागना, ईश्वर की उपासना और पूजा- ये सभी महिलाओं और शूद्रों के लिए वर्जित हैं।'

'न पतेम संस्कृतम वणिम' यानी शूद्र को संस्कृत नहीं पढऩी चाहिए।

'नैव शास्त्रम पतेनैव श्रुणवन वैदिक आश्रम, नसंन्यातु दयालपुर्वम थापो मंत्रम सुर्वाजयेल।' अर्थात 'एक शूद्र को कभी शास्त्र नहीं पढऩे चाहिए या वेद नहीं सुनने चाहिए। उसे कभी भी सूर्योदय के पहले नहीं उठना चाहिए और न ही नहाना चाहिए। उसे मंत्र पाठ और पापमोचन की इजाजत नहीं है।'

'इतिहास पुराणानि नपतेस्रोतममार्षि'- एक शूद्र को इतिहास और पुराण नहीं पढऩे चाहिए। लेकिन वह एक ब्राह्मण को उन्हें पढ़ते हुए सुन अवश्य सकता है।'

'चर्तुवर्णम माया' रुस्तम, परिश्रमात्यकम, कर्मम शूद्रस्यापी पवन्नम (गीता)- अर्थात चारों वर्ण मेरे द्वारा बनाए गए हैं। इसके तहत शूद्रों का प्राथमिक कर्तव्य है कि वे अन्यों की सेवा करें। ऐसे हजारों उद्धरण हैं जिनको समझा जा सकता है। हमारे धार्मिक साहित्य वेदों, धर्म शास्त्रों आदि में यही सब लिखा हुआ है। इन ग्रंथों को ईश्वरीय उत्पत्ति माना जाता है।

हमारे पास एक सरकार है जो इन धार्मिक नियमों का पालन करने को बाध्य नहीं है। इसी तरह हममें से कुछ इन संहिताओं के नियम कायदों के मुताबिक जीने को बाध्य नहीं हैं। लेकिन अगर हमारे धर्म और जाति को बचाने, धर्म और जाति के नाम पर उनको स्थिर करने का प्रयास किया जाता है तो सोचिए हमें इसके चलते किस तरह के अनुभवों से गुजरना पड़ सकता है। जब तक हिंदू समाज में जाति भेद है तब तक ऊंच-नीच की भावना भी रहेगी।

आज जो राष्ट्रवादी हैं और चाहते हैं कि भारत को पूरी आजादी मिलनी चाहिए, उनको यह कोशिश करनी चाहिए कि ब्रिटिश राज में भी जाति प्रथा का अंत किया जा सके। इसके बजाय अगर वे कहते हैं 'तुम हमें छोड़ दो, हम चीजों का ध्यान रख लेंगे'तो यह खुद से खुद को जहर देने के समान है। इससे कुछ भला नहीं होगा। भारत में आज 1,000 में से 999 लोग जातिभेद खत्म करने के इच्छुक नहीं हैं। बल्कि वे ऊंची जाति में शामिल होना चाहते हैं ताकि वे अन्य निचली जातियों पर रसूख कायम कर सकें। आज अगर हम मौजूदा शासन के अधीन हासिल अधिकारों का भी त्याग कर दें और प्रशासन उन लोगों के हाथ में आ जाए जो वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था के समर्थक हैं तो जाति व्यवस्था के चलते होने वाले अत्याचार कभी खत्म नहीं होंगे।

(रिपब्लिक, (कुडियारासू) संपादकीय-30.11.1930)

जाति के दुष्परिणाम

अध्यक्ष महोदय, बहनो एवं भाइयो, मनुष्य ने जब से ईश्वर के बारे में विचार करना शुरू किया तभी से उच्च जाति और नीच जाति का विचार भी पनपा। ईश्वर के नाम पर ऊंची और नीची जातियों के विचार लगातार सामने आए और बढ़ते गए। हिंदू धर्म में बात चाहे वैष्णव संप्रदाय की हो या शिव संप्रदाय की क्या आप बिना भेदभाव, ऊंची नीची स्थापना वाले देवताओं या अवतारों वाली जातियां दिखा सकते हैं? इसके अलावा ईश्वर की लीलाएं, ईश्वर की राह दिखाने वाले महात्मा, ईश्वरीय गतिविधि दर्शाने वाले पुराण अथवा ऐतिहासिक घटनाएं, सभी जातिवादी विचारों से भरे हुए हैं। 64 नयमार (शैव संत) 64 जातियों से ताल्लुक रखते थे। 12 अलवर (वैष्णव संत) 12 जातियों से थे। अगर आप मनु धर्म को हिंदू धर्म का आधार मानते हैं तो आपको कई जातियों और उनके बीच भेदभाव के संदर्भ देखने को मिलेंगे। आप इसे चाहे जिस नजर से देखिए भले ही यह धर्म में आपकी ताजा आस्था हो या उसके आधार पर ईश्वर में या वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास में, आप कभी यह नहीं कहेंगे कि जातिगत भेद मौजूद नहीं है।

अगर कोई आपसे कहे कि हिंदू परंपरा के मुताबिक कोई जातिभेद है ही नहीं तो आपको या तो उन्हें गैर-जानकार मानना चाहिए या फिर धोखेबाज व्यक्ति। कुछ अन्य लोग आपसे कहेंगे कि जाति व्यवस्था का निर्माण तो अलग-अलग पेशों के आधार पर किया गया था न कि जन्म के आधार पर। वे कहेंगे कि पेशेगत अंतर तो रहेगा कि खुद ईश्वर ने गीता में ऐसा ही कहा है। इस प्रकार वे आपको धोखा देने की कोशिश करेंगे। लेकिन अगर यह पेशे पर आधारित है तो भी भेदभाव क्यों? कोई व्यक्ति सुबह बढ़ई, दोपहर में कारोबारी और रात में शिक्षक क्यों नहीं हो सकता? अगले दिन सुबह वह खुदाई, दोहपर में बुनाई और शाम को विक्रेता और रात में दरबान का काम क्यों नहीं कर सकता?

मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि हमें किसी तरह की व्यवस्था की आवश्यकता

नहीं है। इससे लोगों को कतई कोई फायदा नहीं हुआ। इनका उपयोग लोगों में उच्च जाति, नीच जाति, अमीर, गरीब जैसे बुरे विचार रोपने के लिए किया गया। इसका समता और आजादी के विचार से कोई ताल्लुक नहीं रहा।

(इरुगुर में दिया गया भाषण 3.1.1931- रिपब्लिक (कुडियारासू) 11.1.1931)

जाति व्यवस्था की कार्य पद्धति

अध्यक्ष महोदय और साथियों, इस सम्मेलन के उद्घाटन के अवसर पर आप मुझसे कुछ शब्द कहने को कहेंगे। आप सभी वंचित वर्ग के लोगों को लेकर मेरे विचारों से अवगत हैं। अगर आप चाहते हैं कि वंचित वर्ग के लोग उन पर थोपे गए अत्याचारों से आजाद हों तो आपको इसे एक क्रांतिकारी कार्य के रूप में समझना होगा। इसलिए क्योंकि उनकी इस दुर्दशा की बुनियाद बहुत गहरी है।

वंचित वर्ग के लोगों के बारे में यह अवधारणा पक्की की गई है कि ऐसे लोग नीची जातियों से ताल्लुक रखते हैं, वे अस्पृश्य हैं, वे जन्म से ही कमतर गुण वाले हैं, यहां तक कि ईश्वर ने भी उनको ऐसा ही बनाया है। ऐसी परिस्थितियों की वजह हमेशा धार्मिक कार्यों और धर्म शास्त्रों में मिलती, कहा जाता है कि ईश्वरीय या धार्मिक नियमों को कोई बदल नहीं सकता। अगर कोई यह सोचता है कि वंचित वर्ग के लोगों को केवल जुबानी जमा खर्च से या उच्च जाति के लोगों से अनुरोध करके ही समानता का अधिकार मिलेगा या मानव समाज से अस्पृश्यता समाप्त हो जाएगी तो मैं कहूंगा कि ऐसा सोचने वाले लोग केवल अपनी जिंदगी बरबाद कर रहे हैं। वंचितों में से कुछ लोग सोचते हैं कि अगर वे नहाएंगे, अपने माथे पर वैष्णव या शैव पहचान वाला तिलक लगाएंगे, वैदिकों की तरह कपड़े पहनेंगे, शराब नहीं पीएंगे या मांस नहीं खाएंगे और सामी जैसे नाम रखेंगे तो उनकी स्थिति सुधर जाएगी और अस्पृश्यता नष्ट हो जाएगी।

यह अजीब बात हैः खुद को यह सोचते हुए धोखा देना कि दूसरों को धोखा दिया जा सकता है। वंचित वर्ग के कई लोग यहां तक कि आदि द्रविड़ों ने भी लंबे समय तक ऐसा किया है। पुराणों में इसके कई प्राधिकारी सामने आते हैं। उनमें से एक पूरे दमखम से घोषणा करता है कि हजारों सालों में अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए कुछ भी नहीं किया गया। कुछ लोगों की गतिविधियों से उनके निजी स्वार्थ को बढ़ावा भले ही मिलता हो लेकिन व्यापक तौर पर यह निरुद्देश्य है। इसकी वजह

से कुछ सार्थक होने की संभावना भी नहीं है।

ऐसा इसलिए है क्योंकि उन्होंने इसकी बुनियाद बहुत मजबूत बनाई है। एक क्षण के लिए अस्पृश्यता के विषय को छोड़ भी दें हालांकि अनेक लोगों ने इसके लिए लड़ाई लड़ी है, तो भी क्या 100 में से तीन लोगों द्वारा 97 लोगों को शूद्र बताने की परंपरा समाप्त हुई है? हालांकि शूद्रों में से भी कुछ महात्मा, संत, मनीषी, अलवर, नयमार आदि बने हैं लेकिन इसके बावजूद एक बड़े जनसमुदाय को शूद्र कहे जाने की परंपरा समाप्त नहीं हुई है। इसे समाप्त करना इतना आसान है भी नहीं। कल जिन सज्जन ने यहां आदिद्रविड़ सम्मेलन का उद्घाटन किया और जिन्होंने यहां कार्यक्रम की अध्यक्षता की वे दोनों उच्च जाति के हैं। ये हैं माननीय मंत्री पी टी राजन और आपके जिला बोर्ड के अध्यक्ष मित्र समियप्पा मुदलियार। दोनों शैव वेलालार हैं। वह भी थोंडाइ मंडलम के शैव वेललार। जो लोग कहते हैं कि उनका दर्जा ब्राह्मणों के बाद है और उनके समुदाय में से कुछ कहेंगे कि वे ब्राह्मणों के घर में भोजन तक नहीं करेंगे। लेकिन इसके बावजूद ब्राह्मण ऐसे लोगों से यही कहेंगे कि चिड़िया कितना भी ऊंची उड़ ले वह कभी बाज नहीं बन सकती।

इतना ही नहीं ब्राह्मण ही उन पर ठप्पा लगाएंगे और उनको शूद्रों का ही दर्जा देंगे। चारों वर्णों में थोंडाई मंडला शैव वेललारों के लिए कोई और जगह नहीं। ऐसे कई वेललार लंबे समय से कहते रहे हैं कि वे शूद्र नहीं हैं और उनका वर्ण व्यवस्था से कोई लेना देना नहीं है। कुछ अन्य का दावा है कि वे सामान्य शूद्र नहीं बल्कि सदशूद्र थे। यह कुछ ऐसा ही था मानो रेशमी कंचलम में लिपटी झाड़ू। इस स्थिति में, एकदम निचले दर्जे पर रखे जाने पर, हर तरह के सहयोग और समर्थन से दूर होने पर भी अगर आपको लगता है कि आप परियाह होने के इस दर्द को छिपा लेंगे या खत्म कर देंगे तो वह भी केवल धर्म की स्थापनाओं का पालन करके तो यह कुछ वैसा ही है जैसे कि कोई चिड़िया समुद्र का पानी पीकर उसे सुखाने का प्रयास करे।

उनका कहना है कि वर्ण ईश्वर ने बनाए। गीता में भगवान कृष्ण कहते हैं कि मैंने चार वर्ण बनाए। जाति व्यवस्था धर्म की देन है। मनु संहिता में चांडाल जाति तथा अन्य जातियों की उत्पत्ति की कथा कही गई है। ऐसे में अगर ईश्वर, धर्म और गीता एवं मनु स्मृति समाज में लगातार बने हुए हैं और उनके पक्ष में समर्थन जुट रहा है तो सोचिए शूद्र और निचली जाति का ठप्पा हटाना कितना मुश्किल है।

अस्पृश्यता समाप्त करने की कोशिश में हमारे मित्र गांधी ने हर संभव पुकार लगाई। उन्होंने अपना लक्ष्य हासिल करने के लिए लाखों रुपये एकत्रित किए और उनको उच्च जाति या वर्ण के लोगों को दिया। अगर वह ऐसा नहीं करते तो रत्ती भी भर बदलाव नहीं ला सकते थे। वहीं दूसरी ओर वह गीता, मनुस्मृति, वर्ण और जाति व्यवस्था के समर्थक भी हैं। आज जो लोग सेवा कर रहे हैं, जो अस्पृश्यता

के उन्मूलन में शामिल रहे, ऐसे 100 में से 100 लोग गीता और मनुस्मृति में पूरा भरोसा रखते हैं। अगर वे इस मुद्दे को कुछ समय के लिए टालते भी हैं तो यह कुछ ऐसा ही होगा जैसे छेद भरी बाल्टी की मदद से कुएं से पानी निकालकर किसी टंकी को भरना। इसलिए अस्पृश्यता या जाति के समापन के लिए सबसे पहले आपको अपने धर्म को नष्ट करना होगा। अगर आप ऐसा नहीं कर सकते हैं तो कम से कम धर्म को त्यागने का साहस करिए। यह बात स्थापित तथ्य है कि जब तक धर्म समाप्त नहीं होता है, तब तक अस्पृश्यता या परियाहपन को समाप्त नहीं किया जा सकता है। जो लोग अस्पृश्य से स्पर्श करने लायक बन गए हैं ये वो लोग हैं, जिन्होंने धर्म द्वारा की गई जकड़बंदी को नष्ट कर दिया है। आंकड़े बताते हैं कि करोड़ों लोगों ने अपने नाम और अपने रिहाइशी स्थान को त्यागकर ऐसा किया है।

ऐसे में इस मुगालते में मत रहिए कि धर्म को बचाकर भी आप अस्पृश्यता को नष्ट कर पाएंगे। मेरे मित्र गांधी अत्यधिक धार्मिक हैं। वह बहुत गहन मानवतावादी भी नहीं हैं। वह कहते रहे हैं कि अस्पृश्यता को खत्म किया जाना चाहिए ताकि हिंदुत्व को बचाया जा सके वरना यह समझ लीजिए कि उनकी प्राथमिकता आपके विरुद्ध होने वाले अत्याचारों का खात्मा नहीं है।

कांग्रेस के सदस्य भी इसे लेकर बहुत फिक्रमंद नहीं हैं। इसकी वजह यह है कि उनमें से अधिकांश ब्राह्मण हैं। अगर व्यवहार में वे अस्पृश्यता को मानते हैं तो उनको पता है कि लंबी अवधि में वे स्वयं अस्पृश्य हो जाएंगे। इसलिए क्योंकि जब अस्पृश्यता समाप्त होगी तो उच्च जाति के ब्राह्मणों का दबदबा भी समाप्त हो जाएगा। अगर उनकी उच्च जाति की धाक समाप्त हो जाएगी तो उनकी परवाह ही कौन करेगा? इसलिए अगर अस्पृश्यों के लिए किसी तरह का काम करना है तो वह सरकार को करना होगा। समाज में व्याप्त अत्याचार को समाप्त करना सरकार का कर्तव्य है। समाज के किसी एक वर्ग द्वारा अन्य वर्ग पर होने वाले अत्याचारों पर भी यह बात लागू होती है। न केवल यह बल्कि हम पर शासन करने वाली सरकार भी अस्पृश्यता का पालन नहीं करती। अस्पृश्यों के अच्छे दिनों के संकेत के रूप में भारत की संप्रभुता भारतीयों के हाथ में नहीं बल्कि अन्य महाद्वीप के शासकों के हाथ में है। कांग्रेस कहती है कि वह हम भारतीयों को संप्रभु बनाना चाहती है और इस दिशा में प्रयास चल रहे हैं।

इसी तरह आपको भी प्रयास करने चाहिए कि आप अपने कष्ट इस शासन के समाप्त होने से पहले खत्म कर लें। मौजूदा शासन के ब्राह्मणों के शासन में बदलने का जितना विरोध कर सकते हों कीजिए। स्वराज्य कुछ और नहीं बल्कि राम राज्य, गीता राज्य, मनुस्मृति का शासन ही है। अगर भारत भूकंप या तूफान अथवा बाढ़ से नष्ट हो जाए तो वह अधिक बेहतर होगा बजाय कि हमारे मनुस्मृति या रामराज्य की ओर वापस जाने के। ऐसे में हमें हर संभव कोशिश करनी होगी कि हम खुद

को ब्रिटिश शासन के दौरान ही खुद को अस्पृश्यता से आजाद कर सकें। पिछले तमाम शासन ऐसा करने में नाकाम रहे। केवल इसी शासन के अधीन आप कलेक्टर, जज, वकील, डॉक्टर, शिक्षक, विधायक आदि बन सके और आपको राय बहादुर और दीवान बहादुर की उपाधि मिल सकी। यहां तक कि आप मंत्री भी बन सके। ऐसे में अपने संकटों के खात्मे और आपके सामाजिक स्तर में सुधार की कोई संभावना है तो वह ब्रिटिश शासन में ही है। मैं इस बात पर जोर दूंगा कि हिंदू धार्मिक प्रशाासन अथवा रामराज्य या मनुस्मृति, गीता के शासन अथवा स्वदेशी शासन में ऐसा कर पाना नामुमकिन होगा।

दूसरों के राजनीतिक विरोध में भाग मत लीजिए और न ही इसे लेकर परेशान होइए। वह सब केवल अमीर और शिक्षित उच्च वर्णीय लोगों द्वारा अपना दबदबा बढ़ाने की कोशिश है। आप इन तीनों में से किसी श्रेणी में नहीं हैं। उन तक पहुंचने के लिए आपको ब्रिटिश पर निर्भर रहना होगा। अन्य सभी ब्रिटिश शासन के श्रद्धालु और उसके वफादार रहे हैं और उनको मौजूदा उच्च पद और रसूख ऐसे ही हासिल हुआ है। आपको भी विरोध प्रदर्शन कर समान रूप से उच्च पद हासिल करने चाहिए और इसके लिए प्रयास करने चाहिए।

मित्रों इस विषय पर यही मेरे विचार हैं। अब यह आप पर है कि आप सोचें और किसी नतीजे पर पहुंचें।

(10.7.1935 को सिरकाजी में दिया भाषण-रिपब्लिक (कुडियारासू) 28.7.1935)

जाति व्यवस्था का क्षय हो!

बहनो और भाइयो!

किसी जाति से जुडक़र आपको कोई लाभ होने वाला नहीं है। माननीय मंत्री जो करीब ही बैठे हैं, भले ही वह प्रेसिडेंसी के प्रमुख हैं, भले ही उनमें केंद्र सरकार में मंत्री होने की क्षमता है, भले ही वह विशाल वेललार समुदाय से आते हैं लेकिन उनको एक निम्र जाति के व्यक्ति के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। उनके ऊपर तीन जातियां हैं। उनकी जाति शूद्र की श्रेणी में आती है। इसलिए जब तक जाति का तमगा लगा है तब तक ऊंचे और नीचे की भावना समाप्त नहीं होगी। इस अंतर को नष्ट करने के लिए जाति नाम और उससे जुड़े अहसास को नष्ट करना होगा। भाइयो, पहले ही काफी समय नष्ट हो चुका है। कई अहम प्रस्ताव पारित होने हैं। सम्मेलन शीघ्र समाप्त होने को है। इसलिए जैसा कि आज सुबह कहा गया कुछ प्रारंभिक टिप्पणियां आवश्यक हैं।

हमें देश भर में ऐसे सम्मेलन होते नजर आते हैं। देश में तमाम जातियां और समुदाय हैं। जिस दिन हमारे यहां जाति व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ और जन्म के आधार पर लोगों का ऊंचा या नीचा होना तय होने लगा, उसी दिन से प्रत्येक जाति के लोगों के लिए अलग-अलग सम्मेलन आयोजित करने की आवश्यकता पैदा हो गई। मुझे तमाम लोगों से ऐसी शिकायतें सुनने को मिलती हैं कि अगर अलग-अलग जातियों के अलग-अलग सम्मेलन आयोजित होते रहे तो हम सब एकजुट कब हो सकेंगे?

मैंने यह भी सुना है कि कुछ लोग इन सम्मेलनों को सांप्रदायिक करार दे रहे हैं और इनमें शिरकत से इनकार कर रहे हैं। इसके लिए जाति या समुदाय आधारित बैठकें आयोजित करने वालों को दोष नहीं दिया जा सकता है। यह जरूरी है कि ऐसे सम्मेलन आयोजित किए जाएं। जब तक किसी खास समुदाय से ताल्लुक रखने वालों को यह नहीं लगता है कि उनका दर्जा औरों से कमतर है तब तक वे

अपनी स्थिति सुधारने के लिए कोई प्रयास नहीं करेंगे। अगर उनको यह अहसास हो जाता है कि वे भी मनुष्य हैं और वे भी औरों के समान हैं तथा उनको कमतर बताने या उन पर असहनीय अत्याचार करने का काम कुछ स्वार्थी लोगों का काम है तो वे समानता हासिल करने का प्रयास करेंगे। भले ही उनको देवेंद्र कुला वेललार जैसे भारी भरकम शब्दों से पुकारा जाए, हकीकत में वे वंचित और अस्पृश्य हैं। जब उनमें आत्मसम्मान की भावना आ जाएगी तो वे समानता हासिल करने का प्रयास करेंगे। तमाम मौजूदा समस्याओं की वजह नीची जाति का तमगा और दूसरों द्वारा निम्न कहकर पुकारा जाना है। ऐसे में इस व्यवस्था से निकलने के प्रयास किया जाना अनिवार्य है।

ऐसे सम्मेलनों से हम क्या सीखते हैं? ऐसे सम्मेलनों की चमक-दमक की सराहना करने और इनके बारे में गर्व महसूस करने के बजाय हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि यहां क्या निर्णय हुए? कौन से प्रस्ताव पास हुए। हमें खुद को उन नतीजों के मुताबिक तैयार करना चाहिए।

हम वैश्विक प्रतिस्पर्धा में शामिल होने के अनुकूल नहीं। अगर हर किसी को समान स्तर पर रख दिया जाए तो हम अवश्य अपनी क्षमता दिखा सकते हैं। लेकिन फिलहाल दौड़ की शुरुआत से ही अलग-अलग वर्ग काफी आगे-पीछे खड़े हैं और देवेंद्र कुला वेलार तो इस पंक्ति में सबसे पीछे खड़े हैं। जब उन पर प्रतिस्पर्धा के लिए दबाव बनाया जाता है जाहिर है जो सबसे पीछे है वह चाहे जितनी मेहनत कर ले उसे सबसे पीछे ही रहना है। हमारी शैक्षणिक और आर्थिक स्थिति भी बहुत सीमित है। कुछ लोग कह सकते हैं कि हमने शिक्षा हासिल करने के बहुत अधिक प्रयास नहीं किए। ऐसा शायद ही कोई व्यक्ति होगा जिसने शिक्षा हासिल करने की कोशिश नहीं की हो। परंतु हम बंधे रहे हैं। हमें जकड़े रखा गया ताकि हम शिक्षा और बेहतर आर्थिक स्थिति न हासिल कर लें। अगर हम एकजुट हो गए तो वे जकड़बंदियां टूट सकती हैं। हम इस प्रतिस्पर्धा में भी बहुत अच्छा प्रदर्शन कर सकते हैं।

हालांकि कुछ लोग मानते हैं कि देवेंद्र कुला वेलार अस्पृश्य होते हैं, कुछ लोग उनको शूद्र और वेश्या पुत्र मानकर भी खुद से दूर रखने की हिमायत करते हैं। एक ब्राह्मण जो अपने अलावा सबको शूद्र मानता है उसे दक्षिण अफ्रीका में गोरे सामाजिक रूप से कमतर मानते हैं। वह कुछ खास जगहों पर रह नहीं सकता, न ही वह कुछ सडक़ों पर चल सकता है। यानी दुनिया भर में लोगों के साथ ऐसा दोयम व्यवहार होता है।

अगर कोई आपको पल्लार, परियार कहकर पुकारता है और आपसे खराब व्यवहार करता है तो मैं कहूंगा कि वह आपसे भी बुरी स्थिति में है। आपका जाति नाम किसी भी तरह उन लोगों के जाति नाम से भिन्न नहीं है जो आपको अपने से कमतर समझते हैं। अगर कोई मुझसे पूछे कि पल्लार, परियार या शूद्र कहे जाने में सबसे ठीक क्या है तो इसके उत्तर में मैं कहूंगा कि कभी किसी को शूद्र मत कहिए।

पल्लार और परियार कहा जाना तो फिर भी बेहतर है। इसलिए क्योंकि शूद्र नाम में जो भाव छिपा है वह अन्य जातियों से खासा कमतर है। पल्लार और परियार तो अपने मातापिता की संतान होते हैं, जबकि शूद्रों को ब्राह्मणों की रखैल की संतान माना जाता है। आप कह सकते हैं कि मौजूदा सरकार ऐसा नहीं मानती है। परंतु अगर पुराना रामराज्य वापस आया तो स्थिति ठीक यही होगी जो मैंने कहा।

आज भी त्रावणकोर में जहां रामराज्यम है वहां स्थिति ऐसी ही है। वहां अगर आप किसी पक्के नायर से पूछेंगे कि तुम किसके बेटे हो? पिता का नाम क्या है तो वह उत्तर में कहेगा कि मैं फलाने नंबूदरी का बेटा हूं। मैं अमुक नंबूदरी से पैदा हुआ हूं। वह अपने आपको एक नायर का बेटा बताने में शर्माएगा। उसके ऐसा कहने की वजह यह है कि वहां रामराज्यम है। एक सच्चे हिंदू राज्य में कोई व्यक्ति इच्छा के मुताबिक पिता बदल सकता है और संबंधित व्यक्ति की इच्छा से एक महिला कई पुरुषों की पत्नी हो सकती है। यहां शूद्र शब्द का लगभग यही अर्थ है।

आप खुद को वेललार कहलाना चाहते हैं। वन्नियार खुद को क्षत्रिय कहलाना चाहते हैं। चेट्टियार खुद को वैश्य कहलवाना चाहते हैं। अगर पूछा जाए कि यह सब क्यों क्योंकि यह तो खुद को गिराने के समान है तो आपकी तरफ से उत्तर मिलता है कि क्या हुआ हम तो केवल अपने माता-पिता सुधार रहे हैं और आप हैं कि हमें नीचे धकेल रहे हैं?

कुछ नादर सज्जनों ने केवल आर्यों का अनुकरण करने की कोशिश में पूनुल (यज्ञोपवीत) धारण किया। जब उनसे उसे हटाने को कहा गया तो उन्होंने उत्तर में कहा कि उन्हें इसे धारण करने में लंबा अरसा लगा है और काफी लंबा संघर्ष करना पड़ा है और इससे पहले कि यह पुराना भी पड़े आप हमें इसे उतारने को कह रहे हैं? यानी यह स्पष्ट है कि क्षत्रिय, वैश्य, वेलार कहलाने की कोशिश या पवित्र धागा धारण करना यह बताता है कि यह भावना अभी मौजूद है कि हमसे ऊंची जातियां अस्तित्त्व में हैं। ऐसी कोशिश करने वाले यह मानते हैं कि वे औरों से कमतर हैं। जो व्यक्ति खुद को उच्च जाति का क्षत्रिय और वैश्यों से ऊपर मानता है और वैश्यों को शूद्रों से बेहतर मानता है वह भी शेष दोनों से एक समान निम्न व्यवहार करता है।

उसके लिए शेष तीनों जातियों में कोई फर्क नहीं। क्या आपने ऐसा होते देखा नहीं और क्या आपको कभी रेलवे टिफिन सेंटर या होटल जाते वक्त इस बात का अहसास नहीं हुआ? यहां दो स्थान होते हैंः एक स्थान पर ब्राह्मण बैठकर भोजन करते हैं और दूसरी जगह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बैठकर भोजन करते हैं। आपको वहां क्या अंतर नजर आता है? क्या इससे यह संकेत नहीं जाता है कि ब्राह्मण औरों से श्रेष्ठ है जबकि शेष तीनों जातियां एक समान हैं? तब फिर आप क्यों कहते हो कि आप क्षत्रिय, वैश्य या वेलाला हो और आप ऐसी स्थिति में ऊंची या नीची जाति की बात ही क्यों करते हो? क्या आपको यह समझ में नहीं आता है कि ये

सारे आपकी एकता भंग करने के धूर्ततापूर्ण उपाय हैं? जातियों के बंटवारे से केवल एक जाति को लाभ होता है बाकी सभी की एकता भंग होती है।

इसलिए हमें इस नतीजे पर पहुंचना होगा कि जाति की वजह से होने वाले अत्याचारों का खात्मा होना चाहिए या नहीं? दूसरी बात हमें इस नतीजे पर भी पहुंचना होगा कि किसी व्यक्ति के लिए उच्च जाति या निम्न जाति जैसी कोई चीज नहीं होती। जातिप्रथा का चाहे जो भी आधार हो, इसे तत्काल नष्ट किया जाा चाहिए। अगर आप ऐसा नहीं करते हैं और सोचते हैं कि फिर भी जाति प्रथा को खत्म किया जा सकता है तो यह वैसा ही है जैसे कोई मूर्ख व्यक्ति पेड़ की ऊंची शाखा पर बैठ कर उसके निचले हिस्से को काट रहा हो। जाति और आचार संहिता जैसी बातों ने ही धर्म रूपी वृक्ष को संरक्षण दे रखा है। जाति को धर्म से अलग करना होगा। अगर ऐसा नहीं किया गया और अगर जाति और धर्म आपस में जुड़े रहे तो दोनों का नष्ट होना अपरिहार्य है। उच्च जाति के धूर्त व्यक्तियों ने अत्यंत धूर्ततापूर्वक जाति और धर्म को आपस में जोड़ दिया ताकि उनको अलग करना मुश्किल हो जाए। इसलिए जब आप जाति को नष्ट करने का प्रयास करते हैं तो आपको यह डर नहीं लगना चाहिए कि धर्म भी नष्ट हो जाएगा क्योंकि ऐसा होना अनिवार्य है। जाति और धर्म के वृक्षों को एक साथ जलाकर राख करना होगा। लेकिन इसमें एक समस्या भी है। धर्म वेदों, पुराणों आदि से आबद्ध है। इसलिए उसे पहले वेदों और पुराणों से मुक्त करना होगा। यह बंधन बहुत मजबूत है और इसमें अलगाव संभव नहीं है। यहां भी इन दोनों को एक साथ ही नष्ट करना होगा। वेदों का संबंध ईश्वर से है। इसलिए ईश्वर से भी निपटना होगा। अगर आप वेदों से मजबूती से पेश आते हैं तो ईश्वर को भी झटका लगेगा। यहां पर किसी भी व्यक्ति के लिए दुविधा की स्थिति बन सकती है। लेकिन ईश्वरीय सत्ता को हिलाने से भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। जाति धर्म, वेद, ईश्वर सभी को नष्ट किया जाना चाहिए। वे एक-दूसरे से इस कदर जुड़े हुए हैं कि उनमें से किसी को भी अलग कर पाना या उनको अलग-अलग नष्ट कर पाना मुश्किल है। ऐसे में जब हम उन सभी को एक साथ नष्ट करेंगे तो यदि उनमें से किसी में जरा सा भी दम होगा तो वह नष्ट होने से बच जाएगा। इसलिए जब हम जाति व्यवस्था को नष्ट करना चाहते हैं तो धर्म भी नष्ट होता है तो होने दें। हम ऐसा धर्म नहीं चाहते जिसमें जाति व्यवस्था जैसी गड़बड़ी हो। उसे नष्ट हो जाने दीजिए, आज और अभी। जब आप धर्म को जलाते हैं तब अगर वेद भी जल जाता है तो जलने दीजिए। जब आप वेद को जलाएं, तब अगर ईश्वर भी जलता है तो उसे जल जाने दीजिए। हमें ऐसे ईश्वर की आवश्यकता नहीं। जाति के अत्याचारों के कारण मनुष्य की स्थिति अपशिष्ट पदार्थ से भी बुरी रही है। यह सच है केवल जुमलेबाजी नहीं। एक व्यक्ति जो नित्यक्रिया से निपटने जाता है, वह पानी भरे बर्तन से उस क्षेत्र को साफ करता है। अगर गलती से भी किसी का हाथ या पांव मल से टकरा जाए तो वह अपने हाथ या पैर को धोकर साफ करता है लेकिन

अगर कोई इंसान किसी अन्य इंसान से टकरा जाये तो ऐसा माना जाता है मानो वह सर से पैर तक पूरी तरह दूषित हो गया। तब कहा जाता है कि जब तक वह व्यक्ति सर से पैर तक पानी से नहा नहीं लेता तब तक यह प्रदूषण जाने वाला नहीं है। जाहिर है मनुष्य की स्थिति मल से भी गई गुजरी है। अगर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को छू दे तो भला इससे क्या नुकसान होने वाला है? यह कि तरह का प्रदूषण है? यह क्या कोई अपराध है? नहीं। तो फिर इसे दोष क्यों कहा जाता है? ऐसा करना केवल दूसरों को मूर्ख बनाकर जीवन व्यतीत करने के समान है।

कुछ लोग कहते हैं कि अमुक जाति के लोगों को नहाकर अपने शरीर को साफ करना चाहिए, ताड़ी नहीं पीनी चाहिए, मांस नहीं खाना चाहिए। जो लोग ऐसा कहते हैं वे खुद को सुधारवादी बताते हैं। मैं यह नहीं कहता कि इन लोगों को साफ नहीं रहना चाहिए। न ही मैं कहता हूं कि उनको ताड़ी या अरक पीना ही चाहिए या मांस खाना ही चाहिए। लेकिन उनको केवल इस आधार पर नीचा दिखाने का काम नहीं किया जाना चाहिए। मैं ऐसे लोगों को सलाह देने वालों से पूछना चाहता हूं कि क्या वे ऐसे लोगों को नहीं छूते जो नहाते नहीं या ताड़ी पीते अथवा मांस खाते हैं? क्या वे रोज जितने लोगों को छूते हैं या जितने लोगों से संवाद करते हैं वे सभी रोज स्नान करते हैं? क्या वे मांस नहीं खाते? क्या वे ताड़ी या अरक नहीं पीते? मैं सप्ताह में केवल दो दिन नहाता हूं? चूंकि मैं निरंतर यात्रा पर रहता हूं इसलिए मैं इससे ज्यादा नहीं नहा पाता। मेरे जैसे तमाम लोग हैं। क्या वे ऐसे लोगों को नहीं छूते? दुनिया में ९९ प्रतिशत लोग मांस खाते हैं। पीने की परंपरा भी सभी जातियों में है। क्या ये लोग इन तमाम लोगों को नहीं छूते?

क्या हमारे यहां होने वाली तमाम ताड़ी और सारा मांस केवल वही लोग खाते-पीते हैं जिनको अस्पृश्य कहा जाता है? कुछ लोग कहते हैं कि ये लोग गोमांस खाते हैं। जो लोग हम पर शासन करते हैं वे पूरी तरह गोमांस खाने वाले हैं। जिन लोगों ने गोमांस भक्षियों को अपना शासक स्वीकार कर लिया है और उनके अधीन हैं उनको हमारो किसी भाई बंधु के गोमांस खा लेने से भला ऐसी क्या आपत्ति है? क्या ये बातें बेतुकी, बेशर्मी भरी और एक तरह के श्रेष्ठताबोध से संचालित नहीं हैं? मुस्लिम भी गोमांस खाते हैं। ये लोग इस मुद्दे पर उनसे क्यों नहीं लड़ते?

कुछ अन्य लोगों का कहना है कि वे मृत गायों और बैलों का मांस खाते हैं। यदि ऐसा है भी तो उन तक भला किस तरह का प्रदूषण पहुंचता है? क्या भयभीत और चीखती चिल्लाती गाय को मार कर खाना बेहतर या मृत और दफनाए जाने को तैयार गाय को मारकर खाना? वह भी तब जबकि गरीबी ने कोई अन्य विकल्प नहीं छोड़ा हो। क्या यह कोई पाप है? कीड़ों को खाने वाली मुर्गियां, गंदगी खाने वाले सुअर की तुलना में घास और खली खाने वाले मृत गाय और बैल को खाना खराब काम कैसे हो गया?

अगर किसी व्यक्ति के पास नहाने का कोई जरिया ही न हो तो वह भला कैसे

नहाएगा? आप मठाधीशों और तथाकथित संतों को बंद कर दीजिए। उनको एक महीने तक नहाने और मुंह दांत आदि धोने के लिए पानी मत दीजिए। क्या उनके मुंह से बदबू नहीं आएगी? क्या उनका शरीर बदबू नहीं देगा? क्या उनके कपड़े गंदे नहीं होंगे? ऐसा क्यों होगा? क्या ऐसा उनको पानी नहीं देने कारण होगा? या इसमें उनकी पैदाइश की कोई भूमिका होगी? जब तथाकथित अस्पृश्यों को पीने का पानी नहीं दिया जाता तो फिर यह कहना निहायत मूर्खतापूर्ण है कि वे नहाते नहीं हैं। जब उसे इतना कम पैसा मिलता है और उसकी कड़ी मेहनत से मामूली आय होती है और जब वह ऐसी सामाजिक स्थिति में है कि मांस नहीं खरीद सकता तो वह मृत गाय या बकरी का मांस खाने के अलावा क्या कर सकता है? उसे अपनी आजीविका के लिए तमाम कठिन स्थानों पर जाना होता है। फिर चाहे कड़ी धूप हो, तेज ठंड हो, बारिश हो रही हो या वह पसीने में लथपथ हो। अगर वह शारीरिक थकान मिटाने के लिए ताड़ी पीता है तो क्या वह इसलिए दूसरों से कमतर हो जाएगा?

मैं इन जगहों पर इनकी सामाजिक स्थिति के बारे में नहीं जानता। हमारे यहां तो इस जाति को तालाबों और जलाशयों तक पर नहाने की इजाजत नहीं है जबकि वहां जानवरों तक को नहलाया जा सकता है। इनको उन नहरों तक में नहाने की इजाजत नहीं है जिनके जरिए पानी कुओं से खेतों तक पहुंचाया जाता है। इन बातों के लिए कौन उत्तरदायी है? क्या यह सब जन्म से जुड़ा है? या फिर यह जातीय गौरव से लैस लोगों की करतूत है?

हमने सबकुछ निष्पक्ष ढंग से किया, धर्म के अनुशासन का पालन, शास्त्रों का पालन, ईश्वर के प्रति आस्था का प्रदर्शन आदि करने में असीम धैर्य का परिचय दिया। यह सब इसलिए ताकि हमारी जीवन परिस्थितियों में कुछ सुधार आए। हमने सबकुछ शांतिपूर्ण अंदाज में किया, धर्म और ईश्वर के प्रति श्रद्धा का प्रदर्शन किया। परंतु धैर्य और शांति प्रदर्शन की एक सीमा है। अब वह सीमा टूट चुकी है। अब धर्म, वेद या ईश्वर की आज्ञा का पालन नहीं किया जाएगा।

वो कहते हैं कि पुराणों में कोई कमी मत निकालो। इन पुराणों ने नंदन को नयनार और पन्नन को अलवर बना दिया। ठीक है हम खामोश रहते हैं लेकिन अगर यह सच है कि नंदन को स्वर्ग जाने का अवसर मिला या उसे मुक्ति मिली तो उसके बेटे को मंदिर जाने की इजाजत क्यों नहीं दे रहे हो। अगर यह सच है कि पनन को अलवर बना दिया गया था तो उसके पोते को मंदिर जाने से क्यों रोका जाता है? आप नंदन और पनन के लिए एक-एक पत्थर रखते हैं और चाहते हैं लोग उनके नाम पर पोंगल अर्पित करें। आप ऐसा करके धन कमाना चाहते हैं। आप उनके नाम पर और क्या-क्या कर रहे हैं? अगर नंदन ऐसा कर सकता है तो हम क्यों नहीं? अगर हम ऐसे प्रश्न पूछते हैं तो वे कहते हैं कि नंदन ने मंदिर प्रवेश के पहले आग में प्रवेश किया इसलिए तुम भी ऐसा ही करो। यानी अगर हम मंदिर जाना चाहें तो हमें पहले आग पर चलना

होगा। ऐसे तो हम जलकर राख हो जाएंगे। प्रवेश की तो बात ही छोड़ दीजिए।

यानी जाति के बंधन को हर हाल में खत्म किया जाना चाहिए। जातिगत भेदभाव दूर करने की कोशिश में तमाम बलिदान दिए जाने चाहिए। हमें इस सम्मेलन में पारित प्रस्तावों को क्रियान्वित करना चाहिए। हर किसी को आगे आकर इनसे प्रतिबद्धता जतानी चाहिए। पल्लार कहकर पुकारा जाए या वेललार, इसमें समय गंवाने में कोई तुक नहीं है। पश्चिमी देशों में कई चीजों पर शोध किया जा रहा है और हम यहां नामों को लेकर लड़ रहे हैं। अगर आप अपने आपको देवेंद्र कुला ब्राह्मण कहेंगे तो भी क्या होगा। मैं उन लोगों की पीड़ा से भी अवगत हूं, जिन्होंने अपने जाति नाम में ब्राह्मणों का नाम जोड़ लिया है। विश्व ब्राह्मण, देवांग ब्राह्मण, सौराष्ट्र ब्राह्मण आदि ऐसे ही नए नाम हैं। मुझे पता है उनकी हालत क्या है। एक आदि द्रविड़ को किसी घर से चाहे जितनी गालियां मिलती हों वह वही खाएगा जो उसे उस घर से दिया जाएगा। जहां उसे खड़ा किया जाएगा वह खड़ा होगा और जो उसे दिया जाएगा वह ले लेगा। लेकिन वह विश्व ब्राह्मण के घर से दिया गया पानी तक नहीं छुएगा। अगर आप उससे इसकी वजह पूछेंगे तो आपसे कहा जाएगा कि विश्व ब्राह्मण इदक्कैयार, बाएं हाथ वाले हैं जबकि हम सभी वलंगई यानी दाएं हाथ वाले हैं। तो जिन लोगों ने अपने जाति नाम में ब्राह्मण शब्द जोड़ लिया है उनकी यह स्थिति है।

मुझे तो देवेंद्र कुला नाम भी अपमानजनक लगता है। मुझे नहीं पता आप लोगों का नाम ऐसा क्यों है। लेकिन देवेंद्रन शब्द अपने आप में अश्लील है क्योंकि देवेंद्र से जुड़ी तमाम कहानियों में उसका चित्रण ऐसा ही है। उसे तो एक वेश्या पुत्र से भी बुरा माना जाता है। किसी एक जाति को कई नामों के साथ विभिन्न उपजातियों में नहीं बांटा जाना चाहिए। नायकरों में भी कई तरह के भेद हैं। चेट्टीज और पिल्लई में भी ऐसे ही अंतर हैं।

मद्रास में एक परियाह भी अपने आप को पिल्लई बुलाता है। पल्लन भी खुद को पिल्लई कहता है। चूंकि मद्रास में रहने वाले पल्लन और परियाह अपना नाम बदलकर पिल्लई कर चुके हैं इसलिए यहां रहने वाले युवाओं ने भी अपना नाम हवाई जहाज की तरह तीव्र गति से बदला और वे मुदलियार हो गए। ऐसी प्रवृत्ति से बचा जाना चाहिए। हमें अपने विचारों से जाति भेद को नष्ट करना होगा। हम अपनी जन्मजाति को नीचा समझें और खुद को दूसरों से कमतर समझकर उनके समक्ष आत्मसमर्पण कर दें। इससे बुरा कुछ नहीं हो सकता। हमें ऐसे विचारों का पालन नहीं करना चाहिए।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी आरंभिक टिप्पणी समाप्त करता हूं। मैं यहां हुए स्वागत के लिए स्वागत समिति के प्रति आभार प्रकट करता हूं। मैं अन्य बातों का जिक्र अपने समापन भाषण में करूंगा।

(त्रिची में 29.9.1929 को दिया गया भाषण। द्रविडन् डेली- 5.10.1929)

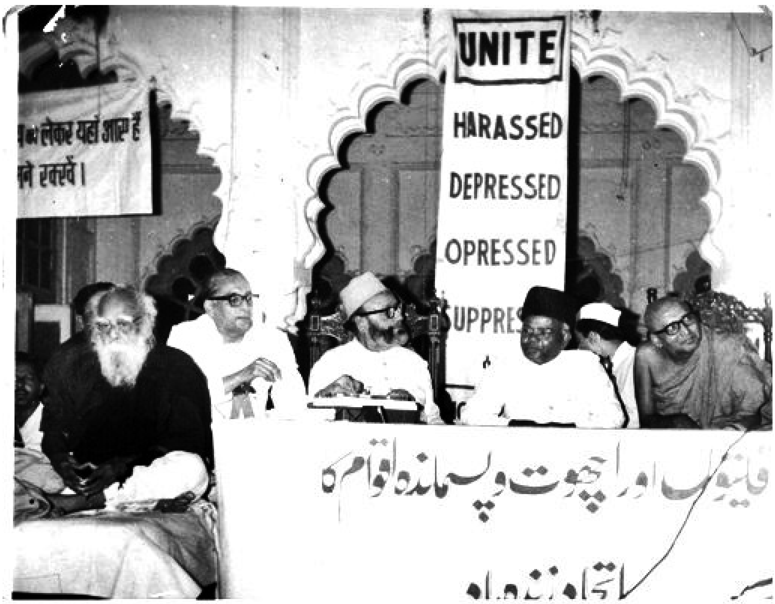

लखनऊ, 1968 : (बाएं से) रामास्वामी पेरियार, बी. श्याम सुंदर, फरीदी और भदंत आनंद कौसल्यायन

बहुजन-कल्याण-माला—६१

पेरियर

ई. वी. रामस्वामी नायकर

(A Pen Portrait, Philosophy, Social Reform and Social Revolution का हिन्दी-अनुवाद)

अनुवादक

श्री दयाराम जैन

भूत पूर्व सम्पादक 'मानसी' वर्धमान साहित्य मंदिर, वर्धमान प्रेस, प्रगति प्रकाशन केन्द्र, प्रगति एडवर्टाइजिंग एजेन्सी आदि अनेक साहित्य-सेवी संस्थाओं के संस्थापक, लखनऊ

प्रकाशक

बहुजन कल्याण प्रकाशन

३६०/१६३ मातादीनरोड, लखनऊ-३

1970 में चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु द्वारा प्रकाशित संग्रह का टाइटल पेज। इस संग्रह की कीमत थी तीन रुपए।

खण्ड - 3

पेरियार : दर्शन और समाज सुधार पर

समाज का पुनर्निर्माण

द्रविड़िस्तान आंदोलन का स्पष्टीकरण

सम्पादक महोदय चाहते थे कि मैं ब्लैकशर्ट मूवमेंट (काली कमीज आंदोलन) विषय में कुछ लिखूं। इस नाम का कोई भी आंदोलन नहीं है। जो लोग इस आंदोलन से असंतुष्ट हैं इसकी गतिविधि से उन्हें बाधा पहुंचती है, या यह जिनके प्रतिकूल है, उन्होंने इसका ऐसा नामकरण किया है। वास्तव में सम्पादक महाशय का भाव द्रविड़िस्तान से है। राष्ट्र के किसी विशाल आंदोलन के अनुयायियों द्वारा पहनी जाने वाली ड्रेस व रंग के आधार पर उस आंदोलन का नामकरण करना असंगत है। मैं कांग्रेस आंदोलन को खद्दर आंदोलन नहीं कह सकता।''

इस महान प्रायद्वीप के निवासी द्रविड़ जिस अज्ञान एवं पतनोन्मुख स्थिति में कर दिये गये हैं, काली कमीज उस स्थिति की सूचक है। यह हमारी आर्थिक दासता को प्रकट करती है। जिस प्रकार एक सच्चा कांग्रेसी खद्दर पहनकर अपने को गर्वान्वित समझता है, उसी प्रकार हम लोग काली कमीज पहनकर अपने को गर्वीला मानते हैं। काली कमीज पहनने का सुझाव मेरा अपना है, किसी विदेशी पार्टी अथवा संगठन से यह नहीं लिया गया। काला रंग प्रायः मृत्यु और शोक का सूचक है। हम द्रविड़ लोग मृत पुरुषों से भी अधिक गये गुजरे हैं। पुराण, इतिहास स्मृति और अन्य हिन्दू शास्त्र हम लोगों को शूद्र मानते हैं। हिन्दू विधान अब भी हमें ऐसा ही मानता है। हिन्दू मंदिर तक हमारा तिरस्कार करते हैं। मंदिर प्रवेश कानून, जिसका कांग्रेसियों को बड़ा गर्व है, इन पवित्र मन्दिरों में हमें नहीं जाने देता। द्रविड़ भाषाएं ईश्वर के लिये अभिशाप समझी जाती है। समाज में हम लोगों को कितना नीचा एवं लज्जास्पद समझा जाता है, इसके समर्थन में सैकड़ों प्रमाण तथा उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

पब्लिक की जानकारी तथा समाज में अपनी इस दुःखद स्थिति की यादगार के लिये मैंने यह काली कमीज प्रतीक रूप में निर्धारित की है। जो इसे पहनते हैं वे उतना ही गर्व का अनुभव करते हैं, जितना गर्व गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका के कैदियों की टोपी अपने सिर पर पहनकर किया था। क्या गांधीजी के अनुयायियों ने

उस टोपी को गांधी टोपी कहकर उसका सम्मान नहीं किया था? बावजूद इस तथ्य के कि काली कमीज एक साधारण प्रतीक है फिर भी प्रांतीय सरकार ने काली कमीज आंदोलन पर प्रतिबंध लगाने का विचार किया। यह गलती एक बार सरकार को बताई गई। हम लोग बराबर इसे पहनते रहे, यद्यपि सरकार ने अपना प्रतिबंध इस पर से नहीं हटाया। लेकिन मैं सरकार को धन्यवाद देता हूं कि प्रतिबंध लगा कर उसने हमारे आंदोलन को आगे बढ़ाया।

इतना सब कुछ है, इस कथित काली कमीज आंदोलन के विषय में।

यह भली प्रकार ज्ञात है कि जस्टिस पार्टी के संस्थापक दक्षिण भारत के दो महान नेता डा. टी.एम. नायर और सर पी. त्यागरोया चेट्टियर थे, जो बहुत दिनों तक कांग्रेस में रहे हैं।

सन 1920 के पूर्व कांग्रेस संगठन का मुख्य ध्येय भारतीय लोगों के लिये बड़ी-बड़ी नौकरियां प्राप्त करना था, जो अधिकांश रूप से विदेशियों के हाथ में थी। परिणामस्वरूप समस्त प्रधानपद विशेषाधिकार प्राप्त कुछ लोगों ने अर्थात ब्राह्मणों ने हथिया लिये थे। दक्षिण भारत की शेष जातियों को समान अधिकार एवं समान अवसर प्राप्त हों और पद दलित अब्राह्मण को राजनीतिक, शैक्षिक तथा आर्थिक समानता मिले, एतदर्थ जस्टिस पार्टी की स्थापना इन दो महान नेताओं द्वारा की गयी थी। उन दिनों अब्राह्मण 10 प्रतिशत भी शिक्षित न थे और 5 प्रतिशत से अधिक सरकारी या गैर सरकारी स्थानों पर नौकर नहीं थे। राजनीतिक क्षेत्र में तो इनका पूर्ण अभाव था। विधानसभाओं, स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अब्राह्मण वर्ग पूर्णरूप से उपेक्षित था। लाभ वाले अधिकांश समस्त स्थान (100 रू से ऊपर के) अब्राह्मण वर्ग को नहीं दिये जाते थे, जबकि उनकी जनसंख्या का अनुपात 97 प्रतिशत था। हजारों रुपये मासिक वेतन वाले पद तो अब्राह्मणों को मिलना स्वप्न मात्र था।

इस प्रकार एक अल्पसंख्यक जाति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बहुसंख्यक जाति पर अपना अधिकार जमाये हुई थी, यहां तक कि अब्राह्मण वर्ग के कुछ पढ़े-लिखे और कार्य में विशेष क्षमता रखने वाले व्यक्ति तक सरकारी और गैर सरकारी उच्च पदों पर नहीं लिये जाते थे। अतएव साउथ इंडियन लिबरल फेडरेशन' (जस्टिस पार्टी) का अविर्भाव हुआ।

उस समय की कांग्रेस पर दक्षिण भारतीय ब्राह्मणों का प्रभुत्व था। उत्तर भारत के नेता भी कांग्रेस पर हावी थे परन्तु या तो उन्हें दक्षिण भारत के अब्राह्मणों की इस दयनीय स्थिति का पूर्ण ज्ञान न था, या जान-बूझकर इनकी उपेक्षा उनके द्वारा की गई थी। स्वभावतः कांग्रेस ने अपना ध्यान दक्षिण भारतीय आंदोलन की ओर लगाया। लगभग समस्त भारतीय समाचार पत्र कांग्रेस, ब्राह्मण तथा ब्राह्मणों के साथ सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों के हाथ में थे। (जैसा कि आजकल भी है) अतएव देश के

कोने-कोने मैं झूठा प्रचार किया गया कि जस्टिस पार्टी अंतर्राष्ट्रीय एवं ब्रिटिश पोषक है। इस मिथ्या एवं भ्रामक प्रचार का एक मात्र कारण जस्टिस पार्टी का वह आंदोलन था, जिसमें मांग की गई थी कि अब्राह्मण वर्ग को भी उच्च सरकारी व गैरसरकारी नौकरियां दी जायें, और इस मांग के न मानने पर येन केन प्रकारेण शासन पर अधिकार जमाकर सरकारी उच्च नौकरियां प्राप्त की जाय। इसमें जस्टिस पार्टी को कुछ अंश तक सफलता भी मिली परंतु जस्टिस पार्टी के विरुद्ध मिथ्या प्रचार की गति बहुत तीव्र थी। परिणामस्वरूप अनपढ़ एवं मूर्ख जन समूह इस भ्रामक प्रचार पर विश्वास करने लगा।

सन 1920 के बाद कांग्रेस आंदोलन ने नरम आंदोलन उखाड़ फेंका (यहां यह स्मरणीय है कि सन 1920 के पूर्व कांग्रेस के अधिवेशनों में ब्रिटिश राष्ट्रीय स्तुति गाई जाती थी) और ब्रिटिश विरोधी तथा असहयोगात्मक उग्र भावना अपनाई जाने लगी। अतः यह स्वाभाविक था कि जस्टिस पार्टी को, जो देश के राज्य शासन में समान अधिकारों के लिये लड़ रही थी, एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन घोषित किया जाय। इसके अतिरिक्त मंत्री पदों को प्राप्त करने हेतु जस्टिस पार्टी में आपस में भीतरी संघर्ष चला और पार्टी का विभाजन हो गया। यद्यपि ऐसे अनेक विभाजन आये दिन कांग्रेस वार्षिक अधिवेशन के समय मंत्रियों के मध्य होते चले आये हैं, परंतु जनता ने उन्हें गंभीर नहीं समझा। लेकिन ऐसी बात उन दिनों न थी।

इस लंबी-चौड़ी कहानी को संक्षेप में कहने के लिये यह मानना पड़ेगा कि स्वराज्य पार्टी का उदय, चुनावों में जस्टिस पार्टी की हार, तथा कुछ अब्राह्मण लोगों की धोखाधड़ी ने जस्टिस पार्टी का अंत कर डाला।

कांग्रेस से अलगाव

सन 1923-26 के मध्य हममें से उन्होंने जो कांग्रेस की भीतरी व बाहरी प्रत्येक गति को जानने थे, (मेरा मतलब मुझसे और ब्राह्मण समाज से है), कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया। लेकिन मैं जस्टिस पार्टी से फौरन ही नहीं जुड़ गया। मैं अंतरंग से राष्ट्रीय था। लेकिन मैंने जस्टिस पार्टी की साम्प्रदायिकता प्रतिनिधित्व वाली नीति को सिद्धांततः स्वीकार कर लिया। कट्टर कांग्रेसी, दलबदल नहीं, और शक्तिशाली मि. राजगोपालाचार्य, (अब स्वतंत्र पार्टी के कर्णधार) का लेफ्टीनेंट होते हुए भी मैं साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और समान तथा विशिष्ट अधिकारों के लिये लड़ता रहा। इस सिद्धांत को मद्रास कांग्रेस पार्टी द्वारा मान्यता दिलाई और अब्राह्मण जाति के लोगों के लिये 50 प्रतिशत स्थान सुरक्षित करवाये। मैंने तथा अन्य राष्ट्रीय अब्राह्मण लोगों ने मद्रास प्रेसीडेंट एसोसिएशन की स्थापना की, जिसने इस सिद्धांत को माना। मैंने 'नेशनलिस्ट एसोसियेशन' की स्थापना की, जिसमें कुछ राष्ट्रीय ब्राह्मण भी सम्मिलित थे, जिन्होंने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धांत स्वीकार किया।

मैं यह इसलिये कहता हूं कि अब्राह्मण जाति की उन्नति के लिये यही एक मात्र रचनात्मक तरीका है। यह मेरा अटल सिद्धांत है, जिसपर मुझे पूर्ण विश्वास है। कांजीवराम में होने वाले प्रांतीय कांग्रेस अधिवेशन में किस प्रकार मैंने इस साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव को स्वीकार कराने के लिये प्रस्तुत किया, और यह किस प्रकार अध्यक्ष द्वारा खारिज कर दिया गया, और अपने सहयोगियों के साथ किस प्रकार मैं बाहर चला आया, इन सब तथ्यों की जानकारी जरूरी है। मैं उस समय प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का सेक्रेट्री था और उसके पूर्व दो बार इस कमेटी का अध्यक्ष भी रह चुका था। मेरे इस महत्वपूर्ण पद के बावजूद यदि मेरे साथ ऐसा दुर्व्यवहार होता है, तो कौन स्वाभिमानी व्यक्ति इसको सहन कर सकता है? दस वर्ष तक कांग्रेस में सेवा की, त्याग, तपस्या, लगन एवं जेल यात्रा का आदर्श जनता के समस्त प्रस्तुत किया। फिर ऐसी दशा में मुझे कांग्रेस का परित्याग करना पड़ा। इसी कारण 'आत्मसम्मान' आंदोलन का आविर्भाव हुआ।

दक्षिण भारत में एक विशाल राष्ट्रीय संगठन, द्रविड़ कजगम का किस प्रकार उदय हुआ? कुछ घटना चक्रों के कारण सुविख्यात जस्टिस पार्टी का नामकरण 'साउथ इंडियन लिवरल फेडरेशन' हुआ और सन 1939 में इसका मुझे अध्यक्ष चुना गया। सन 1944 में सलीम में हुए वार्षिक कानफेडरेशन की बैठक में मैंने प्रस्ताव रखा कि इस संस्था का नाम द्रविड़ कजगम रख दिया जाय। सब लोगों ने इसे स्वीकार कर लिया क्योंकि 'आत्मसम्मान' आंदोलन का यह प्रतीक था, जिसे मैंने द्रविड़ कजगम में मिला दिया। इसका मैं ही संस्थापक था।

द्रविड़ जाति की अपनी स्पष्ट मौलिकता है। उसकी अनेक भाषाएं हैं, जो अपना बिल्कुल स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं। किसी अन्य भाषा से न मिली-जुली है और न ही किसी भाषा पर अवलंबित हैं। इन भाषाओं पर इन्हीं लोगों का अधिकार है। 'आर्य' और 'द्रविड़' शब्द मेरे खोजे हुए नहीं हैं। वे तो ऐतिहासिक तथ्य हैं और छात्रों की प्रत्येक पाठ्य पुस्तकों में पाये जाते हैं। इस तथ्य को स्वामी विवेकानंद सहित अन्य गणमान्य समाज सेवियों, पं. जवाहरलाल नेहरू तथा विभिन्न इतिहासकारों ने माना है कि रामायण, आर्य और द्रविड़ लोगों के आक्रमण के प्रतिनिधित्व का एक लाक्षणिक ग्रन्थ है। मेरी इच्छा इस भेदभाव को स्थिर करना नहीं है, अपितु समाज में इन दो परस्पर विरोधी तत्वों को एक साथ सूत्र में बांध देना है। जर्मनी के भूतपूर्व नाजी नेता की तरह जातिवाद के सिद्धांत में मेरा बिल्कुल विश्वास नहीं। रक्त परीक्षण द्वारा कोई भी व्यक्ति दक्षिण भारत के लोगों को दो भागों में विभाजित नहीं कर सकता।

जिन लोगों ने बड़े ध्यानपूर्वक दक्षिण भारत के आर्य और द्रविड़ इन दो स्पष्ट विभिन्न जातियों का अध्ययन, उनकी जीवन परिचर्या, स्वभाव तथा साहित्य को देखकर किया है, वे इस तथ्य को कभी भी इंकार नहीं कर सकते कि इन दोनों की

संस्कृतियों में मौलिक विभिन्नता है। द्रविड़ लोगों का यह आंदोलन मुख्यतः धर्म के आधार पर समाजवादी समाज का संगठन करना है, जिसका एक मात्र ध्येय विवेक एवं मानवीय आधार पर सामाजिक पुनर्निर्माण करना है। यह वर्ण व्यवस्था तथा जाति उप जाति आदि भेद का विरोधी है। यह औषधि की हल्की-फुल्की मात्रा या इंजेक्शन में विश्वास नहीं रखता। रोग ग्रसित अंग के अंग विच्छेद में इसकी पूर्ण आस्था है। द्रविड़ लोग किन्हीं राजनीतिक एवं धार्मिक संगठन के हो, यह आंदोलन उन सबको एकता के सूत्र में बांध देना चाहता है। यद्यपि द्रविड़ लोगों का यह आंदोलन कट्टर धर्म परायण लोगों द्वारा पालन किये हुए धर्मों को नष्ट करना है, परंतु यह इतना भयंकर धर्म-विरोधी नहीं है जैसा कि निहित स्वार्थ वाले लोग समझते और प्रचार करते हैं। उच्च जाति के लोगों ने उन्हें शूद्र जाति की संज्ञा दी है और कहा है कि इनका जन्म वेश्याओं से हुआ है।

पृथक राज्य की मांग

यह द्रविड़ आंदोलन धर्म अवलंबित सामाजिक व्यवस्था की मांग पर ही समाप्त नहीं हो जाता। आर्थिक दृष्टिकोण से यह अपने को उत्तर भारत अर्थात केंद्रीय सरकार से बिल्कुल संबंध विच्छेद कर लेना चाहता है। उत्तर भारत द्वारा दक्षिण भारत का शोषण नहीं होना चाहिए। बिड़ला, गोयनका, टाटा, डालमिया आदि पूंजीपतियों से अपना संबंध नहीं जोड़ना चाहता है। हम लोग, जो दक्षिण भारत के निवासी हैं, केवल अधिकारियों के नाम परिवर्तन मात्र से संतुष्ट नहीं हो सकते।

जब मैं कहता हूं कि हमारे ऊपर उत्तर भारत अर्थात केन्द्रीय सरकार का कोई भी अधिकार और नियंत्रण न रहे, इसका अर्थ यह नहीं कि द्रविड़िस्तान उत्तर भारत की आंखों में कांटे की तरह हमेशा चुभता रहे और कष्ट देता रहे। लंका और स्वतंत्र वर्मा से अधिक हमारी मित्रता का व्यवहार हो सकता है। एक पृथक तंत्र एक द्रविड़िस्तान राज्य की मांग द्रविड़ लोगों को आर्थिक स्वतंत्रता, पूर्णता एवं स्वावलम्बन का प्रतीक है।

ब्रिटिश लोगों के शासन के पूर्व भी दक्षिण भारत एक पृथक प्रदेश रहा। अकबर तथा अशोक ने इसके स्वतंत्र अस्तित्व में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। हमारा 1500 मील लंबा समुद्र का किनारा है, बहुत से जंगल हैं, अनेक नदियों का जाल बिछा हुआ है, और बहुत बड़ी खनिज सम्पत्ति है तथा निपुणता एवं चतुरता में हम अद्वितीय हैं। इसकी मानव शक्ति महान है। क्या हमें इस बात का गर्व नहीं है कि हम लोगों ने केंद्रीय सरकार को हम में से ही एक गवर्नर जनरल, दो वित मंत्री और अंत में एक प्रधान सेनापति प्रदान किया है? प्रस्तुत पृथक द्रविड़िस्तान स्विटजरलैंड, लंका तथा वर्मा से भी कहीं अधिक श्रेष्ठ एवं विशाल हो सकता है। जबकि भारत के छोटे-छोटे भूखंड पृथक किये जा रहे हैं, तब हमारा भूभाग, जिसका क्षेत्रफल लगभग

9, 25000 वर्ग मील है और जिसकी जनसंख्या 6 करोड़ है तथा जिसके अनेक प्राकृतिक साधन हैं, तब हमारी पृथक राज्य की मांग की उपेक्षा क्यों का जाती है।

द्रविड़िस्तान आंदोलन साम्प्रदायिक संगठन नहीं है। यह एक विशुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन है। लंबी अवधि से सामाजिक एवं धार्मिक बंधनों से जकड़े हुए द्रविड़ लोगों को इन बंधनों से मुक्त कर दो शताब्दियों से पड़ी हुई इन ऐतिहासिक पुरूषों की बेड़ियों को काटना है, जो कि विदेशी प्रभुसत्ता द्वारा डाली गई थी।

- *'दी हिन्दू' मद्रास, 26-1-1950*

दर्शन शास्त्र पर भाषण

(आचार्य ई. वी. रामस्वामी पेरियार को सलीम कालेज के दार्शनिक अधिकारियों ने दर्शन शास्त्र पर भाषण करने को आमंत्रित किया। निमंत्रण स्वीकार करके रामस्वामी उक्त कालेज गये। जिस समय रामस्वामी मंच पर आए उस समय विद्यार्थी, अध्यापकगण तथा विभिन्न आयु वर्ग की जनता भाषण सुनने के लिए पर्याप्त संख्या में एकत्रित थी। इस जन समूह को देखकर रामस्वामी ने कहा - ''यह एक कठिन कार्य है कि मैं इस ढंग से बोलूं कि आपकी समझ में आ जाय, और आप संतुष्ट हो जायें।'' इसके बाद रामस्वामी ने निम्नांकित भाषण दिया।)

अध्यक्ष एवं श्रोतागण,

आपके समक्ष अपने दार्शनिक आदर्शों को अभिव्यक्त करना यद्यपि मेरा कर्तव्य है, परन्तु दर्शन और उसके परीक्षण के संबंध में कुछ कहना सरल नहीं है। दार्शनिक ज्ञान और अनुभव में सच्चाई और यथार्थता रहती है, जैसे किसी वस्तु के दर्शन और ज्ञान का बोध उस वस्तु के आवरण रहित प्रकृति स्वरूप में होता है। इसे एक प्रकार से प्रकृति का अध्ययन भी कह सकते हैं। किन्तु आज कल दर्शन और प्रकृति को उसके ज्ञान, चरित्र और अनुभूति के आधार पर पृथक कर दिया गया है।

हमारे जैसे साधारण एवं आवरण रहित व्यक्ति के लिए सम्यक दर्शन या सम्यक ज्ञान कठिन ही नहीं, अपितु एक बड़ी जटिल समस्या है। उदाहरणस्वरूप किसी मनुष्य को यथार्थ रूप से देखना उसके प्राकृतिक स्वरूप पर पड़े हुए आवरण को हटाकर उसके वास्तविक रूप का अवलोकन करना है। यदि मनुष्य के प्राकृतिक रूप का दर्शन करना है, तो उसे उसकी आवरण रहित अवस्था में देखना चाहिए। आवरण रहित अवस्था आजकल के संसार में अरुचिकर होने के बावजूद लोगों के मन में क्षोभ एवं परेशानी उत्पन्न करती है।

इसलिये यह लोकसम्मत वचन ठीक है कि दर्शन के परीक्षण एवं ज्ञान के लिए

मनुष्य को प्रौढ़ता एवं परिपक्वता प्राप्त करना चाहिए। मेरे पूर्ण कथनानुसार सच्चे दर्शन की अभिव्यक्ति एवं टीका बहुतों को असंतोषजनक प्रतीत होगी। देश में प्रचलित सर्वसाधारण की धारणा है कि सच्चाई का उद्‌घाटन मनुष्य को शत्रु बना देता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक मनुष्य झूठा है। स्वरूप नाम तथा विशिष्ट गुणों पर पड़े हुए आवरण सहित सत्य और दर्शन का व्यवहार आजकल जनता में देखा जाता है। सम्यक दर्शन का अर्थ एवं उसके परीक्षण का जनता को बोध कराना भले ही संतोषजनक न हो, फिर भी यह एक आवश्यक कार्य है।

आपके अध्यक्ष महोदय ने कहा है कि जनता मुझे नास्तिक, अधार्मिक एवं राष्ट्रीय मानती है। यद्यपि इस विषय में इस समय अधिक चर्चा करना उचित नहीं है किन्तु मैं अपनी शक्ति भर मेरे ऊपर लगाये जाने वाले अभियोगों का खंडन करने का प्रयत्न करूंगा। इस महासभा में अपने भाषण के विषय का चुनाव करने से पूर्व अध्यक्ष महोदय द्वारा कथित 'रिमार्क' जो मेरे परिचय के संबंध में प्रस्तुत किये गये हैं, वे ही मेरे आज के व्याख्यान का विषय बन जाते हैं।

साथियो! साधारण जनता ईश्वर, धर्म तथा राजनैतिक दर्शन को जितना महान समझती है, उतना ही विद्वान एवं मेधावी छात्र इन विषयों को, जो असाधारण एवं गंभीर है, तुच्छ समझते हैं, क्योंकि इनमें विश्व का शोध एवं ज्ञान अपेक्षित है।

संगीत गोष्ठी में दो प्रकार के श्रोता होते हैं। एक साधारण, दूसरे प्रवीण संगीतज्ञ। इन दोनों प्रकार के श्रोताओं के द्वारा निर्णय में बड़ा अंतर होता है। साधारण श्रोतागण भक्ति प्रेम से भरे हुए संगीत को पसंद करते हैं। संगीत कला में निपुण श्रोतागण विशुद्ध एवं कलात्मक संगीत को, जो गायक द्वारा बड़ी सावधानीपूर्वक प्रस्तुत किया गया हो, श्रेष्ठ मानते हैं। इसी प्रकार आज का मेरा व्याख्यान का विषय भी साधारण तथा असाधारण दोनों प्रकार का है।

ईश्वर

साथियों! अध्यक्ष महोदय ने अपने भाषण में कहा है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापी है। उन्होंने यह भी कहा है कि धर्म, मनुष्य और ईश्वर को जोड़ने वाली एक कड़ी है। अर्थात धर्म द्वारा आत्मा, परमात्मा पद को प्राप्त कर लेता है। जो भी कुछ हो, आप यह बात भली प्रकार समझते हैं कि आज की यह सभा न तो कोई प्रार्थना सभा है और न ही पुराणों के विषय में कोई चर्चा करने के लिये गोष्ठी बुलाई गई है। इस सभा का एक मात्र ध्येय दर्शन की ठीक और सही व्याख्या करना है। इसलिये मैं तो केवल ईश्वर और धर्म दर्शन पर ही अपने विचार इस सभा में आपके सन्मुख प्रस्तुत करने का साहस करता हूं। बहुत से लोग मुझे धर्म विरोधी और नास्तिक बताते हैं। इस बात पर मुझे तब प्रसन्नता होती, जब कोई नास्तिक पुरुष इस प्रकार की बात करता। परन्तु आश्चर्य तो मुझे इस बात का है कि आस्तिक लोग मेरे

संबंध में इस प्रकार की चर्चा करते हैं। ऐसे व्यक्तियों के बीच जब मैं अपने को पाता हूं, मुझे उन पर बड़ा तरस आता है और उनके प्रति खेद प्रकट करता हूं। ऐसी सभा में यदि मैं अपने आदर्श एवं दार्शनिक भावों पर आवरण डालूं और निर्भयपूर्वक न बोलूं तो इसे मैं अपनी आत्म-वंचना समझता हूं। इसलिये किसी आस्तिक के द्वारा मुझे नास्तिक कहा जाना असंगत एवं अज्ञानता का द्योतक है। निम्न उदाहरण देकर मैं इसका स्पष्टीकरण कर देना चाहता हूं।

एक बार एक घरेलू उत्सव हो रहा था। उसमें दान दिया जा रहा था। एक ब्राह्मण, जिसकी आजीविका इसी प्रकार की भिक्षा-वृत्ति पर चलती थी, वहां आया। गृहस्वामी सबको चार-चार आने दे रहा था। उसने उसे भी बिना किसी भेदभाव के चार आने दिये। इस समान व्यवहार पर वह ब्राह्मण गृहस्वामी पर बड़ा क्रोधित होकर बोला कि यह कहां तक उचित है कि आप उन मूर्ख एवं अज्ञानी पुरुषों और मुझको, जो केवल विद्वान ही नहीं, अपितु जिसने चारों वेद, छः शास्त्र, अठारह पुराण, मीमांसा, दर्शन आदि का ठोस अध्ययन किया और और संसार की समस्त भौतिक इच्छाओं, स्वाभिमान तथा परदोषान्वेशिता का सर्वथा परित्याग कर दिया है, एक कोटि में रखकर मुझे भी वही चार आना देकर समानता का व्यवहार कर रहे हैं? आस्तिक द्वारा किसी व्यक्ति को नास्तिक कहा जाना भी उपयुक्त उदाहरण से मेल खाता है। आस्तिक के विचार से ईश्वर सर्वव्यापक एवं त्रिकालदर्शी है। उससे बड़ा और श्रेष्ठ कोई नहीं, और उसकी आज्ञा तथा कृपा के बिना संसार का एक भी पत्ता नहीं हिलता। अगर इस प्रकार के ईश्वर के अस्तित्व को मैं न मानूं और इसमें वाद-विवाद खड़ा करूं तो ब्राह्मण और आस्तिक के आरोप दोनों एक जैसे हो जाते हैं।

वह ब्राह्मण, जिसने अपना स्वयं परिचय इस रूप में दिया है कि उसने सांसारिक इच्छाओं, अहंकार तथा परदोषान्वेशिता का परित्याग कर दिया है और वेद आदि का पंडित है, अपनी प्रशंसा अपने आप करने पर छद्मवेशी ज्ञात होता है। इस प्रकार उसका यह गुण दूसरों पर कोई आरोप नहीं लगता अथवा किसी के दोष नहीं ढूंढता लेकिन अपने साथी भिक्षुओं को मूर्ख एवं अज्ञानी बताने के कारण प्रपंचपूर्ण और अवास्तविक प्रतीत होता है। उसके यह कहने पर कि उसने भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर दिया है, चार आने वाली दान की बात पर गृहस्वामी से प्रश्न करना, असंगत एवं छद्मवेशी है।

जिस मनुष्य को यह कहने और सोचने की प्रेरणा मिलती है कि ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है, इससे उसे निजी कोई लाभ नहीं हो सकता और न ही ईश्वर के पूर्ण कर्तापन एवं सर्वव्यापकता से कोई प्रयोजन ही रह जाता है। इसलिये यदि कोई व्यक्ति ऐसे मूर्खतापूर्ण कार्य करने पर उतारू हो जाता है या ईश्वर स्वयं मतिभ्रम में पड़ जाता है, तब वह व्यक्ति दूसरे को कभी भी नास्तिक नहीं कह सकता।

दूसरे को नास्तिक कहना, एक प्रकार से नास्तिकता का कार्य है और ईश्वर के

विषय में अपनी अज्ञानता को भ्रम में डालना है। नास्तिक शब्द की खोज विशुद्ध नास्तिक द्वारा की गई है। अगर ईश्वर की सत्ता है, तब उसके अभाव के विषय में कोई क्या विचार कर सकता है। इसलिए नास्तिक एवं नास्तिकता शब्दों का आविष्कार केवल उन व्यक्तियों ने किया है, जो ईश्वर के विषय में व्यापार अथवा लेन-देन की बात करते हैं, और ऐसे इन व्यापारियों के अतिरिक्त किसी दूसरे को इसकी चिन्ता भी क्या है।

ईश्वर की पूर्ण आवरण रहित अर्थात नग्नावस्था का परीक्षण ही ईश्वर की दार्शनिक पूजा है। क्या, क्यों, कहां कब और कैसे इत्यादि प्रश्नों का सीधा उत्तर प्राप्त करना ही किसी वस्तु की दार्शनिक परीक्षा कही जाती है। इस प्रकार के प्रश्न निष्पक्ष तथा निर्भयतापूर्वक पूछना चाहिए। दार्शनिक परीक्षण एवं कल्पना संबंधी तर्क एक साथ चलते हैं। इसलिए ईश्वर की सर्वव्यापकता, अनंत शक्ति, त्रिकालदर्शिता तथा अनंत रचना की परीक्षा एवं शोध करने वाले विद्यार्थी तथा विद्वान को उपर्युक्त केवल छः या सात प्रश्नों के ही उत्तर नहीं देने पड़ते बल्कि इसी प्रकार के पचासों प्रश्नों का समाधान करना पड़ता है। यह कथन ईश्वर के भक्त के विषय में भले ही लागू न हो, परन्तु एक दार्शनिक परीक्षक के लिये तो यह बड़ा ही महत्वशाली है। कोई भी व्यक्ति ईश्वर का अंध एवं मिथ्या विश्वास से अवलोकन करे परंतु एक विवेकी पुरुष विशेषतः दर्शन का परीक्षण कभी भी इस प्रकार अंध विश्वास-पूर्वक ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करेगा।

ईश्वर क्या है? इस प्रश्न का ज्ञान तथा समाधान दोनों एक दार्शनिक परीक्षक का होना चाहिए, ईश्वर क्यों है और किस प्रयोजन भूत वह अपनी सत्ता बनाये हुए है? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर एक विवेकी एवं तार्किक व्यक्ति दे सकता है, लेकिन पशुत्व की तरह वह अन्धविश्वासपूर्वक उपर्युक्त प्रश्नों का समाधान नहीं कर सकता। मनुष्य ने अपने विवेक को अनुचित एवं विपरीत उपयोगों में लगा लिया है, अतः अनेक कठिनाइयों के जाल में फंसकर उससे अपनी मुक्ति पाने के लिये उसने ईश्वर को जन्म दिया। राजा-प्रजा, अमीर-गरीब, ऊंच-नीच, श्रमिक-स्वामी, भिखारी-धनी आदि सांसारिक घटनाओं एवं भेद-भावों के क्रम का क्या औचित्य है? ईश्वर की उपयोगिता तथा उसके द्वारा कल्याण की भावना का क्या मूल्य रह जाता है? यह भेद-विन्यास केवल इस भेद-विभेद की भावना को और उग्र, पुष्ट एवं सुरक्षित करता है। क्या ईश्वर की सत्ता का यही प्रयोजन है? सांसारिक प्राणी रात-दिन घोर परिश्रम करता हुआ अंसतोष एवं निराशापूर्ण होकर मृत्यु को प्राप्त होता है। इसका एक मात्र कारण ईश्वर के प्रति अंध-विश्वास की भावना के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। अगर इसको मानवीय मूर्खता की संज्ञा दी जाती है तो इसको समझने के लिए किस अलौकिक विवेक एवं तर्क की आवश्यकता है? क्या यह असंगत नहीं है? मनुष्य अन्य भयंकर पशुओं से भिन्न है। फिर उसमें दुर्भावना, दुःख, हीनता, कमी, जातिगत

घृणा तथा अन्य कपटी एवं विकृत विचार उत्पन्न हो जाते हैं? क्या इनका कारण ईश्वर की सृष्टि रचना, ईश्वरीय खोज अथवा ईश्वर की अनंत शक्ति के ज्ञान में सन्निहित है? अगर विवेक तथा बुद्धिपूर्वक इन भेदों के कारणों का उत्तर नहीं दिया जा सकता तो ऐसे विवेक की क्या उपयोगिता रह जाती है और ईश्वर के अनंत गुणों में शंका उत्पन्न होने लगती है।

ईश्वर की क्या आवश्यकता है? यह विचार मनुष्य में क्या स्वतः आया है अथवा मानव के लिये किसी ने इसका आविष्कार किया है? अगर इस विचार का जन्म स्वतः ही हुआ है तब ऐसी अवस्था में इस प्रकार के प्रत्यक्ष भेद-भाव के भिन्न-भिन्न आकार प्रकारों, गुणों एवं योग्यताओं में क्यों पाये जाते हैं? ऐसा करने पर क्या सृष्टि की रचना का उद्देश्य प्राप्त हो जाता है? क्या इस प्रकार ईश्वर को जन्म देने वाले व्यक्ति अपने कार्य में सफलीभूत हुए? प्रत्यक्षदर्शी एवं ईश्वरीय निर्देश प्राप्त व्यक्ति ईश्वर के आदेश, गुण एवं इच्छा के प्रतिकूल फिर क्यों आचरण करता पाया जाता है। अगर यह कहा जाये कि संसार में जो कुछ होता है वह ईश्वर की इच्छा से ही होता है क्योंकि वह त्रिकालदर्शी, सर्वज्ञ, एवं सर्वव्यापक है, तब फिर मनुष्य क्या करता है? ईश्वर के नाम पर वह प्रत्येक कार्य करता है और यहां तक कि ईश्वर को घृणात्मक दृष्टि से देखता हुआ ईश्वर की इच्छा के प्रतिकूल आचरण करता रहता है। मानवता को चोट पहुंचाने वाली प्रक्रिया वह मनुष्य करता रहता है। संसार में जितने भी कार्य भगवान के भरोसे पर होते हैं, उनमें संतोष एवं पूर्णता नहीं होती परंतु मानव की सुरक्षा हेतु मानव जीवन में ईश्वर सहित संसार की प्रत्येक वस्तु अरक्षित है।

धर्म

अब धर्म के विषय में विचार कीजिये।

आजकल की व्याख्याओं के अनुसार समस्त धर्म या तो मनुष्य द्वारा निर्मित है अथवा बनावटी है। मनुष्य की बुद्धि-कुबिुद्ध, अच्छाई-बुराई तथा स्वार्थपरता एवं निःस्वार्थता में भेद विन्यास किया जा सकता है, परंतु दैवी, ईश्वरीय और अई श्वरीय शक्तियों में कोई पहचान नहीं की जा सकती। इसी प्रकार नैतिक शक्ति, अनुभूति तथा बुद्धि आदि में भी विभिन्नता नहीं होती। इसलिये दार्शनिक परीक्षण में यह एक विचारणीय विषय है कि कोई भी धर्म कितना ही विशाल रहा हो उसकी स्थापना उस महापुरुष द्वारा की गई जिसके हदय में जन-कल्याण की भावना थी। ईश्वरीय कृपा तथा उसके विशिष्ट गुणों की कोई अपेक्षा नहीं थी।

दार्शनिक परीक्षण एवं शोध का क्या अर्थ है? एक विद्वान व्यक्ति ने ''थिरू कुरल'' के पुनर्विचार के संबंध में टीका करते हुए कहा है कि ''सब असत्य असत्य है और असत्य रहित समस्त कार्य सत्य है'' इसी प्रकार जो सत्य नहीं हो सकते, वे असत्य हैं इसलिए उनका अन्तर्ध्यान एवं विनाश अवश्यम्भावी है। यथार्थता की

स्थापना एवं प्रकाशन बड़ी सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए, अन्यथा दार्शनिक परीक्षण की परिभाषा व्यर्थ हो जायगी। अगर ऐसा नहीं होता है, तो असत्य का पर्दाफाश करने का प्रयत्न निष्फल होकर दार्शनिक परीक्षण का कोई मूल्य नहीं रह जाता। अगर दर्शन असत्य का पोषण करता है, तो यह एक विवेकी पुरुष के लक्षण स्वरूप चिन्ह के लिये अपमानजनक है।

धर्म के विषय में सोचते समय यदि क्यों, क्या आदि प्रश्न उपस्थित हों, तो उनके उत्तर की रूप-रेखा इस कथन में होगी कि मनुष्य और परमात्मा के संबंध को जोड़ने के लिए तथा प्राणी द्वारा परमात्मा पद को प्राप्त करने के लिये ये सब सांसारिक क्रियाएं दिव्य सन्तों द्वारा प्रतिपादित की गई हैं। धर्म के विषय में भी यही बात अध्यक्ष महोदय ने अपने प्रारंभिक भाषण में कही है। क्या यह सब दार्शनिक परीक्षण के अनुरूप है? विशेषतः उस अवस्था में, जबकि ईश्वर के गुण की तुलना में, एक प्राणी के द्वारा मानव और परमात्मा के बीच के जोड़ने वाली श्रृंखला में शिथिलता आ जाती है। इस संबंध का क्या अर्थ है? कौन सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञ ईश्वर से संबंध स्थापित करने की क्षमता रखता है। इस कड़ी का क्या प्रयोजन है? यह किस प्रकार जोड़ी जा सकती है? पेड़-पौधे तथा कीड़े मकोड़ों का ईश्वर से कौन संबंध स्थापित कराता है? अगर ये ज्ञान विहीन पेड़ पौधे इत्यादि परमात्मा तक पहुंचने के लिए अपने जाति के जीवों की सहायता की अपेक्षा नहीं करते, तब मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो मानव और ईश्वर के संबंध को जोड़ने के लिये किसी दैविक शक्ति की आवश्यकता का अनुभव करता है? तब यह उपर्युक्त कथन दार्शनिक परीक्षण की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।

उपयुक्त कथनानुसार मनुष्य को दिव्य शक्तिवाला अथवा अवतार मानना न्यायसंगत नहीं है। वह मानव तो बुद्धि, उदारता एवं अन्य मानवीय गुणों से युक्त होता है। प्राणी के प्रेम एवं विलासिता के कारण उत्पन्न अनंत प्राणियों के मध्य ईश्वर का संबंध जोड़ने के लिये ईश्वरीय गुणों के साथ क्यों कुछ लोगों का जन्म होता है? इस दोहरी एवं गुणान क्रिया से क्या लाभ?

यह एक भिन्न बात है कि आप हमको यह स्वीकार करने को बाध्य करें कि सब कुछ ईश्वर की मर्जी से होता है। इसके विषय में न तो किसी को कुछ कहने की गुंजाइश है, और न ही किसी प्रकार के दार्शनिक परीक्षण की आवश्यकता रह जाती है। इस तथ्य को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। लेकिन जो विषय हमने चुना है, उसका कोई अपवाद नहीं और सत्य का दर्शन ईश्वर और धर्म के मौलिक सिद्धांत से प्रारंभ होता है। इसलिये ईश्वर और धर्म, दर्शन के परीक्षण की कोटि में आने से बच नहीं सकते।

अन्य दूसरी वस्तुएं जिनका अपना अस्तित्व है, दार्शनिक परीक्षण की अपेक्षा नहीं रखतीं। सुवर्ण, अग्नि, पीतल आदि धातुएं चक्षु इन्द्रिय द्वारा देखी जा सकती

हैं, स्पर्श इन्द्रिय द्वारा छूकर उनका अनुभव किया जा सकता है और रसना इन्द्रिय द्वारा स्वाद चखा जा सकता है। ये सब पदार्थ इन्द्रिय गोचर हैं और जब तक स्वीकार नहीं किये जाते तब तक इनका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होता। लेकिन ईश्वर और धर्म इनसे भिन्न है। विचार और दर्शन के द्वारा ही हमें इनका ज्ञान होता है और तब इनकी यथार्थता स्वीकार करनी पड़ती है। यदि इनके विषय में इस प्रकार मनन नहीं किया जायेगा, तो सत्य ईश्वर और सत्य धर्म का बोध नहीं हो सकता। वे सब असत्य धर्म और असत्य ईश्वर प्रमाणित होंगे। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार के धर्म और ईश्वर अंध-विश्वास को द्विगुणित करने के निमित्त कारण हैं। अतएव यह विचारणीय है कि मनुष्य और ईश्वर का सम्बन्ध धर्म द्वारा जुड़ता है अथवा मनुष्य द्वारा। हमारा यह पुनीत कर्तव्य है कि ऐसे मार्ग की खोज हम दार्शनिक परीक्षण द्वारा करें। सर्वप्रथम, अगर धर्म का अर्थ एवं प्रयोजन ईश्वर को समझने और उस तक पहुंचने का है, तब धर्मों एवं वैदिक अन्वेषणों की सीमा क्या नहीं बांधी जा सकती? भिन्न-भिन्न दिव्य शक्तियां द्वारा प्राप्त इन खोजों में क्यों विषमता होती है? उनके कारण कष्ट, क्लेश और उत्पीड़न क्यों होते हैं? अगर हम इसका मूल कारण धर्म का विशिष्ट गुण होना स्वीकार न कर, केवल यह स्वीकार करें कि यह सब मनुष्य की अज्ञानता का प्रतिफल है, और मनुष्य द्वारा ही निर्मित है, तब ये धर्म, जिनमें यथार्थ मनुष्य को समझने की क्षमता नहीं और जो घृणा, द्वेष तथा विभाजन के प्रयोजन भूत हैं, किस प्रकार मनुष्य को ईश्वर तक पहुंचाने में सहायक हो सकते हैं? यह भी विचारणीय है कि आज कल इस देश में अलगाव की प्रवृत्ति, एक दूसरे के प्रति घृणा के भाव, मानव भक्षी वृत्ति और धर्म के विरुद्ध आचरण होने की प्रवृत्ति आदि का कारण क्या धर्म नहीं है? पुनः आप इस बात पर एक क्षण विचार करें। ऐसे धर्मों में दिव्य विभूति वाले मनुष्य क्या धर्म संस्थापक के रूप में कभी पाये जाते हैं?

ऐसे दिव्य महापुरुषों की संख्या, जिन्होंने मौलिक धर्म के नेताओं का अनुकरण किया और जिन्हें पवित्रता एवं निर्मलता प्रदान की गई, गणनातीत है और वे अपने विषय में दर्शन के अर्थ की कोई अपेक्षा नहीं रखते। बुद्ध, सिद्ध, ईसा, नयनार्स, अज्हवर्स, ऋषि, महात्मा, सैवाब आदि अनेक महापुरुषों के मध्य ऐसे अनेक व्यक्तियों का आविर्भाव हुआ और उनकी यथार्थता ने अनेक विवादों एवं संघर्षों को जन्म दिया।

पक्षपात रहित एवं विवेकयुक्त प्रचार तथा अनुसंधान के युग में किसी भी स्मरणीय दिव्य अवतार का आविर्भाव होते नहीं देखा गया। उदाहरणार्थ गत शताब्दियों में अज्हवर तथा नयावर का कभी भी जन्म नहीं हुआ, और न किसी में यह कहानी गढ़ने की विशिष्टता है कि यह और वह व्यक्ति इस और उस चमत्कार को करके सीधे भगवान तक पहुंच गया है। इसका क्या कारण है? क्या इसका कारण यह हो

सकता है कि जगत को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता नहीं, या प्रत्येक व्यक्ति ने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है और उससे अपना सीधा सम्बन्ध स्थापित कर लिया है, या संसार सुधार की ओर अग्रसर है? अगर ये उपर्युक्त कारण नहीं है, तब और अन्य क्या कारण हो सकते हैं? वर्तमान परिस्थिति उनके आविर्भाव को कभी भी स्वीकार नहीं कर सकती-भले ही इधर-उधर की कुछ घटनाएं हो जायें, परन्तु उनका अपने जीवनकाल में ही अन्त हो जाता है। यदि ईश्वर और धर्म में दर्शन की ओर आकृष्ट होने की प्रवृत्ति है तो ऐसी अवस्था में स्पष्ट अर्थ एवं टीका का ज्ञान असंभव हो जाता है।

ईश्वर और धर्म के विषय में मेरी दार्शनिक टीका, जो दूसरों के दृष्टिकोण से मेल नहीं खाती, बहुत से लोगों को अचरज में डाल देती है। ये बातें आश्चर्ययुक्त एवं परस्पर विरुद्ध होते हुए भी साधारण बोल-चाल में इन पर विचार, विवाद एवं विश्वास करके इन्हें क्यों आवश्यक, सत्यपूर्ण एवं प्रमुख माना गया है। यह स्थिति अन्य विशिष्ट जनों के लिये क्यों आती है? शक्तिशाली प्रचार की सहायता प्राप्त जिम्मेदार व्यक्ति क्यों विभिन्न विशिष्ट गुण और व्यग्र विचारों से जनता के कानों में एक कोलाहल उत्पन्न कर देते हैं? क्या यह आवश्यक है? इससे किस उद्देश्य की प्राप्ति होती है? इस प्रकार के ये तथा अन्य प्रश्नों के उठने की संभावना हो सकती है।

इसके अतिरिक्त यह एक बड़ी गंभीर समस्या है कि ईसा और पैगम्बर जैसे महान अस्वार्थी धार्मिक नेतागण, जिन्होंने अनेक कष्ट तथा कठिन परीक्षाओं का सामना किया, उन्होंने इन उपर्युक्त बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसलिये सर्वप्रथम हमें इस बात पर विचार करना चाहिए। साथियों ईश्वर कितना ही सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक एवं त्रिकालदर्शी हो, वह मनुष्य के दर्शन एवं ज्ञान के परे है। दूसरों के द्वारा उसे ईश्वर के दर्शन कराये जा सकते हैं। इसी भांति धर्म भी, जिसका स्वतः आविर्भाव नहीं हुआ, और दूसरों द्वारा जिसकी केवल कल्पना की गई है, इसके सिद्धांत एवं मत के अनुकरण और पालन करने का आदेश तथा प्रेरणा दूसरे लोगों द्वारा प्रदान करता है। इन बातों से कम से कम यह सार निकलता है कि धर्म और ईश्वर व्यग्रता तथा परस्पर विरुद्ध होने पर भी दर्शन, ज्ञान और चरित्र के शिक्षण के लिये दूसरे लोगों की अपेक्षा रखता है, और पर्याप्त प्रकाशन तथा संरक्षण अभीष्ट है। क्या हम इन विशिष्ट पुरुषों के कार्यों का तिरस्कार कर सकते हैं? क्या ईसा, मोहम्मद पैगम्बर आदि अवतारों के कार्यों एवं प्रयत्नों के विषय में यह धारणा बना सकते हैं कि उनके सब प्रयत्न एवं कार्य लोक कल्याण की भावना से युक्त थे अथवा निजी लाभ के लिये, जिससे जन साधारण अंधविश्वास के विचारों में अपने को भुला दें? उपर्युक्त सब प्रश्न माननीय हैं। अंधविश्वासी तथा स्वार्थी लोगों को दूर हटाते हुए हम उन वास्तविक विद्वान, एवं जन-सेवी पुरुषों की ओर दृष्टि डालें और विचारें जिन्होंने मानव समाज को ईश्वर और धर्म का परिचय दिया है। ऐसा विचार करते हुए हमें

इनके कारणों पर भी प्रकाश डालना है।

ईश्वर और धर्म की खोज मानव को छोड़कर और किसी प्राणी के लिये संसार में नहीं की गयी और न ही इसका प्रचार हुआ। इस तथ्य से कि ईश्वर और धर्म की स्थापना केवल मानव के लिये ही हुई है, जिसमें विवेक एवं ज्ञान है, यह सार निकलता है कि ईश्वर और धर्म मानव जाति के कल्याणार्थ एक निमित्त है। मनुष्य स्वभावतः सह अस्तित्व का प्राणी है। साधारणतया, जब यह स्वाभाविक है कि प्राणी अपनी चेतना शक्ति, ज्ञान, अनुभव तथा आदतों को अपने लाभार्थ और संतोष के लिये उपयोग में आता है, तब यह प्रकृति के नियमों के विरुद्ध हो जाता है कि वह इन उपर्युक्त बातों का उपयोग अपनी सीमा का अतिक्रमण कर दूसरों के हित में करें।

मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक समझ रखता है। जब वह देख लेता है कि उसकी व्यापक स्वार्थ तत्परता समस्त समाज को विनाश की ओर ले जा रही है, वह शीघ्र ही ईश्वर और धर्म की सहायता की अपेक्षा करने लगता है।

जंगल में विचरण करने वाले व्यक्ति को धर्म और ईश्वर से कोई संबंध नहीं और न ही वह इनकी कोई आवश्यकता समझता है, क्योंकि प्रकृति के साथ रह कर वह प्रकृति की घटनाओं एवं नियमों से आबद्ध हो जाता है - उसके अनुसार आचरण, विचरण तथा समस्त दैनिक क्रियाएं करने लगता है। प्रकृति ही उसकी एक मात्र धर्म और ईश्वर बन जाती है, लेकिन नगर का निवासी एक सामाजिक प्राणी हो जाता है, उसके प्रत्येक कार्य समाज से आबद्ध हो जाते हैं, समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उसे काम करना पड़ता है, और कभी-कभी समाज के समाजीकरण ढांचे को कायम रखने के लिये प्रकृति के विरुद्ध उसे युद्ध करना पड़ता है। अन्यथा यहां भी जंगल का कानून लागू हो जाने की आशंका उत्पन्न हो सकती है।

इसलिए नगर के निवासी, लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ईश्वर और धर्म का प्रचार एवं प्रसार बड़ी तेजी से करते हैं, जिससे जनता सुखमय जीवन व्यतीत कर सके।

राजा, सरकार, कानून तथा दण्ड विधान आदि की क्यों रचना हुई और मानव के लिये क्यों इनकी आवश्यकता हुई? इस प्रश्नों का पूर्ण एवं पूर्ण अध्ययन कर लेने पर उपर्युक्त कथन का स्पष्टीकरण हो जाता है।

आधुनिक संसार में सह अस्तित्व की भावना से प्रेरित क्या कोई मनुष्य सुख, शांति और सुरक्षापूर्ण जीवन बिता सकता है क्या? ऐसा तब ही संभव है, जब मनुष्य सरकार, विधान एवं दण्ड विधान के नियमों का यथेष्ट पालन करे। यद्यपि ये चीजें मनुष्य के सह अस्तित्व को कायम रखने के लिये पर्याप्त हैं, परन्तु फिर भी किसी सीमा तक ही पर्याप्त हैं। सरकार एवं कानून द्वारा किसी व्यक्ति को दूसरों की भलाई करने अथवा बुराई न करने पर विवश करना असंभव है। कुछ कार्य ऐसे हैं, जिनकी

पूर्णता एवं उपलब्धि केवल मात्र सरकार और कानून द्वारा नहीं हो पाती। उदाहरणार्थ पारस्परिक प्रेम, सहयोग, सद्भावना, एकता, विश्वास, ईमानदारी, सच्चाई, चरित्र अर्थात सदाचार आदि जो वर्तमान समाज के अंग हैं और प्रामाणिक सिद्धांत के रूप में न रहे आदि बातों की उपलब्धि सरकार और कानून के जोर से नहीं हो सकती। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मानव स्वभाव को यदि स्वाधीनतापूर्वक मार्ग पर चलने दिया जाय, तो उसे बुराई की ओर न जाने के लिये कोई रोक नहीं सकता। इसलिए अच्छे मार्ग पर चलाने को मनुष्य के लिये कुछ बंधन एवं नियमों का पालन करना आवश्यक हो जाता है और जब सरकार और कानून ऐसे बंधन भय तथा नियम प्रदान नहीं कर सकते, एक भय की भावना मनुष्य में प्रवेश करती है और ऐसी स्थिति में धर्म और ईश्वर पर श्रद्धा करना उसके लिये परमावश्यक हो जाता है। उपरोक्त कथन को दार्शनिक भाषा में यों कहा जा सकता है कि धर्म और ईश्वर को मान्यता केवल किसी एक विशेष बताये हुए मार्ग का अनुसरण करने से होती है अन्यथा अवज्ञा करने पर उसे दण्ड का भागी होना पड़ता है।

स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्त करने की भावना से वह धर्म और ईश्वर पर विश्वास करता है। विषय-सुख की लालसा तथा भय की उत्पत्ति कानून द्वारा नहीं होती, वह तो ईश्वर और धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धा की देन है। इसलिए मनुष्य के लिये ईश्वर और धर्म का बड़ा महत्व है।

मैं आपके सामने एक बहुत महत्व का प्रश्न प्रस्तुत कर रहा हूं। आज के वैज्ञानिक युग में ईश्वर और धर्म का क्यों इतना प्रचार एवं प्रसार है? संक्षेप में यों कहा जा सकता है कि आज कल की स्थिति अतिरिक्त प्रचार की मांग करती है। मनुष्य के अनेक वर्ग इस बात का प्रचार करते घूमते हैं कि व्यक्ति पूजा, मनुष्य में पारस्पिरिक भेद-विनाश की भावना अस्वाभाविक एवं अवांछनीय है। इसके स्थान पर समानता तथा समाजवाद की आवश्यकता है। निर्धन एवं निम्न श्रेणी की जातियां इन उपदेशों का मनन एवं पालन अधिकांशतः करती है। इस स्थिति पर शासक, कानून तथा दण्ड विधान अपना कोई नियंत्रण नहीं कर पाते। क्योंकि ये कानून समाज के उच्च कोटि के व्यक्तियों द्वारा निम्न कोटि के व्यक्तियों को उनकी अवज्ञा पर दण्डित करने के हेतु बनाये गये हैं। इसलिए यदि अमीर और गरीब का प्रश्न उपस्थित हो जाता है, तब शासक की स्थिति सुरक्षित नहीं रहती, कानून लागू नहीं किया जा सकता और दण्ड नहीं दिया जा सकता। ऐसी विषम परिस्थिति उत्पन्न होने पर शासक, कानून और दण्ड विधान की आवश्यकता का विवेक मनुष्य में नहीं रह पाता और अन्ततोगत्वा उसे धर्म और ईश्वर का ही सहारा लेना पड़ता है।

उदाहरणार्थ, अगर ईश्वर की सत्ता का अभाव होता है तो पृथ्वी पर न कोई धनी होता, न गरीब। इसी प्रकार धर्म के अभाव में ऊंच-नीच तथा साधारण एवं दिव्यात्माओं का भेदभाव न होता। इसलिए धर्म और ईश्वर की अमीर, गरीब, ऊंच,

नीच, साधारण एवं विशिष्ट व्यक्तियों की रक्षा करने के लिए पर्याप्त नहीं है, बल्कि राज, न्याय प्रणाली एवं दण्ड विधान की प्रक्रिया भी आवश्यक है। जहां जनता ईश्वर और धर्म पर विश्वास करने के लिए अपने को एक सूत्र में बांध लेती है, वहां शासक असफल हो जाता है और जनता न्याय विधान के स्थान पर ईश्वर और धर्म को आवश्यकतानुसार उपयोग में लाने लगती है।

स्पष्ट रूप से यह कहना चाहिए कि जहां कहीं भी हम प्रकृति के विपरीत नियमों पर चलने की आवश्यकता प्रतीत करते हैं, वहां धर्म और ईश्वर को ला खड़ा कर देते हैं और इसीलिए हमारे बुजुर्गों ने, जिन्होंने पहले से ही यह अपनी धारणा बना ली थी कि मनुष्य को प्रकृति के विपरीत अपना जीवन यापन करना है, अपने तथा अपने सगे संबंधियों के लाभ के लिए धर्म और ईश्वर नाम की वस्तुओं का प्रचार किया।

अगर संसार से अमीरी, शासकीय सत्ता तथा ऊंच-नीच का व्यवहार मिट जाय, तो धर्म और ईश्वर की सत्ता आंखों से ओझल होकर नष्ट हो जायेगी। इसलिए मैं केवल यह कह सकता हं कि धर्म और ईश्वर का क्षेत्र तथा विषय दार्शनिक परीक्षण में उपरोक्त कथन के अनुसार हो सकता है चाहे वह किसी भी रूढ़िवादी नीति के आधार पर उपस्थिति किया जाये।

मानव-रचना

ईश्वर और धर्म के विषय में मैंने संक्षिप्त चर्चा की है। उनमें पाई जाने वाली अड़चनों एवं विभिन्न विचार-धाराओं पर भी प्रकाश डाला गया है। किस प्रकार मनुष्यों के हदय में उनकी मान्यता एवं आदर है, किस प्रकार उनके विषय में प्रचार होता है और उनके सिद्धांतों एवं आदेशों का पालन किस ढंग से यह मानव करता है इत्यादि तथ्यों पर पूर्ण विवेचन हुआ है। अब हमें ईश्वर और धर्म से संबंधित उस वस्तु के विषय में जिसको मानव कहते हैं, यथेष्ट जानकारी प्राप्त कर लेना परमावश्यक है, क्योंकि मनुष्य के लिए ही ईश्वर और धर्म का उदय हुआ है।

साथियो! जब हम गंभीरतापूर्वक यह सोचते हैं कि हमारे पूर्वजों ने ईश्वर और धर्म की क्यों खोज की और मानव समाज के लिए उनका क्या उपयोग तथा महत्व है, तब यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आने लगती है कि केवल मनुष्य ही ईश्वर और धर्म के विषय में समझने की क्षमता रखता है और मानवीय कार्यों के संपादन एवं प्रतिपादन हेतु उनकी सत्ता का होना आवश्यक समझा गया है। इसलिए जितना हमने उस अदृश्य ईश्वर और धर्म के विषय में तथा उनसे होने वाले मानव के लाभों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया है, उतनी ही जानकारी हमको मनुष्य की रचना एवं उसकी आत्मा के विषय में भी हो जाना जरूरी है।

तर्क एवं न्याय शास्त्र के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अन्य पदार्थों के

विवेचन की भांति मनुष्य और आत्मा का दार्शनिक विवेचन भी सरल है।

उपयोगी, क्रियाशील तथा रचना योग्य विश्व में जीव और निर्जीव पदार्थों के संयोग से किसी एक द्रव्य की रचना होती है। बाहरी रूप, आकार तथा इनकी यौगिक क्रियाओं के आधार पर ही इन द्रव्यों के भिन्न-भिन्न नाम हैं। जिस प्रकार द्रव्य के एक पिंड में विभिन्न अणुओं का समुदाय पाया जाता और इसी आधार पर उनके आकार तथा रूप में विभिन्नता पाई जाती है और विभिन्न नामों से पुकारे जाते हैं, उसी प्रकार जीव और अजीव पदार्थों के मिश्रण अथवा यौगिक में भी नाना आकार-प्रकार के अंश होते हैं। एक समान आकार वाले पदार्थों का विश्लेषण करने के पश्चात उसके इन आश्रित अंशों के भिन्न-भिन्न नाम पाये जाते हैं और पुनः बार-बार इन अंशों को और भी विखंडित करने पर उसके नाम, आकार-प्रकार तथा गुणों में विभिन्नता आती जाती है और इस प्रक्रिया को बार-बार दोहराने पर अंतिम परिणाम इन्द्रिय अगोचर हो जाता है और एक महान गड़बड़ी, उलझन तथा रुकावट मच जाती है। मनुष्य भी एक ऐसा ही कुछ तत्वों का पिंड है, जिसका न्याय एवं तर्कपूर्ण अध्ययन करना उचित है।

मनुष्य के शरीर का ढांचा भी भिन्न-भिन्न तत्वों के मेल से बना है। उसके शरीर में भिन्न-भिन्न अंगों के भाग हैं, जिनके नाम भी भिन्न-भिन्न हैं। हाथ, पैर, सिर आदि के स्पर्श से हम शरीर के अंगों का ज्ञान प्राप्त कर, उनके नामों से परिचित हो जाते हैं। परंतु एक अंग को छूने पर हमें उसके उपांगों का भी बोध होने लगता है और उनके भिन्न-भिन्न नाम भी समझ में आने लगते हैं। जैसे सिर को छूने पर सिर का आभास होता है लेकिन साथ ही उसके बालों तथा त्वचा का भी ज्ञान होने लगता है और उनकी भिन्न-भिन्न नामावली स्पष्ट रूप से समझने में आ जाती है। ऐसी ही स्थिति घर के तथा बाहरी अन्य पदार्थ मेज, कुर्सी, बेंच, चारपाई, दुकान, गाड़ी आदि की है जिनके आकार तथा प्रकार में उनके संयोग तथा कला के अनुपात के अनुसार विभिन्नता हो जाती है। इसी प्रकार समस्त जीवधारी प्राणी विशेषतः मनुष्य भी कुछ ऐसे ही मौलिक तत्वों का एक मिश्रण है। यहां तक गाय, सुअर, गधा, रेंगनेवाले प्राणी, चिड़ियां आदि भी भिन्न-भिन्न तत्वों के मिश्रण से बनी हैं। अन्य जीवित प्राणियों की तुलना में मनुष्य को सर्वोपरि समझकर सम्मानित करने में दार्शनिक परीक्षण का कोई आधार नहीं है, क्योंकि वह बोलने की शक्ति से सम्पन्न है और इसी शक्ति द्वारा उसने अपनी स्थिति की उन्नति की है। अन्य नभचर पक्षियों की उड़ान से भी ऊंची उड़ान भरकर ही एक चिड़िया अपना सर्वोपरि स्थान बना लेती है, इसी प्रकार मनुष्य अपनी वाणी की अभिव्यक्ति की शक्ति का प्रदर्शन किये बिना किस प्रकार अन्य प्राणियों की तुलना में अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त करने का दवा कर सकता है? वाणी में विशिष्टता होने के अतिरिक्त मनुष्य और कोई अन्य गुप्त तथा एकरूपता प्राप्त करने का दावा नहीं रखता है। सावधानीपूर्वक विश्लेषण करते

हुए हम इस प्रश्न पर पहुंचते हैं कि अन्य प्राणियों की तुलना में मनुष्य क्या वास्तव में अपनी वाणी, विचार तथा कार्य में अधिक विशिष्टता प्राप्त कर अपना विशेष स्थान बना लेता है? अनुभव यह बताता है कि वाणी, विचार तथा कार्य ही मनुष्य के ऐसे साधन एवं साध्य हैं, जिनके कारण उसकी स्थिति अन्य प्राणियों की तुलना में हीन ही दृष्टिगोचर होती है और इसके विरुद्ध कोई दूसरा विकल्प नहीं है और न ही एक भी प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि दूसरे प्राणियों की तुलना में मनुष्य में विवेक तथा निर्णय करने की शक्ति अधिक है। इसके अतिरिक्त यह भी मानना पड़ेगा कि दूसरे प्राणियों में कुछ विशिष्ट गुण पाये जाते हैं, जो मानव जाति में नहीं पाये जाते। अतः मनुष्य और अन्य जीवधारियों से संबंधित उनके उपयोग का परीक्षण करना अवश्यम्भावी है।

सर्वप्रथम मनुष्य में दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक विवेक एवं कल्पनापूर्ण आंतरिक शक्ति होने के कारण सदाचार का अनुसरण एवं पालन हेतु उसे ईश्वर और धर्म की आवश्यकता होती है। ईश्वर और धर्म के अभाव में मनुष्य द्वारा किया हुआ प्रत्येक अनुचित कार्य उसकी बुराई का सूचक होता है।

द्वेष और ईर्ष्यापूर्ण विचारों से उत्तेजित मनुष्य का व्यावहारिक ज्ञान उसे व्याकुल, दुःखदायी, लालची तथा स्पधार्युक्त बना देता है। मनुष्य के तर्क एवं विवेक ने उसे अपने मानव साथी के प्रति घृणा, अपमान, शोषण आदि निम्न कोटि के भाव रखने के लिए विवश कर दिया है।

क्या यह कहा जा सकता है कि मनुष्य में वे कोई भी बुराइयां नहीं होतीं, जो एक अविवेकी तथा निबुद्धि वाले प्राणी में परम्परा से रहती है? क्या इस बात से कोई इंकार कर सकता है कि बुद्धि एवं विवेकपूर्ण मनुष्य में दूसरों को चिढ़ाने, धोखा देने और कष्ट देने की भावना नहीं होती?

एक क्षण विचार कीजिये कि कलात्मक प्रवीणता, पद्य रचना की निपुणता, सुवर्ण बनाने की क्षमता, मृत पुरुष को पुनर्जीवित करने की योग्यता, एक दिन में लंदन की यात्रा करने की सामर्थ्य तथा देश की 40 करोड़ जनता की तुलना में अधिक विशिष्ट मानता है और क्या वह महान हो सकता है यदि वह स्थायी रूप से काल की गति अपने वश में कर मृत्यु को टाल सके? मानव में अन्य प्राणियों की भांति अपने विशेष लक्षण होते हैं, इसलिए मैं यह कह सकता हूं कि मानव दूसरे प्राणियों के ऊपर अपनी विशिष्टता का दावा नहीं कर सकता।

जहां तक चरित्र, विचार तथा आचार का संबंध है, समस्त प्राणियों के स्वभाव तथा प्रकृति में केवल जन्म, मरण और अंत को छोड़कर कोई भी दार्शनिक भेद नहीं होता-लेकिन फिर भी समाज में मनुष्य की पृथक गणना है। भलाई-बुराई, तामसी प्रकृति, शौच, सत्य, न्याय-प्रियता, उदारता, कठोरता, दुष्टता आदि गुण अवगुण

पृथक-पृथक अथवा समूह रूप से सामान्य जनता में कम और अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इस विभिन्नता का क्या कारण है? क्या इन सबका उत्तरदायित्व मनुष्य पर है, अथवा मानव के ढांचे की रचना और व्यक्तिगत प्रारम्भिक शिक्षा के कारण यह विभिन्नता पाई जाती है?

एक कुत्ते में अपने स्वामी के प्रति वफादार होने का गुण पाया जाता है। स्वामी के प्रति महान कृतज्ञ होता हुआ उसके घर तथा धन की रक्षा करता है। लेकिन कुत्ते के आकार की भांति दिखने वाले भेड़िये, लोमड़ी आदि वनचरों में क्यों नहीं कुत्ते जैसी भावनाएं पाई जातीं-अपितु उसके विपरीत चरित्र उनमें होते हैं।

कुत्ते का ही उदाहरण ले लीजिये। क्यों एक कुत्ता काटने के लिए दौड़ता है, दूसरा केवल भौंककर चुप हो जाता है और तीसरा कुछ नहीं करता। कृपया विचार कीजिये, ये तीन प्रकार के पृथक-पृथक कुत्ते अपने गुणों के प्रति उत्तरदायित्व रखते हैं या शारीरिक रचना अथवा जन्मजात स्वभाव के कारण इनमें यह विभिन्नता पाई जाती है? एक गाय आदमियों को मारने दौड़ती है, दूसरी कुछ नहीं करती, चाहे जितना उसे पीटा जाय। एक हाथी पागल अथवा उत्मत्त होकर अपने महावत तक को मार डालता है तथा दूसरा अंकुश द्वारा मारे-पीटे जाने पर भी क्रोधित तथा उत्तेजित नहीं होता।

कृपया सोचिये कि ये विभिन्नताएं क्या उनकी अपनी जिम्मेदारी अथवा जन्मजात स्वभाव अथवा उनकी भिन्न-भिन्न शारीरिक रचना की गठन के कारण है?

इसी प्रकार मनुष्य को शारीरिक रचना अथवा प्राकृतिक स्वभाव का अध्ययन करना चाहिए और समझना चाहिए कि 90 प्रतिशत व्यक्ति डाकू, लुटेरे, झूठे, दिखावटी, ईर्ष्यालु, कृतघ्नी आदि क्या स्वभाव से पैदा होते हैं अथवा उनकी अपनी शारीरिक रचना के कारण?

यद्यपि धौंकनी अथवा बांसुरी में एक ही पाइप होता है और उसका उपयोग एक ही व्यक्ति एक ही छिद्र द्वारा करता है, लेकिन उसमें भिन्न-भिन्न स्वर निकलते हैं। यह सब क्यों? इसका क्या कारण है?

जिस प्रकार बॉसुरी में अनेक छिद्र बना दिये जाते हैं और छिद्रों की संख्या के अनुसार उसमें भिन्न-भिन्न स्वर निकलते लगते हैं, उसी भांति मनुष्य के गुण और चरित्र में मस्तिष्क एवं धमनियों की विभिन्न रचनाओं के कारण विभिन्नता आ जाती है। इससे यह परिणाम निकलता है कि मनुष्य के गुणों की विविधता का मूल कारण उसमें पाई जाने वाली शारीरिक रचना है न कि कोई अन्य व्यक्तिगत दोष। एक विवेकी पुरुष जिसको मानव शरीर की रचना का ज्ञान नहीं है और जो अपने को ठीक ढंग पर स्थिर नहीं कर सकता, भिन्न-भिन्न पुरुषों में विभिन्न गुणों का प्रतिस्थापन कर दूसरों के सिर दोष मढ़ता है और इस प्रकार अपना प्रेम तथा निराशा का हिस्सा बांट कर दुःख और निराशा का जीवन व्यतीत करता है। मनुष्य को प्रकृति और

स्वभाव के अनुरूप अपनी गति-विधियों को परिणत करने का कभी भी अवसर प्राप्त नहीं होता है।

जिस प्रकार आंख का कार्य देखना है और कान का कार्य सुनना है, उसी प्रकार बुद्धि, क्षमता, चतुरता, खोज की लगन, रहस्य, कौतुक, क्रोध, हास्य, मित्रता आदि सब विभिन्न क्रियाएं शारीरिक रचना की विभिन्नता के संयोग से होती रहती हैं।

मैंने उपर्युक्त कथन का विस्तारपूर्वक वर्णन इसलिए किया है कि आप लोगों की समझ में यह भलीभांति आ जाय कि मनुष्य का इन कार्यों के लिए स्वयं कोई उत्तरदायित्व नहीं है। शारीरिक रचना के क्रम में विभिन्नता होने के कारण कुत्ता प्रायः स्वामिभक्त होता है, बिल्ली चालाक होती है, गिद्ध की पैनी दृष्टि होती है, और उल्लू को अंधकार में दिखाई पड़ता है। इस कारण ईश्वर, धर्म, शास्त्र तथा कानून द्वारा किसी चोर को दंड देना अनुचित है।

क्या ईश्वर कीड़े-मकोड़ों का शिकार करने वाले मुर्गियों के बच्चों को अथवा मुर्गियों के बच्चों को उठा ले जाने वाले गिद्ध को दण्ड दे सकता है? अगर वह दण्ड दे सकता है, तो दीमक और कीचड़ को जो लकड़ी और लोहा खा जाते हैं, दण्ड देने की क्षमता रखता है।

अतः मनुष्य की रचना का विषय यही छोड़कर अब मैं आत्मा के विषय में कुछ शब्द कहना चाहूंगा -

आत्मा

धर्म और ईश्वर के आविर्भाव का कारण तथा प्रयोजन और मनुष्य के शरीर की रचना के विषय में मैंने आप लोगों के सन्मुख प्रकाश डाला है। अब मैं आत्मा के विषय में कुछ चर्चा करता हूं।

साथियो! मनुष्य की रचना के विषय में उपर्युक्त चर्चा करते हुए, आत्मा के विषय में कुछ भी नहीं बताया गया। यह उपर्युक्त चर्चा क्रियात्मक होने के अतिरिक्त समझ में आने वाली है, यह आप देख चुके हैं।

लेकिन आत्मा के विषय में चर्चा करते समय हमको क्रियात्मक अनुभव एवं ज्ञान के नियमों का उल्लंघन करना पड़ेगा- अनुभव और ज्ञान को दूर हटाते हुए कुछ स्वीकृत सिद्धांतों पर विवेचन करना होगा। उपर्युक्त कथन द्वारा बताया जा चुका है कि ईश्वर कोई द्रव्य अथवा ऐसा पदार्थ नहीं है जिसके आंख, नाक, कान, मुख, शरीर तथा अन्य कोई अवयव हो। वह तो परिणाम मात्र है, अदृश्य एवं अगोचर है तथा मस्तिष्क के संकुचन के बाहर है। इसी प्रकार आत्मा भी कोई वस्तु, पदार्थ या परिणाम नहीं, वह भी अदृश्य, अगोचर एवं गुप्त है, जिसके विषय में न तो कुछ सोचा जा सकता है और न किसी अचानक एवं अप्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा इसके अस्तित्व को ही स्वीकार किया जा सकता है। न्याय और तर्क के आधार पर गंभीरतापूर्वक

मनन करने के पश्चात इसके अस्तित्व पर विश्वास करना असंभव प्रतीत होता है।

इसलिए आत्मा के अस्तित्व की स्वीकृति का बंधन उन व्यक्तियों के लिए है जो ईश्वर और धर्म की सत्ता बंधनरहित स्वीकार करते हैं। दार्शनिक परीक्षण करने वाले को इन बंधनों की कोई अपेक्षा नहीं होती। आंख, नाक, कान, मुख तथा शरीर आदि पांच इन्द्रियों के क्या कार्य है, इस प्रश्न के उत्तर के आधार पर ही हम आत्मा के अस्तित्व का दार्शनिक परीक्षण करेंगे। जब संसार की समस्त वस्तुओं में केवल ईश्वर की ही सत्ता सर्वोपरि मानी गई है, तब अन्य किसी के विषय में इसी प्रकार की चर्चा करना सत्य पर आवरण डालना है। ऐसे सत्य शब्द का समावेश 'एनसाइक्लोपीडिआ' में होने का कोई औचित्य नहीं।

'आत्मा' शब्द तमिल भाषा का नहीं है। इससे यह ज्ञात होता है कि तमिल तथा द्रविड़ लोग आत्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। संस्कृत भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में 'आत्मा' शब्द का उल्लेख नहीं है। यद्यपि आंग्ल भाषा में आत्मा शब्द को ही 'सोल' कहा गया है, परंतु संस्कृत के विद्वानों द्वारा आत्मा की कथित व्याख्या एवं अर्थ आंग्ल भाषाविज्ञ पुरुषों द्वारा दी गई व्याख्या से भिन्न है।

मन और विचार शक्ति के बाद मानव जीवन में आत्मा की सत्ता का महत्व है- इसकी अपनी कोई पृथक सत्ता नहीं है। मनुष्य रचना में आत्मा का कोई स्थान व कार्य न निर्धारित है और न इसकी कोई कल्पना ही की जा सकती है। जब शरीर के प्रत्येक अंगोपांग का अपना कार्य व स्वभाव जुदा-जुदा है, तब आत्मा का अपना कौन सा कार्य है? मन सोचता है और शरीर के अवयव उपभोग करते और आनन्द लेते हैं। इनमें आत्मा का क्या और कहां स्थान है?

शरीर में अवयवों की क्रिया का कारण शरीर के गठन के स्वभाव के अतिरिक्त और कोई नहीं है। मशीन की कार्यशीलता उसकी बनावट तथा ढांचे पर निर्भर रहती है। एक घड़ी समय बताती है, मनुष्य को जगाती है और अन्य वांछनीय कार्य करती है। इसकी इस विशेषता का एक मात्र कारण घड़ी की बनावट तथा उसका ढांचा ही है। क्या यह विश्वास करने योग्य बात है कि घड़ी में कोई गुप्त तत्व उसको क्रियाशील बनाता है? पचास वर्ष पूर्व एक अज्ञानी ग्रामीण हमारे खाद्य भण्डार में आया और उसने दीवाल पर लगी घड़ी का लंगर इधर-उधर हिलते हुए देखा और जब उसने अन्तराल में बजने वाले घंटों की ध्वनि सुनी, उसने पूछा कि वह आदमी घड़ी में कहां है जो घंटे बजाता और घड़ी को चलाता है। मैंने उत्तर दिया कि वह मनुष्य दीवाल के पीछे है। वह देहाती बहुत चकित हुआ और मेरी प्रशंसा करने लगा कि इस छोटे से काम को करने के लिए एक नौकर लगा हुआ है।

इस भांति अज्ञानी ग्रामीण जनता के मन में आत्मा की सत्ता का विश्वास स्थापित किया जाता है। इस विश्वास की कोई विवेकपूर्ण नींव नहीं है। मशीन मनुष्य की अपेक्षा अधिक दुर्बोध एवं गहन है। वह अपनी बनावट और रख-रखाव के अतिरिक्त

अपना काम सुचारू रूप से करती है। इसका क्या कारण है?

इस्लाम, क्रिश्चियन तथा बौद्ध धर्म में आत्मा का अस्तित्व, उसकी पूजा अथवा उसके प्रभाव का कोई उल्लेख नहीं है। फिर किस प्रकार अकेले हिन्दुओं के लिये ही इस आत्मा का आगमन है? आत्मा की कल्पना करना क्या न्यायसंगत है? क्या उसमें कोई व्याख्या योग्य पदार्थ है? किसी विशेष धार्मिक दर्शन के हेतु आत्मा शब्द उपयुक्त है। आत्मा की सत्ता के अभाव में हिन्दू धर्म का अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

मैं यह कह सकता हूं कि आत्मा, मिथ्या कल्पना एवं काल्पनिक धर्म की रक्षा करती है। जिस प्रकार एक असत्य के बदले अनेक असत्यों का सहारा लेना पड़ता है, उसी प्रकार मिथ्या दर्शन अथवा हिन्दुत्व को कायम रखने के लिये मिथ्यात्व, आत्मा, स्वर्ग, नर्क, पुनर्जन्म, भाग्य आदि मिथ्या कल्पनाओं का अवलंबन लेना पड़ता है।

अपने शरीर के गठन के अनुसार मनुष्य का जन्म, पालन पोषण और कार्य क्षमता तथा मृत्यु होती है। मृत्यु के उपरान्त उसका शरीर नष्ट हो जाता है। यह मनुष्य के प्रत्यक्ष दर्शन का परिणाम है। अनुमान, मिथ्या, कथा कल्पना, उग्रता और अंध-विश्वास के अतिरिक्त आत्मा की दार्शनिक टीका और हो ही क्या सकती है?

आत्मज्ञानी द्वारा जब आत्मा के कार्य की समीक्षा की जाती है, तब यह कहा जाता है कि वह किसी देव-तुल्य नहीं और न उसका कोई स्वरूप ही है। वह अदृश्य, अगोचर-नित्य एवं अगुरुल घुत्वादि गुणों से युक्त है और परमाणु से भी अधिक सूक्ष्माति सूक्ष्म है। यह कहा जाता है कि अत्यंत सूक्ष्म और अदृश्य है। इसका एक मात्र कार्य अपने से अधिक विशाल शरीर और उसके साथी अवयवों द्वारा किये हुए परिश्रम का फल भोगना है। इसकी तुलना का स्पष्टीकरण एक निरपराध व्यक्ति को दण्डित किये जाने वाले कार्य से किया जा सकता है, जबकि दण्डित व्यक्ति की उस स्थान पर कोई उपस्थिति नहीं। घड़ी के द्वारा गलत समय बताने पर यदि कोई उत्सव छूट जाता है, इसका दोष घड़ी के निर्माता, तथा उसको संभालकर रखने वाले और गलत समय पर अवलंबित होने की आदत बनाने वाले पर ही होना चाहिए। उपर्युक्त प्रकार से दोषारोपण करने के बजाय अगर घड़ी की आत्मा को दोषी ठहराकर उसे इस प्रकार दण्डित किया जाये कि उसके अंजर-पंजर ही अदृश्य हो जाय, तब इस प्रकार के मिथ्या दंभ तथा अज्ञानता से क्या अपेक्षा की जा सकती है? इस प्रकार के तर्क तथा सार द्वारा आत्मा तथा उससे संबंधित शारीरिक कार्यों का परिणाम ज्ञात हो जाता है और शारीरिक रचना एवं गठन की भूल के कारण आत्मा को निरर्थक दण्ड दिया जाता है।

मनुष्य के लिये आत्मा की क्या आवश्यकता है? जब हम पेड़-पौधे, जानवर आदि जीवधारी प्राणियों के कार्य एवं कर्तव्य की ओर ध्यान देते हैं, उनकी कार्य प्रणाली स्पष्टतः उनके जन्म, अस्तित्व, गर्भ एवं मृत्यु की प्रक्रिया का बोध करा देती

है। हम और क्या देखते हैं? इसमें हम यह पाते हैं कि इनके शरीर की बनावट और गठन के अनुरूप इनमें कार्य तथा हलन-चलन की क्रिया पाई जाती है।

हम इस चलन को स्पष्टतः बुरा अथवा भला कहते हैं और आत्मा इस चलन के फल का उपयोग करती है। वह कौन सा यंत्र है, जिसके द्वारा भले चलन, उत्तम, चरित्र एवं सदाचार को मापा जा सकता है? भले कर्म का फल अच्छा और बुरे कार्य का फल बुरा भोगना पड़ता है, लेखक के इस मत को अप्रमाणित सिद्ध नहीं किया जा सकता। अगर कार्य के गुण का कोई प्रमाण अथवा प्रतिभू (जमानत) नहीं है, तब आत्मा के लिये वास्तव में कोई काम नहीं रह जाता है।

इसलिए आत्मा की स्थिति आधार-रहित आकाश में निमित्त प्रसाद की भांति है। मनुष्य, आत्माधिकार के ज्ञान के बिना अपनी क्षमता तथा सुविधानुसार अपने शरीर को इंगित करता हुआ, आत्मा को आत्मीय, अपना निजी-जीवन तथा अपनी आत्मा आदि शब्दों से संबोधित करता है। अन्य दूसरा कोई इस प्रकार नहीं कहता। मनुष्य कभी कभी मेरा, मेरी आत्मा, आत्मीयता आदि निरर्थक शब्दों का उपयोग करता है, इसलिए वे वस्तुएं, जिनकी अभिव्यक्ति सुविधापूर्वक होती है, उनकी शुद्धता एवं सत्यता को हम कभी भी स्वीकार नहीं करते।

अतः सर्वप्रथम यह समझना चाहिए कि जीवन क्या है? यह भी एक काल्पनिक है, वास्तविक नहीं। जीवन को भी आत्मा और कभी कभी वायु की संज्ञा दी जाती है। मेरे अनुसार जीवन एक स्वयं अपना व्यापार करता है और एक गतिमान परिणाम का प्रतीक है।

आत्म जीवन

जीवन द्रव्य से भिन्न है। चालू मशीन की भांति इसके कार्य का अपना प्रभाव पृथक है। जिस प्रकार एक चालू मशीन, मोटर अथवा इंजिन से भिन्न-भिन्न भाग जुड़े रहते हैं और मशीन के चलने पर इन भागों में स्वतः गति रहती है, उसी प्रकार का यह जीवन है। शरीर की बनावट, अन्तर्ज्ञान, भोजन आदि, जो इस जीवन को मिलता रहता है, उसके परिणामस्वरूप जीवन अथवा कार्य करता रहता है। शरीर का ढांचा कैसा भी क्यों न हो, यदि इसे पर्याप्त खाना नहीं मिलता, तो यह काम नहीं कर सकता। निश्चित मात्रा में शरीर के ढांचे को भोजन मिलने पर इसका कार्य सुचारू रूप से चलता रहता है।

अगर शरीर के ढांचे में कोई विकार है अथवा पर्याप्त मात्रा में भोजन की पूर्ति रोक दी गई है, तो जीवन समाप्त हो जायेगा। अर्थात भिन्न-भिन्न अवयवों की गति में अवरोध हो जायेगा। जब तक जीवित है, वह मनुष्य कहलायेगा, जीवन समाप्ति का अर्थ है कि शरीर में श्वासोच्छ्वास की शक्ति नष्ट हो चुकी है।

इस प्रकार जीवन-यापन करते हुए मनुष्य में अपनेपन की भावना वाणी की

आन्तरिक शक्ति द्वारा व्यक्त होती रहती है। मनुष्य के अतिरिक्त दूसरे प्राणियों में भी यह अपनेपन की भावना रहती है, परन्तु उसकी अभिव्यंजना वाणी द्वारा न होकर कार्य रूप में पाई जाती है।

उदाहरणार्थ, अगर हम एक कुत्ते को पालें और उसका नाम 'रोज' रखें और उसे इस नाम से पुकारे, वह शीघ्र चला आयेगा। अन्य दूसरे कुत्ते निर्देशानुसार कार्य करते हैं। अपने स्वामी अथवा अन्य किसी से निर्देश व सम्बोधन पाकर वह शीघ्र ही उसे पहचान कर कार्य करने लगता है और समझने लगता है कि यह आदेश स्वयं उसके लिये है। आत्मज्ञान, अपना अधिकार, अपना निवास स्थान, अपने सम्बन्धी तथा बच्चों आदि का अनुभव उसमें जीवन होने के कारण होता है। जीवन की न कोई पृथक सत्ता है और न यह कोई द्रव्य ही है।

अगर मनुष्यों से पूछा जाय कि 'मेरा' अथवा मेरी 'आत्मा' का क्या प्रयोजन एवं अर्थ है, तो कोई भी इसकी व्याख्या न कर सकेगा-और कर भी कैसे सकेगा जबकि उसमें कुछ सार ही नहीं है। अगर स्वतः उत्पन्न अनुभव को ही द्रव्य मान लिया जाय, तो वह किस प्रकार इन्द्रियगोचर हो सकता है? भिन्न-भिन्न शिराओं और धमनियों के मेल के कारण ही मनुष्य का अनुभव एवं विचार शक्ति का जन्म होता है और यह प्रक्रिया स्वाभाविक जान पड़ती है। उदाहरण तथा प्रयोगस्वरूप हल्दी और चने को मिलाने पर लाल रंग बन जाता है, नफले और सफले के संयोग से हरा, कुछ गैसों के मेल में पानी, कुछ विशेष द्रव्य मिलाकर गर्म करने पर कुछ में बबूला और कुछ का वाष्पीकरण हो जायगा, इस करने वाली क्रिया द्वारा ठोस में परिवर्तन आदि अनेक क्रियाएं स्वतः भिन्न-भिन्न परिणामों के साथ होती रहती है। इन परिणामों को, जो स्वतः पैदा हुए है, भिन्न-भिन्न नामों से पुकारने लगते हैं।

एक संगीत का यंत्र उसी प्रकार का स्वर निकालने लगता है जिस प्रकार का राग और स्वर हम स्थिर करते हैं। अगर उसमें से केवल मात्र आवाज ही सुनाई दी तो यह कहा जा सकता है कि यह प्रकृति सिद्ध है। किसी विशेष राग और स्वर का बजाकर जब यह किसी विशेष गायन को प्रस्तुत करता है, तब यह सब उस यंत्र की बनावट की विशेषता का परिणाम है। उसमें आत्मबोध अथवा जीवपन को कोई बात समझ में नहीं आ सकती।

उसी प्रकार मनुष्य का शारीरिक ढांचा, जीवन के प्रभाव के कारण जब कार्य करता है, उसमें हास्य, विलाप, अन्वेषण, विचारशक्ति आदि गुण स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। इन हरकतों के कारण हम जीवन को एक पृथक तत्व नहीं मान सकते।

अगर भली प्रकार समझा जाय, तो कोई भी व्यक्ति आत्मा और जीवन को एक पृथक तत्व नहीं मानेगा। आविष्कार की भावना में कमी का अनुभव करते हुए यह मिथ्या विचार एवं अंधविश्वास प्रतीत होगा। गंभीरतापूर्वक मनन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि धर्म और ईश्वरत्व, ईश्वर और आत्मा के विषय में चिंतन के माध्यम

हैं और ईश्वर का परिणामस्वरूप है, कोई द्रव्य नहीं। दूसरे प्राणियों की आत्मा और जीवन के अतिरिक्त मनुष्य की आत्मा और जीवन के विषय में प्रायः अधिक चर्चा होती है। यहां तक कि धर्म में ईश्वर, जीवन और आत्मा कारण रूप ज्ञात होते हैं, कोई पदार्थ रूप नहीं। यहां तक कि धर्म भी यही बात कहते हैं। इसलिए धार्मिक पुरुषों द्वारा दार्शनिक मंत्र को वेदान्तिक मंत्र की संज्ञा दी गई है। प्रायः ऋषि-मुनि कहा करते हैं कि जिसने अपनी खोज कर ली, उसने परमात्मा की खोज कर ली। इसका यह तात्पर्य हुआ कि जो स्वयं, स्वयं अपना एवं अपने से उत्पन्न आदि शब्दों की व्याख्या जान सकता है, वह ईश्वर का कारण भली-भांति समझ सकता है। पृथ्वी पर जीवनयापन करते हुए मनुष्य इन्द्रियजन्य विकार और प्रेम के बंधनों से जकड़ा हुआ अच्छे बुरे कार्य करने तथा बुरे कार्यों को छोड़ने के लिए विवश कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में आत्मा के विषय में मिथ्या होने लगता है। जो व्यक्ति न तो कोई भला कार्य करता है और न बुरा ही, उसे ईश्वर, स्वर्ग के भय तथा कृपा से क्या प्रयोजन है।

मनुष्य जब तक कार्य करता है, उसे अच्छा-बुरा करने के लिए कोई नहीं रोक सकता। जब तक शरीर में कार्य करने की क्षमता का गुण है, उसके शारीरिक अवयव अपना-अपना कार्य करते रहेंगे। वे कार्य किसी को लाभप्रद तथा किसी को हानिप्रद प्रतीत हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन कार्यों में कोई एक कार्य एक ही समय में किसी को सहायक तथा किसी को दुखदायक होता है। इसलिए मनुष्य को विचारना चाहिए कि हमारे पूर्वजों ने हदय में पवित्र भावना और लाभ प्राप्ति के उद्देश्य से न्यस्त स्वार्थ तत्परता के कारण इन परिणामों को पदार्थों की संज्ञा दी है और सार्वभौम मानवता पूर्ण सामाजिक जीवन के हेतु इनका आविष्कार किया है। मनुष्य का धर्म परस्पर एक दूसरे के लाभ के लिए आचरण करने की बात कहकर मैं अपनी चर्चा का अन्त करता हूं।

अन्ततोगत्वा मैं आपको यह मानने के लिए विवश नहीं करता कि जो कुछ मैंने चर्चा की है वह सब सत्य एवं अंतिम परिणाम वाली है। ये तो मेरे व्यक्तिगत विचार हैं। अपनी सर्वोत्तम स्वेच्छा एवं विवेक बुद्धि के अनुसार आप अपने उचित परिणाम पर पहुंच सकते हैं।

समाज-सुधार व सामाजिक क्रान्ति

('अरिविन इल्लाई', 1965 से)

समाजिक सुधार एक ऐसी योजना है, जिसमें मुझे बड़ी आशा थी, परंतु अब वह आशा क्षीण हो गई है। मेरी समझ में राष्ट्रीय, स्वाभिमानी तथा समाजवादी व्यक्तियों के सन्मुख सामाजिक सुधार की यह योजना नहीं है, बल्कि वास्तव में बड़े साहस और दृढ़तापूर्वक अपना गई एक विनाशकारी योजना है। मैं यह बात बड़ी नम्रतापूर्वक आपके सन्मुख रख रहा हूं क्योंकि गम्भीर अन्तरावलोकन और क्रियात्मक अनुभव द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं। निम्नलिखित उदाहरण द्वारा मैं इस दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करता हूं। कल्पना कीजिये कि एक पवित्र तालाब है। पुराण में कहा गया है कि जो व्यक्ति इसकी एक बूंद भी मुख में डाल ले अथवा शरीर में चुपड़ ले, वह सबसे बड़ा पापी होते हुए भी नर्क जाकर सीधा स्वर्ग जाता है। यदि इस तालाब के पानी पीने से अजीर्ण हो जाय या बदन पर मलने से फोड़े-फुन्सियां हो जायें, तब हमें क्या करना चाहिए? सर्वप्रथम पानी की सतह पर फैले हुए विषाक्त जीवाणुओं का नाश कर देना पड़ेगा और अगर फिर भी स्थिति में सुधार न हो, तो हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हम तालाब खाली करके उसे साफ-सुथरा कर लें। यदि फिर भी पानी विषाक्त जान पड़े, तब हमें इस निश्चय पर पहुंच जाना चाहिए कि झरने गंदे हैं। इन परिस्थितियों में क्या आपका विश्वास पुराण में तथा तालाब की इस पवित्रता में बना रहेगा? यदि ऐसा है तो आप बीमारी और मृत्यु का आह्वान करते हैं। अन्ततोगत्वा आपका कर्तव्य हो जाता है कि आप ऐसे तालाब को मिट्टी व कीचड़ से भर दें और उसे नष्ट कर दें।

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक सुधार भी, उस गंदे तालाब के गंदे पानी को कीड़े मार जहरीली दवा से शुद्ध करके तथा अंत में पानी को निकाल कर तालाब को शुद्ध कर लेने वाली एक प्रक्रिया है। तालाब को बंद करने का अर्थ उसे नष्ट कर देना है। मैं इस अर्थ में अपने को विनाशकारी मानता हूं। मैं यह सब इसलिए कहता हूं कि सामाजिक सुधारों का हमारे देश में एक समय था। आधुनिक सुधारों की बात मैं नहीं कहता जो नाम लेने योग्य ही नहीं है, क्योंकि

अज्ञानी एवं सामान्य मनुष्य को धोखा देने के लिए इसमें अमीर तथा शिक्षित व्यक्तियों का हाथ रहता है। वे उस सामान्य पुरुष के भाग्य का विकास करने में असमर्थ हैं- लेकिन फिर भी वह सामान्य व्यक्ति प्रचार द्वारा ठगा ही जाता है। यहां तक कि उसकी स्थिति शनैः-शनैः बुरी से बुरी होती जाती है।

इस स्थिति का एक मात्र कारण यह है कि समाज सुधारवादी लोग राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित होकर जनता को सामाजिक सुधार के नाम पर गुमराह करते हैं। मेरे मस्तिष्क में सबसे बड़े सुधारक सिद्ध, बुद्ध, थिरूवेल्यूवर, रामानुजम आदि हुए हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े सुधार करने में अनेक प्रयत्न किये, परन्तु अन्त में बुरी तरह असफल रहे।

सामाजिक सुधार एक देश से दूसरे देश में विभिन्न होते हैं। पश्चिम देश में सामाजिक सुधार समान रूप से प्रत्येक जाति पर लागू होते हैं, परन्तु हमारे देश में ये सुधार जातिगत भेदभाव के आधार पर क्रियान्वित किये जाते हैं। परिणाम स्वरूप आदि से अन्त तक असमानता की स्थिति समाज में बनी रहती है। इन सुधारों में सबसे बड़ा और आवश्यक सुधार हमारे देश में जन्मजात असमानता का माना जाता है, जो विश्व में कहीं नहीं देखा जाता।

द्वितीय महान आवश्यक सुधार ईश्वर, धर्म, स्वर्ग और नर्क के सम्बन्ध में अंध-विश्वास के आधार पर चालू है। सिद्ध, बुद्ध, थिरूवेल्यूवर, रामानुजम् जैसे महान सुधारवादियों नें इन सुधारों का उपदेश समाज में किया है, लेकिन सुधार के रूप में इन्हें कोई सफलता मिली हो, ऐसा नहीं कहा सकता। जनता के स्वभाव तथा विचारों में परिवर्तन करने वाले जो भी थोड़े बहुत सुधार हमारे देश में लागू हुए, वे सब पश्चिम में हुए सुधारों की एक प्रक्रिया मात्र और हमारे पश्चिमी शासकों के न्यस्त स्वार्थ से प्रेरित हैं। इसलिए यह कहना कठिन है कि लोक समाज में कोई सुधार प्रस्तुत किये गए हैं। ईश्वर, धर्म, वेद, शास्त्रों में अन्ध-विश्वास के कारण हमारे देश के सुधारकरण देश में कोई भी वास्तविक सुधार नहीं ला सके। भारतीय समाज में भेदभाव की नीति ने कुछ जातियों को बड़ा लाभ पहुंचाया और अब भी पहुंच रहा है। ये लोग इन सुधारों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। बुद्ध, कपिल, थिरूवेल्यूवर, रामानुजम् जैसे महान पुरुषों ने समाज में सुधारों का घोर विरोध करने वालों का डटकर सामना किया, परन्तु इन सुधारों के भविष्य में प्रचलन के विषय में कोई कुछ नहीं कर सका। हमारे समाज में सुधार लाने में रुकावट डालने वाले व्यक्ति समाज की जातिगत भेदनीति तथा समाज में व्याप्त अन्ध-विश्वास के कारण लाभान्वित हो रहे हैं और अब भी उन्नति कर रहे हैं। लेकिन पहले से अब स्थिति बदल गई है। फिर भी धार्मिक कट्टरता तथा अंधविश्वासों के कारण बदली हुई समाज की स्थिति में भी कोई सुधार लागू नहीं हो पाते। यह समझ लेना चाहिए कि जनता के अन्धविश्वास की नींव पर धर्म और ईश्वर रूपी भवन का निर्माण हुआ है। हमारी

दिनचर्या का एक मात्र आधार हमारे अन्धविश्वास की प्रक्रिया है। इस बात से आप यह परिणाम नहीं निकाल सकते कि इन अन्ध-विश्वासों के विरुद्ध युद्ध अथवा उपदेश करना समाज सुधार के क्षेत्र के बाहर है। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुधार पर आक्रमण करने वाले ये विनाशकारी लक्ष्य हैं। लेकिन जिस प्रकार विध्वंसकारी प्रक्रिया प्रायः सुधार में मेल नहीं खाती, उसी प्रकार समाज का पुनर्निर्माण का अर्थ सर्वप्रथम विध्वंस तत्पश्चात् निर्माण करना है।

इस पुनर्निर्माण के कार्य में जुटाने के लिए दृढ़ निश्चय एवं साहस के प्रदर्शन की आवश्यकता है, अन्यथा यह आत्मघात होगा। समाज की इस प्रतिमा को तोड़ने के लिए परंपरागत प्राचीन कट्टर धर्मपरायणता के विरुद्ध घनघोर युद्ध अपेक्षित है। इन अड़चनों के जो भी कुछ कारण हो, उनके अस्तित्व को जड़मूल से खोद देने की आवश्यकता है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि अन्धविश्वासों पर आधारित इन प्राचीन परम्पराओं का अस्तित्व बना रहा, तो समाज में सुधार करने की प्रक्रिया में पूर्ण असफलता ही मिलेगी। मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो यह विश्वास करते हैं कि समय तथा धर्म के बल पर समाज सुधारकों को रोका जा सकता है। मैं जानता हूं कि यह बहुतों को अरुचिकर प्रतीत होगा। लेकिन मानना पड़ेगा कि संयम, सहिष्णुता और धैर्य के मामले में बुद्ध जैसे महान दृष्टा के समकक्ष किसी और धर्म नेता को विशिष्टता प्राप्त नहीं हो सकती। यह विशिष्टता ही उनकी निर्बलता थी। जो मनुष्य आत्मीय सावधानी बरतते हैं और जनता की आलोचना से भयभीत होते हैं, कभी भी कार्य-साधक सुधारक नहीं बन पाते और उनके प्रयत्न कभी भी सफल नहीं होते। सुधारकों पर परम्परागत रीति-रिवाजों का कोई प्रतिबंध नहीं रहता। इसके अतिरिक्त उन्हें ऐसे प्रत्येक बन्धन को तोड़ देना चाहिए।

क्या हमारे प्राचीन सुधारकों ने अपने शांतिपूर्ण प्रोत्साहन, धर्मोपदेश तथा सहकारिता के आधार पर जनता में सुधार करने का पर्याप्त प्रयत्न नहीं किया? उनके महान प्रयत्नों का क्या फल निकला? कब तक हम इस रीति-नीति की पुनरावृत्ति करते रहेंगे? यह संभव है कि महात्मा गांधी तथा स्वामी विवेकानंद के मुख से निकले धर्मोपदेश मेरे विरुद्ध उद्धरित किये जायें। मैं निश्चय रूप से उनके दृष्टिकोण के विरुद्ध हूं। हम सब यह जानते हैं कि जनता उनकी पूजा करती है और उनके धर्मोपदेश का उद्धरण फौरन ही प्रस्तुत करने लगती है। लेकिन मैं पूछता हूं कि समाज की आज भी क्या स्थिति है? किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु के बाह्य दर्शन से नहीं, बल्कि सन्तति के लिए उसकी उपयोगिता पर है।

कुछ उपदेशकों का कथन है कि सुधार के नाम पर हमें पुरातन चिन्हों और कलाओं को नष्ट नहीं करना चाहिए। लेकिन यथार्थ में जिन प्राचीन चिह्नों, कलाओं एव सजधज को वे प्रशंसनीय समझते हैं, वे ही जनता के पतन और हमारे देश की हीनता एवं दीनता के कारण है। उदाहरणस्वरूप, रामानुजम ने 'नमम' एवं 'पूनूल'

के प्राचीन चिन्हों की विशेषता एवं उपयोगिता के विषय में जनता में विश्वास उत्पन्न कर दिया है और प्रत्येक जातिच्युत, निर्बल तथा निम्न जाति को इनसे अलंकृत कर दिया, जो रामानुजम के कथनानुसार उनकी समानता का सूचक है। इसका परिणाम यह हुआ कि असमानता में तनिक भी परिवर्ततन लाये बिना इन प्राचीन चिन्हों की रक्षा की गई। इन चिन्हों को बरतने वाले लोगों में असमानता की भावना इतनी दृढ़ हुई कि जो लोग चिन्हों का उपयोग नहीं करते थे उनके प्रति उनकी घृणा की भावना तीव्रतर हो गई। हमारे मंदिर उन पुरातन चिन्हों के पवित्र स्थान हैं। जहां कहा जाता है, कि सर्वशक्तिमान ईश्वर इनमें निवास करता है। ईश्वर की आराधना हेतु ये पवित्र स्थान बनाये गये हैं। लेकिन इन मंदिरों की क्या स्थिति है? जनता को इनसे क्या लाभ है? क्या कोई इस तथ्य को अस्वीकार कर सकेगा कि समाज में व्याप्त बुराइयों को मिटाने के लिए जिन मंदिरों का निर्माण हुआ, उनमें सर्वशक्तिमान ईश्वर के सन्मुख ही अनेक व्यभिचार एवं नीच कर्म होते हैं। क्या इनकी तुलना वेश्यालयों एवं मद्यशालाओं से नहीं की जा सकती? प्राचीन कलाओं के विषय में भी यही स्थिति है। कोई भी यह प्रश्न कर सकता है कि वेद, शास्त्र, इतिहास, तथा पुराण आदि पवित्र ग्रंथों में, जिनमें ईश्वर सृष्टि रचना तथा उसके लोक कल्याणकारी कार्यों का पूर्ण विवेचन है, मानव के लिए क्या उपयोगी है और उन्होंने मानव समाज के उत्थान के हेतु क्या किया है? रामायण, महाभारत, शिवपुराण, विष्णु पुराण, पेरिया पुराण आदि पुरातन एवं विद्वानों द्वारा प्रतिष्ठित ग्रंथों ने जनता के लिए क्या किया? क्या कोई इस तथ्य को स्वीकार नहीं करेगा कि इन उपर्युक्त ग्रंथों में ईश्वर के उन निम्न कोटि के गुणों एवं कार्यों का उल्लेख है जो हमारे निम्न स्तर वाले समाज के सदस्यों से भी निन्न स्तर का है? क्या कोई इस वास्तविकता को अस्वीकार कर सकेगा कि इन पुराण आदि ग्रंथों ने मानवोत्थान में अड़चने एवं रुकावटें पैदा की हैं? इस पर भी क्या हम यह नहीं देखते कि इन कथित पवित्र देव चिन्हों, कलाओं एवं साहित्य की दुहाई देकर, धर्म परायण कट्टरपंथी लोग, सुधारकों को वास्तविक सुधार लाने में रोड़ अटकाते हैं? सुधारात्मक विचारों के अनुकूल कुछ विद्वान इन पुराणों में से गूढ़ उद्धरण प्रस्तुत करते हुए प्रायः पाये जाते हैं। मेरे मतानुसार, सहज में विश्वास करने वाली जनता को धोखा देने के लिए ये उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं। पुराणों में भरी हुई चमत्कारिक घटनाएं मनुष्य के ज्ञान के बाहर हैं और यथार्थता एवं क्रियात्मकता से रहित हैं। इसलिए आधुनिक युग में इनकी बारम्बार आवृत्ति असंभव है। पुराण में इस प्रकार की अनेक कथाओं एवं घटनाओं का उल्लेख है कि जातिच्युत पुरुषों को मंदिर में प्रवेश करने की आज्ञा प्रदान की गई, वहां पर प्रत्येक प्रकार के देवी-देवताओं ने उन्हें वरदान देकर सीधी मुक्ति प्रदान की। आजकल ऐसी घटनाएं क्यों नहीं होती? इस शंका का समाधान केवल यह है कि प्राचीन समय के जातिच्युत पुरुषों की भांति आजकल के जातिच्युत लोग नहीं होते। यदि इसमें

यथार्थता है, तो इन प्राचीन कलाओं तथा ग्रन्थों को संजो कर उन्हें जीवित रखने की क्या आवश्यकता है? जब मनुष्य की अज्ञानावस्था के कारण अस्पृश्यता की भावना क्षम्य है तो पौराणिक कथाओं में प्रचलित कथन के आधार पर ईश्वर ने अस्पृश्यता को मान्यता क्यों प्रदान की है?

वे कौन सी वस्तुएं हैं, जो सुधार की अपेक्षा रखती हैं?

जिन वस्तुओं में सुधार अपेक्षित है उनमें से ईश्वर और धर्म के विषय में सुधार अभीष्ट है क्योंकि इन्हीं के कारण सुधारों में अड़चने तथा रुकावटें पैदा होती हैं।

जितना कम ईश्वर के विषय में कहा जाय, उतना ही अच्छा है, क्योंकि ईश्वर के विषय की बातचीत बूंद-बूंद चूने वाले उस बर्तन की भांति है, जो जल-तल को छोड़ते समय पूर्ण भरा हुआ होता है, और कुएं के मुंडेर पर पहुंचते-पहुंचते खाली हो जाता है। यह सब बातें सिर्फ विवाद के लिए हैं और इससे कोई वास्तविक परिणाम नहीं निकाला जा सकता। फिर भी, सर्वोत्तम पैगम्बर तथा अवतारों ने कहा है कि ईश्वर ऐसी कोई शक्ति है जो अदृश्य एवं इन्द्रिय अगोचर है और मनुष्य के ज्ञान के परे है और अंत में यह भी कहा है कि ईश्वर कोई वास्तविक पदार्थ है, जिसका अस्तित्व इसके विश्वास में गर्भित है। इस प्रकार ईश्वर की परिभाषा में किसी तर्क की अपेक्षा नहीं की जा सकती।

धर्म एक पृथक वस्तु है जो ज्ञान अथवा बोध के लिए अधिक सहायता प्रदान नहीं करता। जहां तक मैं समझता हूं, धर्म किसी को शान्ति तथा सफलता नहीं देता। फिर भी धर्म के नाम पर मानव इतिहास युद्ध और उसके प्रचार की विभीषिका से परिपूर्ण है। प्रत्येक विशिष्ट धर्मावलम्बी विश्वास करता है कि अपने दृढ़ विश्वास के आधार पर ही मुक्ति प्राप्त करना संभव है। पैगम्बर अथवा अवतार तो मात्र ईश्वर-पुत्र माना गया है और उसके द्वारा कथित उपदेश ईश्वर के ही उपदेश हैं। इस तथ्य से कोई इंकार नहीं कर सकता कि प्रत्येक बड़े धर्म के अनेक उप धर्म हैं। यह समझना असंभव सा प्रतीत होता है कि सत्य का कौन प्रतिनिधित्व करता है और नरक के विषय में किसी भर्त्सना से भयभीत होना चाहिए। मैं पूछता हूं कि ईश्वर के प्रेम को प्राप्त करने के हेतु इस प्रकार की प्रतियोगिता की क्या आवश्यकता है? क्या ये धर्मपरायण प्रधान व्यक्ति इस बात का अनुभव करते हैं कि अपने प्रयत्न से वे मानव को ईश्वर तक पहुंचाने में समर्थ हो सकते हैं? अगर इन प्रश्नों पर शांतिपूर्वक मनन किया जाये, तो धर्म की निरर्थकता तथा अनुपयोगिता स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो सकती है।

जिस प्रकार एक साहसी योद्धा प्रकट रूप में लोक-कल्याण के लिए राजा होने की शक्ति दूसरे से छीन लेता है और कुछ समय बाद अपने कर्तव्य को भुलाकर दूसरे लोगों की भूमि पर विजय प्राप्त करने के हेतु अपनी प्रजा पर दबाव डालता है

और उसे युद्ध में सम्मिलित होने के लिए विवश करता है, उसी प्रकार ये धर्मनिष्ठ मुखिया प्रकट रूप में जन-कल्याण के लिए जनता का नेतृत्व करते हैं, तत्पश्चात शक्ति की वृद्धि होने पर समस्त जनता को इस विश्वास में निमग्न कर देते हैं कि उसे संसार के बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने का साहस केवल मात्र उन्हीं में ही है। इसलिए अनेक धर्मों तथा विश्वासों से सत्य असम्बद्ध एवं परस्पर विरोधी प्रतीत होता है और ऐसा आभास होता है कि पृथ्वी पर ईश्वर के अनेक प्रतिनिधि है। इसलिए धर्म और ईश्वर का समीकरण कठिन हो जाता है, यद्यपि प्रत्येक धर्म ईश्वर से सम्बद्ध समझा जाता है। अगर यह कहा जाय कि प्रत्येक क्षेत्र और देश की जनता के लिए धर्म, जनता द्वारा आचरण पालन हेतु एक धर्म संहिता है और द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार परिवर्तनशील है, यह कथन कुछ सीमा तक क्षम्य है। इसके अतिरिक्त जब यह कहा जाता है कि धर्मोपदेश एक वैदिक आदेश है और इसमें कोई भी परिवर्तन अपेक्षित नहीं है, तब ऐसी स्थिति में यह उपर्युक्त कथन पर निरर्थक धर्म का आग्रह मात्र ही है औौर सुधारकों के द्वारा नष्ट कर देने के उपर्युक्त है। मनुष्य के परिवर्तन एवं उसके परिवर्तित अनुभव के आधार पर ही सामाजिक सुधारों का होना महत्वशाली है।

स्त्री और पुरुषों का स्तर

स्माज में स्त्रियों की स्थिति मनुष्यों से निम्न कोटि की है। यह कहा जाता है कि जिस प्रकार सिंह के भोजन के हेतु अन्य वन जंतु बनाये गये हैं और बिल्ली के भोजनार्थ चूहों की रचना की गई है, उसी प्रकार स्त्रियां पुरुषों की दासी के रूप में बनायी गई हैं। अगर ईश्वर का यह विधान है, तो संसार से ऐसे ईश्वर को हटा देना चाहिए।

सतीत्व

विश्व की नारियों की अपेक्षा भारत की नारियों की सामाजिक स्थिति अत्यंत पतनोन्मुख है। उन पर शुद्धता एवं सदाचार के नियमों का प्रतिबंध थर्रा देने वाला है। उनका सतीत्व ही एक मात्र गुण माना गया है। हम नारियों को एक विशिष्ट प्रकार को शुद्धता एवं सतीत्व का उपदेश देकर उनमें मिथ्या अहंकार करते हैं। उनके सिद्धांत के अनुसार नारी को अपने पति की अनन्य दासी के रूप में आज्ञाकारिणी होना चाहिए। अगर पति अपनी भार्या से कहता है कि ठंडा भात गरम है, तो स्त्री का कर्तव्य उसको फेंक देने का है। अगर पतिदेव, कुएं से पानी भरती हुई अपनी स्त्री को पुकारते हैं तो स्त्री को चाहिए घड़े को अधर में छोड़ कर चली आये और जब तक पुनः पतिदेव की आज्ञा न मिल जाय, वापस न जाय। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि घट वापस कुंए में गिर जाता है तो वह सती कहलाने के योग्य नहीं

है। इससे अधिक नारी की और क्या दासता और जड़ता हो सकती है, मैं कुछ नहीं कह सकता। क्या पुराणों में देवताओं ने अपनी-अपनी स्त्रियों के साथ ऐसा ही बर्ताव किया है? इसके विपरीत हमने देखा है कि कोई देवता अपनी स्त्री को अपनी जांघ तथा कंधों पर बिठाये हुए है। अगर स्त्रियों को दासी समझा जाता है, तो उनकी संतान दासी संतान कहलाएगी। जहां पर स्त्री का दासी का रूप होगा, वहां स्वाभिमानी समाज का निर्माण नहीं हो सकता। मनुष्यों के साथ-साथ नारियों की स्वतंत्रता और समानता पूर्ण सभ्यता की उपलब्धि में एक बड़ी कड़ी है। इसके अभाव में समाज का पूर्ण अंग सभ्य नहीं हो सकता। इसके लिए सुधारकों को प्रयत्न करना चाहिए।

स्त्रियों की स्वतंत्रता को स्थिर करने के हेतु उनके सतीत्व एवं पवित्रता की समाज द्वारा बाध्य भावना को रद्द करना पड़ेगा। दबाव डालकर उनका सतीत्व दृढ़ करना सतीत्व नहीं है। स्त्री के सतीत्व की अपेक्षा तब ही की जा सकती है, जब आप उसे अपना विशुद्ध प्रेम प्रदान करें तथा उसे अपना सच्चा साथी समझें। पुरुषों के लिए एक नियम और स्त्रियों के लिए दूसरा नियम पूर्णतः निंदनीय है और समानता के सिद्धांत के सन्मुख कभी भी स्थिर नहीं रह सकता। पुरुषों द्वारा नारियों को स्वतंत्रता प्रदान करना एक मनगढ़ंत बात है। अतः इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु नारी समाज को स्वयं उठकर सतत प्रयत्न करना चाहिए। सरकार की भी अपनी जिम्मेदारी इस ओर है। सामाजिक-सुधारों की तुलना में शासक परम्पराओं तथा धर्म का आश्रय लेकर इनके सुधार की अपेक्षा नहीं कर सकते। टर्की अफगानिस्तान तथा चीन आदि देशों ने इस विषय में सुधारात्मक नेतृत्व प्रदान कर मार्ग प्रदर्शन किया है। यह स्मरणीय है कि टर्की की स्त्रियों के नेत्र तथा चीनी नारियों के पंजे अब बंधनों से मुक्त कर दिये गये हैं।

वैधव्य

इस अवसर पर भारतीय विधवा नारियों के विषय में कुछ उल्लेख कर देना हमारी लेखनी के क्षेत्र से बाहर नहीं है। यह आप भली-भांति जानते हैं कि स्वाभाविक प्रवृत्ति के विरुद्ध आभागी विधवाओं पर मनुष्य समाज अपना प्रभाव जमाता है। इस प्रकार का कार्य मनुष्य की निर्दयता का प्रतीक ही नहीं अपितु मानवता का दिवालियापन है। यह वास्तव में अजीब बात है कि जिस देश में देवियां पूजी जाती हों, नदियों के नाम स्त्रियों के नाम पर रखे जाते हों और देवगण अपनी देवियों को सिर, जिहवा तथा जंघा पर आसन देकर उनका सम्मान करते हों, वहां दैनिक जीवन में गुड़ियों से भी अधिक बुरा व्यवहार उनके साथ होता है। बाल वैधव्य की बात में कोई सार नहीं है। समाज में इस प्रकार के प्रचलन का क्या औचित्य हो सकता है? विधवा से समाज के किस अंग को अधिक लाभ होता है? क्या साधु सन्यासी लोग, जो अपना एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं, उससे लाभान्वित होते हैं? प्राचीन

समय में शासकगण नारियों की संख्या में विषम वृद्धि के भय से डरते थे कि कहीं लड़कियों के विवाह की जटिल समस्या खड़ी न हो जाये।

इन सब प्रश्नों का उत्तर हमारे समाज-सुधारकों को देना है। इस प्रकार की स्थिति अब असहनीय है। अब स्त्रियों को आगे बढ़कर अपनी स्वतंत्रता की मांग करनी चाहिए। अपने पतियों का उन्हें स्वयं चुनाव करना चाहिए और निम्न कोटि की जातियों के आदर्शों का अनुसरण करना चाहिए, जहां विधवा नारियां अपना पुनर्विवाह कर लेती हैं। इस विषय में सुधारकों का विशेष कर्तव्य एवं उत्तरदायित्व है।

जातिगत भेदभाव

मनुष्य समाज में जातिवाद का स्वतः आविर्भाव नहीं हुआ। दण्ड विधान की नियमावली के अंतर्गत इस संस्था का उदय हुआ है। बलवान द्वारा निर्बल पर शासन जातिवाद का आधार है। जातिवाद की भावना स्वयं प्रमाणित करती है कि मनुष्य समाज पूर्णरूपेण सभ्य नहीं है। जन्मजात जातिवाद का क्या औचित्य है? इस बात का कोई प्रमाण नहीं दे सकता है कि कोई व्यक्ति किसी एक जाति से मानवोचित वृत्ति, चरित्र तथा बुद्धि प्राप्त करने की क्षमता नहीं रखता। यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। जन्म के समय समानता होने पर भावी जीवन में असमानता का पाठ पढ़ाया जाता है। भले आदमी जातिवाद (वर्ण-व्यवस्था) को समाप्त कर देना उचित समझते हैं। युग-युगान्तरों से इस ओर सतत प्रयत्न जारी है। परन्तु हमें कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता। हृदय के सूक्ष्मान्वेषण व राष्ट्रीय आवश्यकता द्वारा धार्मिक श्रद्धा में परिवर्तन होने की मुझे कोई आशा नहीं है। प्रत्येक जाति की जनसंख्या के अनुपात से उनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिनिधित्व देकर सरकार इस बीमारी को दूर कर सकती है। भौतिक पदार्थों के उपयोग में समानता का व्यवहार उनके स्तर को ऊंचा करेगाा और इस स्थिति में ऊंच-नीच का भेद-भाव मिटेगा, जातिवाद रूपी महल गिरेगा।

समान प्रतिनिधित्व के कारण सबल निर्बलों का शोषण नहीं कर पायेंगे। यह मांग समाज सुधारकों के क्षेत्र से बाहर नहीं है। कुछ राष्ट्रीय जन इस बात का विरोध करते हुए कहते हैं कि इसके द्वारा जातिगत भेद-भाव और अधिक बढ़ेगा। वे नीची जाति के साथ समानता के व्यवहार की दलील इसलिए देते हैं, जिससे अमीरों को लाभ हो। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी धार्मिक तथा मनोवैज्ञानिक रुकावटें हैं, जो नीची जातियों को आगे बढ़ने से रोकती हैं और उच्च जाति को आगे बढ़ने को प्रोत्साहित करती हैं। इसी कारण जनसंख्या के अनुपात से प्रतिनिधित्व होने पर जाति-भेद समाप्त हो जायेगा।

अस्पृश्यता

यह बात असंगत है कि पारस्परिक छुआछूत से मनुष्य अपवित्र हो जाता है।

जिस देश में ऐसी प्रथा चालू हो उस देश को किसी जल-प्रलय और अग्नि से नष्ट हो जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में जबकि अस्पृश्यता युगों से चली आ रही हो और समझ के बाहर हो, तो संसार में यह कैसे संभव हो सकता है कि हम ईश्वर की कृतज्ञता, दया आदि गुणों का गुणगान करते रहें और उसकी आराधना के लिए तत्पर रहें? अस्पृश्य लोगों के लिए क्या यह वांछनीय नहीं है कि वे शक्ति अथवा हिंसा के बल पर इन विषमताओं से स्वतंत्रता प्राप्त करें या इस प्रयत्न में अपने को समाप्त कर डालें? जिस देश में ऐसी प्रथा का चलन हो, क्या वह देश राजनीतिक स्वतंत्रता, तथा स्वराज्य की अपेक्षा कर सकता है? कुछ लोगों का कहना है कि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के बाद ये असमानताएं स्वतः दूर हो जायेंगी परंतु वे इस बात को भूल जाते हैं कि अस्पृश्यता उस युग में भी थी, जब भारत स्वतंत्र था और राम और हरिश्चन्द्र जैसे देवतुल्य राजाओं द्वारा यह देश शासित था। अस्पृश्यता का कारण राजनैतिक दासता नहीं, यह तो केवल मात्र हिन्दू धर्म की देन है। समाज सुधारकों का यह परम कर्तव्य है कि वे इस अस्पृश्यता रूपी राक्षस का हनन कर डालें। यदि आवश्यकता पड़े तो हिन्दू धर्म को भी नष्ट कर डालें।

शिक्षा

सामाजिक सुधार के अन्तर्गत शिक्षा के विषय का ज्ञान भी अनिवार्य है। प्रकृति और सामान्य मानव चरित्र का संबंध शिक्षा से है। शेष सब चमत्कार ही कहा जा सकता है। ''तिरूक्कुरम'' का कथन है, ''जो मनुष्य यह जानता है कि मानव जीवन का उपयोगी अंग क्या है, वह जीवित है, शेष मनुष्यों की गणना मृतकों में है। (214) जो मनुष्य संसार में समन्वयपूर्वक रहना जानते हैं वे संसार की बहुत सी बातें समझ जाते हैं, अन्य पुरुष नहीं। (140)'' शिक्षा में व्यावहारिक तथा प्राकृतिक तथ्यों की जानकारी आवश्यक है। आजकल जो कुछ सिखाया जाता है, वह सब हमारे मौलिक सिद्धांतों के विपरीत है। वर्तमान शिक्षा उस शोषक वर्ग के हित में है, जो दूसरों के श्रम पर जीवित है। संक्षेप में, मैं यह कहूंगा कि देव-आराधना, धार्मिक कृत्य, शासकों की पूजा आदि कृत्य जो मानसिक दासता के प्रतीक हैं, शिक्षा के क्षेत्र में अवांछनीय हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियों को शिक्षा दी जानी चाहिए। अस्पृश्य तथा अन्य पिछड़ी जातियों को भी शिक्षा के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए और जो लोग पवित्रता और बुद्धिमत्ता का दावा जन्म से करते हैं, उन्हें इस शिक्षा से वंचित कर देना चाहिए। कम से कम 15 वर्ष तक उच्च वर्ग के लोगों का कॉलेज और टेक्निकल स्कूलों में प्रवेश रोक देना चाहिए। मैं यह अनुभव करता हूं कि ईमानदार सरकार को दृढ़तापूर्वक कदम उठाना चाहिए यदि वह सामाजिक समानता की स्थापना वास्तव में करना चाहती है और वर्ण-व्यवस्था को भंग करना चाहती है। समाज सुधारकों का एक महान कर्तव्य हो जाता है कि वे ऐसा करने के लिए सरकार को विवश कर दें।

अन्ध-विश्वास

अन्ध-विश्वास और मिथ्या दर्शन के व्यवहार को समाज से निकाल देने की बात समाज-सुधारकों के क्षेत्र के अंतर्गत है। यह बात सामान्य रूप से सब जगह मान्य है। जो लोग इन अन्ध विश्वासों के चलन का लाभ उठाकर शोषण करते हैं, वे ही लाभान्वित होते हैं आौर दूसरा कोई नहीं। साहस और दृढ़ विश्वास के अभाव में दूसरे लोग इस स्थिति को बंदलने में असमर्थ हैं। ईश्वर, धर्म, दया ही केवल अन्धविश्वास को प्रोत्साहित नहीं करते बल्कि भले और बुरे दिनों का विश्वास, संकल्प, उपवास, तीर्थ-पर्यटन, धार्मिक स्थान और साधुओं की प्रशंसा आदि कृत्य भी अन्ध-विश्वास के प्रचार में सहायता पहुंचाते हैं, जिसके कारण मनुष्य की शक्ति, बुद्धि, धन तथा समय का अपव्यय होता है। यद्यपि भारत, प्राकृतिक साधनों से भरपूर है फिर भी वह दासता, निर्धनता और पिछड़ेपन के बन्धनों से बंधा हुआ है। इसका एक मात्र कारण मनुष्यों का अंधविश्वास ही है। संसार के कुछ अन्य देशों ने, जो बहुत पिछड़े हुए थे, कुछ वर्षों के अन्दर कला और विज्ञान में भारी उन्नति की है, क्योंकि उन्होंने इन अन्धविश्वासों को जड़-मूल से नष्ट कर दिया है।

हमारी जनता इन अन्ध-विश्वासों को दूर करने के लिए तत्पर नहीं होती। ''हमारे पूर्वजों का चलन'' इसका सबसे बड़ा तर्क है। करोड़ों रुपया इनके व्यवहार में नष्ट हो जाता है। भारतवर्ष में कुछ ऐसे मंदिर हैं, जिनकी वार्षिक आय करोड़ों रुपया है। यह अपार धनराशि निरर्थक धार्मिक कृत्यों तथा कुछ शोषक जनों के हितार्थ खर्च कर दी जाती है। पुराण, आगम शास्त्र, आचार्यों की कथाएं, शुभ दिवस, धार्मिक स्थान तथा रीति-रिवाज इन विश्वास सफल मनुष्यों को धोखा देते हैं। यहां तक कि देशी और विदेशी सरकारें भी जनता के विश्वास का शोषण करती हैं। भारत की रेलों का उदाहरण लीजिए। यह कोई भी नहीं कह सकता कि रेल के अधिकारीगण इन धार्मिक स्थानों, धार्मिक क्रिया-पद्धतियों तथा तीर्थ यात्राओं में अटूट विश्वास करते हैं। फिर भी आप देखिये, रेलवे विभाग क्या करता है? ''थुला-स्नानार्थ अवश्य आइये'', ''वैकुंठ एकादशी आपको आमंत्रित करती है'', ''आदि अमावस्या के हेतु धनुष कोटि अवश्य पधारिये'', ''थिरूवन्नामुलाई में कातिज़्केय दीपम के दर्शनार्थ हम आपका आहवान करते हैं'', ''क्या आप हरिद्वार कुम्भ मेला में नहीं जायेंगे?'', 'कुम्बा' कोनम में महामाघम के लिए पधारिये'' आदि विषयक विज्ञापन समाचार पत्रों तथा स्टेशनों पर लगे विज्ञापन पटों द्वारा चारों ओर प्रसारित किये जाते हैं और इन विज्ञापन पटों में जनता का ध्यान आकर्षित करने और उसको धोखा देने के हेतु किसी सुन्दर नारी का चित्र भी अंकित कर दिया जाता है। ऐसा वे जनता को सीधा स्वर्ग में पहुंचाने के लिए नहीं करते। यह सब आप जानते हैं कि ये सब धन अर्जित करने का एक साधन ही है। सरकार को जो भी कर रूप में दिया जाता है उससे कहीं अधिक जनता इन तीर्थ यात्राओं, धार्मिक अनुष्ठानों तथा झाड़-फूंक और ताबीजों

में व्यय कर देती है। जो मनुष्य सरकार को दोष दिया करते हैं कि उसने जन-कल्याण के लिए यह नहीं किया और वह नहीं किया, वे उपर्युक्त प्रकार के अपव्यय की तनिक भी चिंता नहीं करते। वास्तव में अर्थशास्त्रियों, राजनीतिज्ञों तथा पत्रकारों द्वारा सरकार की भूलों की आलोचना करना अधिक सरल है बजाय इसके कि वे इन अन्ध-विश्वासों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करें जिस पर जनता की एक बहुत बड़ी धनराशि का अपव्यय ही है। देश में इस बात की कमी है कि इन अन्ध-विश्वासों के कार्यों में सरकार जरा भी अपना हस्तक्षेप कर सके।

अंध विश्वासों के कार्यों में व्यय की जाने वाली धनराशि का उपयोग यदि जन कल्याण के हेतु हो सके, तो हमारी अशिक्षा का अनुपात शीघ्र ही घट जायेगा। अशिक्षा, निर्धनता तथा बीमारी का एक मात्र कारण अन्धविश्वास है।

ऐसे समाज सुधारक बहुत हैं जो मंच पर खड़े होकर 'परोपदेश पांडित्यम' की बात करते हैं, परन्तु वास्तव में वे स्वयं अपने कथित मार्ग का अनुसरण नहीं करते। यथार्थता का सामना करने के लिए उनमें घबराहट तथा अवरोध उत्पन्न हो जाता है। अन्ध-विश्वासों को बनाये रखने के लिए शोषित वर्ग कभी भी चैन से नहीं बैठ पाता। लगभग सभी शैव, वैष्णव, सिद्धांती आदि धार्मिक सम्प्रदाय गोष्ठियों का आयोजन करते हैं तथा रामायण, महाभारत, थेवेरम पर कलकक्षेपम् की कोई कमी नहीं रहती। इन भयंकर विपरीत शक्तियों का सामना करने के लिए सुधारकों को अधिक वेग से काम करना होगा और अपना मस्तिष्क दृढ़ बनाना होगा। धर्म और ईश्वर में व्याप्त अन्धविश्वास की शक्ति को अत्यल्प समझते हुए इसे अनंत शक्ति तथा नित्य मानना बुद्धि का दिवालियापन है और असफलता को वरण करना है। अन्ध-विश्वास का व्यवहार एवं श्रद्धा युग युगान्तरों से चली आ रही है और इसके समर्थन में एक विशाल साहित्य है, यह कथन सत्यता का प्रमाण उपस्थित नहीं करता। संसार उन महापुरुषों एवं उनके द्वारा सम्पादित उनके उन कार्यों से भरपूर है, जिन्होंने समाज की पुरानी जीर्णशीर्ण प्रथाओं को तोड़ कर सफलता प्राप्त की और मनुष्यों के रहन-सहन में परिवर्तन कर दिया।

किसी व्यवस्थित हृदयग्राही पद्धति द्वारा समाज में सुधार किया जा सकता है, ऐसा मुझे अब विश्वास नहीं रहा। मैं अनुभव करता हूं कि हेतुवाद और समाजवाद का दावा करने वाली हमारी यह तानाशाही सरकार ही इस ओर कुछ कर सकती है। यह सरकार वर्ण-व्यवस्था को हटाने के लिए वचनबद्ध है, अतएव वह ऐसी पुस्तकों तथा साहित्य के चलन पर प्रतिबंध लगा दे, जिसमें वर्ण-व्यवस्था की प्रशंसा की गई हो। उन समस्त पुस्तकों की होली जला दी जाय, जो अन्ध-विश्वास और वर्ण-व्यवस्था तथा जातिगत भेद-भावों से परिपूर्ण है। शंकराचार्य तथा मठाधिपति आदि धर्म नेताओं को, जो अब भी वर्ण-व्यवस्था का उपदेश करते हैं, तत्काल उन पर प्रतिबंध लगा दिया जाये या देश निकाला दे दिया जाये। जवाहरात तथा मूल्यवान

बर्तनों के रूप में मंदिरों में जमा की हुई अतुल धनराशि जब्त कर ली जाय और उसे अशिक्षितों को शिक्षित बनाने तथा बेरोजगारी दूर करने में व्यय किया जाये। यह आवश्यक है कि जनता द्वारा ऐसी सरकार बने जो सुधारों को दृढ़तापूर्वक कार्यान्वित कर सके। इस प्रक्रिया में संभवतः बहुत सुधारकों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ जाये। सबसे बड़ी बात यह है कि समाज सुधारकों को यदि कोई नास्तिक की संज्ञा दे, तो उसे वे निर्भय होकर स्वीकार कर लें। शब्द 'नास्तिक' अथवा उसका नास्तिकता का भाव कोई अर्थ नहीं रखता। यथार्थ में बात तो यह है कि जो लोग ब्राह्मण पुरोहितों, वेदों, शास्त्रों, इतिहास, और पुराणों में विश्वास नहीं करते, उन्हें लोग नास्तिक कहने लगते हैं। आस्तिक होकर यदि कोई शोषण और अंध-विश्वास को न मिटा सका, तो नास्तिक होने में क्या बुराई है? वास्तव में मुझे पूर्ण विश्वास है कि समाज सुधारक यदि संसार को पूर्ण-रूपेण सुधरा हुआ देखना चाहते हैं तो उन्हें फौरन नास्तिक बन जाना चाहिए। तब ही नास्तिकता का भय दूर हो सकता है। यह सब ध्यान में रखना चाहिए कि धर्म पुरोहित तथा धनिक लोग सदैव समाजवाद, जनतंत्र और सुधारकों को शत्रु समझते हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि जो लोग किसी एक धर्म का दूसरे धर्म के लिए विरोध करते हैं, एक पैगम्बर या अवतार के विपरीत किसी पैगम्बर में विश्वास करते हैं और अन्त में जनता को संकीर्ण मार्ग में ला पटकते हैं, वे ही सुधारों एवं ज्ञान के विरोधी होते हैं। इस प्रकार के झूठे प्रचार के विरुद्ध लोगों को सावधान कर देना चाहिए जिससे वे अज्ञान एवं श्रद्धा के वशीभूत होकर असत्य प्रचार तथा असत्य मार्ग प्रदर्शन के बल पर अपना धर्म परिवर्तन न कर लें। समस्त धर्मावलम्बी लोग एक ही कुटिल नाव के नाविक हैं। मानव जीवन के लिए धर्म परिवर्तन कोई अर्थ नहीं रखता। धर्म परिवर्तन संदेह निवृत्ति का साधन नहीं है।

ऐसे ब्राह्मण तथा कट्टर धर्मपरायण लोगों के विषय में चेतावनी दे देना परमावश्यक है, जो अपने को बड़ी सरलतापूर्वक महान समाज सुधारकों की श्रेणी में रखते हैं क्योंकि उन्होंने मांस सेवन, मद्यपान तथा किसी के भी घर पर खान-पान प्रारम्भ कर दिया है। कुछ लोग अपने को महान सुधारकों की गणना में इसलिए रखते हैं क्योंकि उन्होंने अपने विवाह संस्कार में अथवा वेश्या के रूप में किसी रखैल को रखने में किसी जात-पांत का विचार नहीं किया। ये हरकतें समाज सुधार के प्रतिरूप नहीं हैं। इसके साथ-साथ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि इस वर्ण व्यवस्था तथा जातिपात भेदभाव के केवल ब्राह्मण ही दोषी हैं, हालांकि इस प्रकार के व्यक्ति अन्य सम्प्रदायाओं में भी थोड़े बहुत रूप में पाये जाते हैं। जनता आलोचना करती है कि जो लोग इस जातिगत भेद-भाव के कारण ब्राह्मण वर्ग की कटु आलोचना करते हैं, वे ही लोग अपने से निम्न स्तर की जाति के लोगों को समानता का पद नहीं देते। यह आलोचना सत्य है। इसका उत्तर मेरी समझ में यह है कि ब्राह्मण

समाज इसका अधिक दोषी है, क्योंकि इसके पूर्वजों ने जातिगत भेद-भाव उत्पन्न किया और पनपाया। अगर मानव समाजरूपी सीढ़ी के अंतिम चरण रूपी ब्राह्मण वर्ग अपना इस विषय में सुधार कर ले, तो और दिशाओं में भी सुधार हो जायगा। मैं पुनः अपनी बात दोहराता हूं कि बिना किसी भेदभाव के जनसंख्या के अनुपात से समस्त जातियों को सेवालयों तथा शिक्षालयों में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो।

अन्त में यह मैं कहना चाहता हूं कि सामाजिक सुधार कर अंतिम लक्ष्य जनता में भली आदतों का शिक्षण, ज्ञान वृद्धि तथा समानता के सिद्धांतों का पालन आत्म सम्मान की प्राप्ति और सत्य धर्म निरपेक्ष समाजवाद की स्थापना करना है।

जातिवाद और देवी-देवता

(कोयम्बटूर के सन 1958 में पेरियर द्वारा दिये गये भाषण से)

प्रथम- मुझको ईश्वर तथा अन्य देवताओं में आस्था नहीं है।

द्वितीय-विश्व के संगठित धर्मों से मुझे घृणा है।

तृतीय-शास्त्र, पुराण और उनमें वर्णित देवताओं में मेरी कोई आस्था नहीं है, क्योंकि वे सब दोषपूर्ण हैं। उनको जलाने और नष्ट करने के लिए मैं जनता का आह्वान करता हूं।

मैंने यह सब कुछ कहा है और मैंने पिल्लाल्यर तथा विनायक की मूर्तियां तोड़ डाली हैं तथा राम के चित्र भी जला डाले हैं। मेरे इन कार्यों के बावजूद मेरी सभा में मेरे भाषण को सुनने के लिए यदि हजारों की संख्या में जनता एकत्रित होती है, तो यह स्पष्ट है कि स्वात्माभिमान तथा बुद्धि का अनुभव जनता में आने लगा है।

द्रविड़ कजगम आंदोलन का क्या अभिप्राय है? इसका लक्ष्य एक ही है इस निकम्मी हिन्दू वर्ण व्यवस्था का अंत कर देना, जिसके कारण समाज ऊंच और नीच जातियों में बांट दिया गया है। इस प्रकार द्रविड़ कजगम आंदोलन उन शास्त्रों, पुराणों तथा देवी-देवताओं में श्रद्धा नहीं करता जो वर्ण व्यवस्था को येन केन प्रकारेण बनाये हुए हैं।

राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्ति के बहुत पश्चात सन् 1958 तक वर्ण-व्यवस्था तथा जातिगत भेद-भाव की नीति ने जनता के जीवन पर अपना शासन बनाये रखने के कारण देश के पिछड़ेपन को प्रमाणित कर दिया। किसी और देश में इस प्रकार जाति विभेद के कारण जनता हजारों की संख्या में विभाजित नहीं है। आश्चर्य है कि समझदार लोग इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं। वास्तविक स्वार्थ तत्परता का दौर इस देश के नेताओं में हैं। कुछ लोग जो राष्ट्रीयता तथा राजनीतिक पार्टी के आधार पर अपने को समाज सेवी कहते हैं, भारत की वास्तविक समस्याओं की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। जिन कारणों के सहारे देशवासी पिछड़ी स्थिति में हैं उन कारणों के आधार पर वे अपनी आजीविका चलाते हैं। राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद दूसरे देश के लोगों ने राष्ट्रीय विकास तथा सामाजिक सुधार की

ओर बड़े वेग से उन्नति की है।

देश में द्रविड़ कजगम को छोड़कर क्या कोई दूसरी ऐसी संस्था है जिसने वर्ण व्यवस्था को हटाने की स्पष्ट मांग की हो। कुछ ऐसे लोग हैं जो वर्ण व्यवस्था का अंत करने वाले हमारे इस आंदोलन के लिए हमें बधाई देते हैं और हमारी प्रशंसा करते हैं, परन्तु खुले हदय से इस व्यवस्था के विरुद्ध जनता के सामने जाने का साहस नहीं करते। इसी कारण अन्ध विश्वास, मिथ्या दर्शन तथा असभ्य चलन हमारे विश्वासशील लोगों पर अपना शासन जमाये हुए हैं। जिस समय भारतीय सभ्यता के शिखर पर थे, उस समय पश्चिम की जातियां जो असभ्य थीं, अब भारतीय जातियों से कहीं अधिक सभ्य हो गई हैं। कुछ अधिक समय नहीं हुआ जबकि यूरोप के गौरांग लोग अपनी आजीविका के हेतु जंगलों में चर्म और वृक्षों की छाल से अपने शरीर को ढंक कर घूमते-फिरते थे। वे नदियों में मछलियां पकड़ते और जंगलों में शिकार खेलते थे। स्त्री-पुरुष का संबंध व्यभिचार पूर्ण था। पाक विधि की जानकारी के अभाव में वे पशुओं की भांति कच्ची शाक भाजी खाते थे। आजकल वे क्या हैं? महान चमत्कारपूर्ण अनेक वस्तुओं की खोज करके आज वे देवतुल्य माने जाते हैं। विद्युत, रेडियो, टेलीविजन, टेलफोन, रेलवे तथा हवाई जहाज आदि का आविष्कार उन्होंने ही किया है। उन्होंने बनावटी चांदों को आकाश में भेजा है और वहीं रहने के लिए घर बना रहे हैं।

योरप निवासियों की अपेक्षा भारतीय किस बात में कम हैं? प्राचीन काल में भारत के लोगों ने अनेक चमत्कार पूर्ण अन्वेषण किये और प्रकृति के स्वर में स्वर मिलाते रहे। लेकिन इसके पश्चात देवी-देवताओं में मिथ्या श्रद्धा, धार्मिक अनुष्ठान, जात-पांत भेद-भाव तथा अन्धविश्वास के कारण स्वतंत्र चिंतन का सदुपयोग न रहा। धर्म पुरोहितों ने विवेक तथा बुद्धि को अपना बंदी बना लिया। जिस किसी ने ईश्वर, देवी-देवताओं, शास्त्रों तथा पुराणों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद की, उसी को नास्तिक कहकर अहिन्दू तथा समाज विरोधी प्रतिक्रियावादी की संज्ञा दी गयी। 'आत्म सम्मान' आंदोलन प्रारम्भ होने के पूर्व किसी को इन देवी-देवताओं तथा अन्ध विश्वासों के प्रति आवाज उठाने का साहस नहीं हुआ।

जहां तक मेरा संबंध है, मैं न तो ईश्वर के अस्तित्व और न उसके नास्तित्व के विषय में कहता हूं। मैं यह भी नहीं कहता कि इस गंभीर समस्या पर पूर्ण-रूपेण मनन किये बिना जनता मेरी बात मान ले। नास्तिकता मनुष्य के लिए कोई सरल स्थिति नहीं है। कोई भी मूर्ख अपने को आस्तिक कह सकता है। ईश्वर की सत्ता स्वीकार करने में किसी भी प्रकार की बुद्धिमत्ता की आवश्यकता नहीं है। लेकिन नास्तिकता के लिए बड़े साहस और दृढ़ विश्वास की जरूरत है। यह स्थिति उन्हीं लोगों के लिए संभव है जिनके पास तर्क तथा बुद्धि की शक्ति हो और जो अपनी स्थिति के विषय में दूसरों को विश्वास दिला सकें। नास्तिकता में अन्ध-विश्वास का

कोई स्थान नहीं है।

जहां तक मेरा विश्वास है, संसार में लाखों मनुष्यों ने ईश्वर के प्रति आस्था खो दी है। श्रद्धालु अधिक संख्या में अवश्य हैं। क्रिश्चियन तथा इस्लाम धर्मावलम्बी एक ईश्वर में विश्वास करते हैं। ईश्वर अमूर्तिक है। न इसका नाम है, न रंग, न रूप और न इसकी कोई इच्छा है। हम क्यों नहीं इसी प्रकार के ईश्वर को मानते हैं? हमारे लिए हजारों ईश्वर की सत्ता की क्या आवश्यकता है? अगर हम इन ईश्वरों के नाम लिखना प्रारम्भ करें तो हमारी लेखनी की स्याही सूख जायेगी परन्तु नामावली समाप्त नहीं होगी। इन देवी-देवताओं का आरंभ कहां से है? किसी धर्म पुरोहित से पूछने पर वह इनका उद्गम स्थान पुराण बतायेगा। अगर वर्तमान युग विवेक और बुद्धिवाद युग न होता तो संभवतः मार्ग पर लगे जितने भी मीलों के पत्थर हैं वे भी देवी-देवताओं में परिणित हो जाते और तब यात्रियों को आश्चर्य होता। किसी सफेद पत्थर को लाल और सफले रंग से चुपड़कर उसे घर में खड़ा कर उसमें किसी देवता की स्थापना कर लेना हिंदू के लिए अधिक कठिन नहीं है। क्या कभी जनता ने ऐसे मस्त देवी-देवताओं के विषय में सोचा है? हाथी, सुअर, मछलियां तथा सर्प केवल पवित्र ही नहीं, अपितु मानव शरीर और मस्तिष्क पर धारण होने पर उनको आदरणीय समझा जाता है। कुछ देवी-देवता आधे पुरुष और आधे पशु के रूप में क्यों है? स्त्रियां बांबियों में दूध चढ़ाती हैं, आकाश में ऊंचे उड़ते हुए गिद्धों के कपोलों को पवित्र माना जाता है, मार्ग में चली जा रही गाय को स्पर्श किया जाता है और राहगीर उसकी पूजा करते हैं, देवताओं के एक से लेकर दस तक चेहरे होते हैं और कहीं ये चेहरे बाहर की ओर फूले हुए तथा भीतर की ओर से धंसे हुए इस प्रकार नाना आकृति के होते हैं। ये सब आकृतियां देवताओं की किस लिए हैं? उनका क्या काम है? इस प्रकार के देवताओं के प्रदर्शन का क्या औचित्य है? जनता इन बातों की ओर क्यों नहीं तर्क और विवेक से काम लेती है?

हमको यह कहा जाता है कि हमारे पूर्वजों ने कुछ पशुओं और पक्षियों को देवताओं की संज्ञा इसलिए दी है कि हम उनका आदर करें और उनके साथ दयालुता का व्यवहार रखें। यह व्याख्या बेकार है। दूसरे देशों में जहां गाय, बन्दर, कुत्ते और चूहों को पूजा नहीं जाता, वहां क्या उनके साथ बुरा बर्ताव किया जाता है? भारतीय पशु संसार के पशुओं की अपेक्षा सबसे अधिक क्षुधा पीड़ित रहता है। उनकी कोई चिंता नहीं की जाती और उन्हें सड़कों पर यों ही छुट्टा छोड़ दिया जाता है। परिणामतः उनका पेट नहीं भरता और उनकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है। सांड़ों को धार्मिक एवं पवित्र मानकर सड़क पर छुट्टा छोड़ दिया जाता है और वे पटरी पर बैठने वाले दुकानदारों तथा खोनचा बेंचने वालों को हैरान-परेशान करते हैं। बंदरों को भी देवता मानकर उनकी पूजा की जाती है। राम के इन भक्त दूतों को भारत में मारा नहीं जाता। वे घरों में, मंदिरों और बाग-बगीचों में हजारों रुपयों का नुकसान कर डालते

हैं। वनस्पति तथा फलों के रूप में खाद्यान्न की एक विशाल राशि व्यर्थ में नष्ट कर दी जाती है। इस बात की किसी को कुछ चिंता नहीं। गौ वध निषेध की धुन ने भारत में खाद्यान की बड़ी भारी समस्या में एक और योग लगा दिया है। परिणामतः प्रतिवर्ष लाखों मन खाद्यान्न अमेरिका तथ अन्य देशों से आयात कर देश की दिवालिया वित्त नीति को बढ़ावा दिया जा रहा है और इस प्रकार धन का बहाव बड़े वेग से देश से बाहर हो रहा है। लेकिन इसकी कोई चिंता नहीं करता।

दो हजार वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध ने हिन्दू धर्म के जहरीले अंगों से छुटकारा पाने के लिए जनता के मस्तिष्क को स्वतंत्र करने का प्रयत्न किया था। उन्होंने जनता से क्यों, कैसे और क्या प्रश्न किये और वस्तु के यथार्थ गुण और स्वभाव की समीक्षा की। उन्होंने वेदों को व्यर्थ की संज्ञा दी है। उन्होंने किसी भी वस्तु पर किसी भी ऋषि तथा महात्मा का अधिकार स्वीकार नहीं किया। उन्होंने जनता को अपनी जीवित भाषाओं में आत्मचिंतन करने तथा जीवन के साधारण सत्य को समझने का उपदेश दिया। परिणाम क्या हुआ? ऐसे उपदेशकों को मौत के घाट उतारा गया, उनकी स्त्रियों का अपमान किया गया और उनके घर द्वार फूंक दिये गये। बुद्ध धर्म के लोप हो जाने के बाद भारत से विवेकवाद समाप्त हो गया। बुद्ध की जन्मभूमि पर बुद्ध धर्म का प्रसार न हो सका। यह चीन और जापान चला गया जहां पर इसने विध्वंस के अतिरिक्त इन देशों को महान बनाया। राष्ट्रीय चरित्र अनुशासन, शुद्धता, ईमानदारी तथा अतिथि सत्कार में कौन देश जापान की समानता कर सकता है?

ईसा के प्रारम्भिक वर्षों में बुद्ध के बाद महान थिरूवेल्यूवर का जन्म भारत में हुआ। उन्होंने भी वही उपदेश दिया जो महात्मा बुद्ध ने दिया था। उनका अमूल्य तिरूकुरल कूड़े वाली टोकरी में फेंक दिया गया और गीता तथा मनुशास्त्र का आलिंगन किया गया। हमारे देश के शंकराचार्यों का मान बढ़ाया गया, बिना यह समझे कि वे देव-रहित हैं, उनमें देवताओं के कोई भी गुण नहीं हैं। आदिवेता ने समस्त देवताओं में एक ही ईश्वर को माना है जबकि शंकराचार्य ने स्वयं अपने को ईश्वर की संज्ञा प्रदान की है। उनके लिए फिर ईश्वर की क्या आवश्यकता रही? उनके शरीर की विभूति, शक्ति के रूप में देवियों की पूजा, और गेरुआ वस्त्रों का पहनावा ये सब जनता को धोखा देने और अपने शून्यवाद सिद्धांत को छलने के निमित्त हैं।

ईश्वर किस प्रकार और क्यों जन्म-मरण करता है? समस्त देवताओं को देखो। राम का जन्म नवमी तिथि को हुआ, सुब्रामानिया का जन्म षष्ठी तिथि को हुआ, और कृष्ण का जन्म अष्टमी को हुआ, पुराणों के अनुसार इन सब ईश्वर तुल्य देवों की मृत्यु हुई। इस कथन के उपरान्त भी हम क्या इनकी पूजा देव समझ कर करते रहें? ईश्वर की पूजा क्यों करना चाहिए? ईश्वर को भोग लगाने का क्या औचित्य है? प्रतिदिन उसका अभिषेक करके नवीन वस्त्रों से उसे क्यों अलंकृत किया जाता है? यहां तक कि पुरुषों द्वारा देवियों को नग्न कर स्नान कराया जाता है। इस अश्लीलता

के कारण न तो देवियों को स्वयं और न उनके भक्तों को ही क्रोध आता है।

देवताओं को स्त्रियों की क्या आवश्यकता है? प्रायः वे एक स्त्री से सन्तुष्ट नहीं होते। कभी-कभी तो उन्हें रखैल या वेश्या की आवश्यकता होती है। विरूपती में क्यों देवता मुस्लिम वेश्या (नछैयर) के यहां जाने की इच्छा करते हैं और क्यों प्रतिवर्ष ये देवता अपना विवाह सम्पन्न करते हैं? गत वर्ष के विवाह का क्या परिणाम होता है? उनका कब तलाक होता है? कौन सा न्यायालय उनके इस विवाह विच्छेद की स्वीकृति देता है? क्या इन तमाम देवताओं के खिलवाड़ ने हमारी जनता को अधिक बुद्धिमान, अधिक शुद्ध और अधिक एकता के सूत्र में बांधा है?

ईसाई, मुस्लिम और बौद्ध धर्म के देवतागण दया, अनुग्रह, सज्जनता तथा परोपकारिता के अवतार माने जाते हैं। क्रिश्चियन और बौद्ध धर्म की मूर्ति पूजा इन गुणों को प्रकट करती है। हमारे देवताओं को देखिए। एक देवता एक भाला लिए हुए है, दूसरा धनुष-बाण तो दूसरे अन्य देवता गदा, खंजर तथा ढाल से सुशोभित है। ये सब क्यों? एक देवता के अंगुली के चारों ओर सदा चक्र नाचा करता है। किसका वध करने के लिए? अगर प्रेम और अनुग्रह मनुष्य के हृदय पर विजय प्राप्त कर लेते हैं, तो इन हिंसक शस्त्रों की क्या आवश्यकता है? स्पष्टतः हमारे देवता बुराई पर विजय प्राप्त करने के हेतु इन हिंसक अस्त्रों का उपयोग करते हैं। क्या इनमें उन्हें सफलता मिली है? हम आजकल के समय में रह रहे हैं। क्या यह वर्तमान समय इन देवताओं के लिए उपयुक्त नहीं है कि वे आधुनकि शस्त्रों से अपने को सुसज्जित करें और धनुष बाण के स्थान पर मशीनगन तथा बंदूक धारण करें? रथ को छोड़कर क्या श्रीकृष्ण टैंक पर सवार नहीं हो सकते? मैं पूछता हूं कि जनता इस एटोमिक युग में देवताओं पर विश्वास करते हुए लजाती क्यों नहीं है?

जाति और चरित्र

अच्छा चरित्र क्या है? मानव चरित्र के विषय में वर्ण व्यवस्था ने हमारे विचार उलट दिये हैं। प्रत्येक जाति के लिए चरित्र संहिता का सिद्धांत जन्म पर आधारित है। शताब्दियों तक इस प्रकार के व्यवहार ने हिन्दू धर्म को अज्ञानांधकार के गहनतम गड्ढे में ढकेल दिया है और चारित्रिक एकता एवं एकरूपता को छिन्न-भिन्न कर दिया है। क्रमिक असमानता हिंदू रक्त में इतनी समा गई है कि अंग्रेजी भाषा के शिक्षण तथा उच्च स्तर प्राप्त करने के पश्चात भी उसने सामान्य बुद्धि को कुंठित कर दिया है। इसलिए यह एक सामान्य बात हो गई है कि कालेज के प्रोफेसर्स, इंगलैंड में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात भारत में लौटे हुए विद्वान तथा विशेषज्ञ, राजनैतिक, न्याय विशारद अपने-अपने घरों में उसी तरह का व्यवहार करते हैं, जिस भांति दूर गांव में रहने वाला एक किसान या अनपढ़ पुरोहित व्यवहार करता है। ऐसे लोग कट्टर प्राचीन परम्पराओं का बहाना लेकर अपनी जीवन की असंगति की बात बिना बिचारे कह उठते हैं और बड़ी जल्दी अपने घर को बड़ी-बूढ़ी स्त्री के मत्थे सारा दोष मढ़ देते हैं। सच्चाई तो यह है कि ऐसे लोगों में अपनी विचारधारा को व्यवहार में लाने का साहस नहीं होता और गृह शांति के नाम पर वे शीघ्र ही अन्धविश्वासों के शिकार बन जाते हैं। इस प्रकार इनकी शिक्षा बेकार हो जाती है। अच्छी नौकरी और सरलतापूर्वक धनोत्पादन ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य नहीं है। इसीलिए सब शिक्षित व्यक्ति बुद्धिमान नहीं होते। बुद्धि और संस्कृति स्वतंत्र रूप से आती है। इसके लिए शिक्षा की आवश्यकता नहीं है। मनुष्य को बुद्धिमान तथा संस्कृत बनाने में शिक्षा सहायता प्रदान करती है। वर्ण व्यवस्था तथा धर्म शिक्षित मनुष्यों को पीछे खींचते हैं।

नारियों को अपने आश्रित करने तथा अपने नियंत्रण में रखने के लिए संसार के मनुष्यों ने उनके सतीत्व और प्रेमरूपी गुण की आवश्यकता पर बल दिया है। निर्धन और पतितों का शोषण करने के हेतु इसी प्रकार नैतिकता का आलम्बन पकड़ा गया है। सतीत्व, पवित्रता, प्रेम, सत्य, न्याय, नैतिकता ये सब एक ही जननी की संतानें

हैं। चतुर और शक्ति सम्पन्न पुरुषों के लाभार्थ अपने चलन की रूपरेखानुसार उपर्युक्त बातें तोड़-मरोड़ कर नीची जाति के लोगों के सम्मुख रखी जाती है। यह स्पष्ट है कि कानून का निर्माता मनुष्य है अतएव नारियां मनुष्यों के आश्रित बनाई गई हैं। यह भी स्पष्ट है कि निर्बल और पतितों को पराधीन करने के हेतु इन कानूनों का निर्माण हुआ है।

जिस प्रकार बच्चों को भय का भूत दिखाकर अपने नियंत्रण में किया जाता है, उसी प्रकार सामान्य जन को भी धर्म तथा नीति का भय दिखाकर धर्माचरण का पाठ पढ़ाया जाता है जिससे वे लोग शोषक समाज से पृथक रह सकें और उन्हें देवता की संतति की संज्ञा दी जाती रहे। जब तक बच्चों की समझदारी में विकास नहीं होता, तभी तक वे भय तथा विश्वास के समक्ष अपने घुटने टेके रहते हैं। इसी प्रकार शोषक समाज तभी तक अपनी विशिष्ट सुख सुविधाओं को सुरक्षित रख सकता है, जब तक कि वह सामान्य जन को उनके अधिकार तथा सत्याचरण के विरुद्ध अंधकार में रखे रहता है। अच्छे और बुरे चरित्र का मापदंड आंतरिक योग्यता नहीं अपितु शक्ति और चतुराई है।

साधारण रूप से वेश्यावृत्ति, झूठ, चोरी और धोखा, दुश्चरित्रता की निशानी है, परन्तु ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं मिलेगा, जो अपने दैनिक जीवन में इनमें से किसी का भी शिकार न हो। कुछ मामलों में उपर्युक्त बातें ढकी मुंदी रहती है और कुछ मामलों में स्पष्ट नहीं हो पाती। किसी मनुष्य के बीते समय की झलक प्रकट कर देती है कि उस मनुष्य के जीवन में कितने अवसर ऐसे आये हैं जबकि अपने लाभार्थ उसने अपने गुणों को एक तरफ रख दिया हो। हमारे नजदीकी रिश्तेदारों, मित्रों अथवा अपरिचित व्यक्तियों के चरित्र का जरा सा भी विश्लेषण उनके अभद्र व्यवहार तथा बेईमानी के ढंगों को प्रकट कर देता है।

मनुष्य प्रायः अपनी आजीविका के लिए वाणिज्य व्यापार कृषि, जन सेवा, उत्पादन तथा अन्य व्यवसाय आदि पर निर्भर रहता है। इनमें से कौन ऐसा है जो आजीवन सदाचारपूर्वक रह सकता है? यहां हमारा ध्येय गुण और अवगुण की व्याख्या करना नहीं है। मतलब हमारा मात्र यह जानना है कि कौन ऐसे उच्च अवस्था, पद तथा शक्ति सम्पन्न व्यक्ति हैं जो पतित तथा अभागे पुरुषों की तुलना में अपने को अधिक गुणवान तथा चरित्रवान समझते हैं।

एक पूंजीपति एक कारीगर को उसके किसी कार्य के लिए बुरा-भला कहता है, जबकि वह स्वयं स्पष्ट रूप से उसी काम को करता हुआ पाया जाता है। एक सरकारी कार्यालय में एक अधिकारी किसी एक क्लर्क को उसकी भूलों और दोषों के कारण अपराधी ठहराता है, जबकि वह स्वयं उन दोषों से वंचित नहीं होता। कठिनाई केवल इतनी है कि अधिकारी के सामने बेचारा क्लर्क कुछ कह नहीं सकता। फिर गुण का उपदेश किसके लिए दिया जाता है? इसी प्रकार पिता-पुत्र को उन बुराइयों के कारण

धमकाता तथा बुरा-भला कहता है, जिन्हें वह स्वयं करता है। बुरी आदतों वाले व्यक्ति ही दूसरे लोगों में उन्हीं आदतों की प्रतिस्थापना कर उनकी आलोचना करते पाये जाते हैं। यह तथ्य पुरुष के किसी एक वर्ग विशेष में ही नहीं, अपितु मानव मात्र में पाया जाता है। मैं जिस बात पर बल देना चाहता हूं वह यह है कि गुण और सदाचार वही कहलाने योग्य हैं जिन्हें हम अपने और पराये में पाने व होने की इच्छा रखते हैं। इनका उपयोग प्रायः उन लोगों को धोखा देने में रहता है जो बेचारे गरीब और समाज के स्तर से निम्न कोटि के हैं और समाजवादी समाज की स्थापना करने में तनिक भी अभ्यस्त नहीं है। इस प्रकार के अनमेल आचरण के लिए हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था ही जिम्मेदार है। जो किसी एक जाति के लिए गुण है, वहीं दूसरी जातियों के लिए दोष समझा जाता है। दुराचरण किसी जाति विशेष के लिए आज्ञा पाने योग्य हैं और दूसरी जातियों में उसका निषेध किया जाता है। दूसरों के साथ वही बर्ताव करो जो तुम दूसरों से अपने लिए करवाना चाहते हो। इस सिद्धांत का प्रतिपालन हमारी वर्ण व्यवस्था के कारण नहीं हो पाता।

अगर यह बात सत्य है कि दुराचार नाम की कोई वस्तु है, और अगर चोरी, झूठ और मायाचारी उस दुराचार के अंग समझे जाते हैं, तो इन दुराचरणों के शिकार गरीब तथा अनपढ़ जनता की अपेक्षा राजा-महाराजा, पुरोहित, व्यापारी, वकफल, राजनीतिज्ञ आदि व्यक्ति, अधिक होते हैं। शोषक वर्ग ही गरीब जनता को सताते, धोखा देते, नीचा दिखाते तथा उनकी उन्नति में बाधा पहुंचाते हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी यदि मैं यह कह डालूं कि सामान्य रूप से दुराचरण इस शोषक वर्ग के दुराचरण का अंग प्रत्यंग है। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि जनता उनका अनुकरण करती है और उन्हें आदर और आराधना के योग्य समझती है। यह सब जनता की अज्ञानता और बुद्धि विहीनता का परिचायक है।

जिस बात का उपदेश हम दूसरों को करते हैं, उसका पालन यदि हम स्वयं करें, तब उसे सदाचार की संज्ञा दी जा सकती है। जिस व्यवहार की अपेक्षा आप दूसरों से चाहते हैं, वहीं व्यवहार आप दूसरों के साथ करना सीखें। यह हिन्दुओं के लिए क्रान्तकारी सिद्धांत है। इसकी उपलब्धि केवल सुधारवादी नीति से नहीं बल्कि क्रान्ति से ही हो सकती है। कुछ ऐसी बातें है, जिनका सुधार नहीं हो सकता, परन्तु अंत अवश्य हो सकता है। हिन्दुत्व ब्राह्मण उनमें से ऐसा ही एक है।

ब्राह्मणों को आरक्षण से घृणा क्यों?

जाति-आधारित प्रतिनिधित्व देना, हर राष्ट्र और उसकी सरकार का अधिकार है। यह हर समुदाय के नागरिकों का अधिकार भी है। जाति-आधारित प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का मूल उद्धेश्य है नागरिकों के बीच की असमानता को मिटाना। जातिगत प्रतिनिधित्व एक वरदान है, जो समान नागरिकों के समाज का निर्माण करता है। अगर अगड़े व प्रगतिशील समुदाय, अन्य समुदायों की बेहतरी में रोड़े अटकाते हैं तब जाति-आधारित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को अपनाने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं बचता है। यही वह राह है, जिस पर चलकर यंत्रणा भोग रहे समुदायों को कुछ राहत मिल सकती है। जाति-आधारित प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की आवश्यकता तब स्वयमेव समाप्त हो जाएगी, जब सभी समुदायों के बीच समानता स्थापित हो जाएगी।

जबसे शासन में भारतीयों की भागीदारी की चर्चा शुरू हुई है, तभी से, ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य सभी समुदाय, जाति-आधारित प्रतिनिधित्व की मांग उठा रहे हैं। ब्राह्मणों के अतिरिक्त सभी समुदायों ने उस आंदोलन में हिस्सेदारी की, जो जाति-आधारित प्रतिनिधित्व की नीति को लागू करने की मांग को लेकर शुरू किया गया था।

ब्राह्मणों, विशेषकर तमिलनाडु के ब्राह्मणों, ने जातिगत प्रतिनिधित्व लागू करने की राह में रोड़े अटकाने का हर संभव प्रयास किया। उन्होंने षड्यंत्र किए, छल किए और अन्य हर तरीके से यह कोशिश की कि एक ऐसी नीति जो सभी पददलित समुदायों को लाभ पहुंचाने वाली थी, लागू न हो सके।

ब्राह्मण, जातिगत प्रतिनिधित्व का विरोध क्यों कर रहे हैं, यह समझना आसान है, यद्यपि उन्होंने कभी सामने आकर यह नहीं बताया कि पददलित लोगों को ऊपर उठाने में क्या बुराई है। जो लोग इसके खिलाफ हैं, वे कहते हैं कि इसे लागू नहीं किया जाना चाहिए परंतु यह नहीं बताते कि इसे क्यों लागू नहीं किया जाना चाहिए।

किसी ने अभी तक स्पष्ट शब्दों में यह नहीं बताया है कि वह आरक्षण की नीति का विरोधी क्यों है। समानता स्थापित करने में क्या गलत है? सभी को समान अवसर उपलब्ध करवाने में क्या गलत है? अगर समाजवादी समाज का निर्माण गलत नहीं है और अगर इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान असमान समाज को प्रगतिशील बनाया जाना चाहिए, तो हमारे सामने दूसरा रास्ता भी क्या है? क्या इस बात से इंकार किया जा सकता है कि समाज में कमजोर वर्ग हैं?

इसके अतिरिक्त, जब हमने समाज का धर्म, जाति और समुदाय के आधार पर वर्गीकरण स्वीकार किया है तो हम उन लोगों का रास्ता नहीं रोक सकते जो अपने धर्म, जाति या समुदाय के आधार पर कुछ विशेषाधिकार मांग रहे हैं। अगर वे अपने हितों की रक्षा करना चाहते हैं तो इसमें क्या गलत है? मैं इसमें कोई धोखेबाजी या कपट नहीं देखता।

जातिवाद ने लोगों को पिछड़ा बनाया है। जातिवाद ने बर्बादी के सिवाए हमें कुछ नहीं दिया है। जातिवाद ने हमें नीचा और वंचित बनाया है। जब तक इन बुराइयों का उन्मूलन नहीं हो जाता और सभी लोगों को जीवन में बराबरी का दर्जा नहीं मिल जाता, तब तक आबादी के आधार पर आनुपातिक प्रतिनिधित्व अपरिहार्य है। कई समुदायों ने शिक्षा के क्षेत्र में हाल ही में प्रवेश किया है। सभी लोगों को यह अधिकार होना चाहिए कि वे शिक्षा प्राप्त करें और सभ्य जीवन जीएं। हमारे लोगों को शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए और अच्छे से पढ़ाई करनी चाहिए। हमारे लोगों को सार्वजनिक सेवाओं और अन्य सभी क्षेत्रो में कुल आबादी में उनके प्रतिशत के हिसाब से उपयुक्त प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए।

इस देश में हर सौ व्यक्तियों में से केवल तीन ब्राह्मण हैं। आबादी का 16 प्रतिशत आदि-द्रविड़ हैं और 72 प्रतिशत गैर-ब्राह्मण हैं। क्या सभी को आबादी में उनके अनुपात के अनुरूप नौकरियां नहीं मिलनी चाहिए?

स्रोत : 'कलेक्टिड वर्क्स ऑफ पेरियार ईवीआर (पृष्ठ 165-166)

खण्ड - 4

सच्ची रामायण

लेखक : पेरियार रामास्वामी

अंग्रेजी संस्करण 'द रामायण : अ ट्रू रीडिंग' का हिंदी अनुवाद : राम आधार

हिंदी अनुवाद के प्रकाशक : ललई सिंह

(मूलतः तमिल में प्रकाशित पेरियार रामास्वामी की पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद 'द रामायण : अ ट्रू रीडींग' शीर्षक से 1959 में प्रकाशित हुआ। इसका हिंदी अनुवाद 1968 में 'सच्ची रामायण' नाम से किया गया।)

भूमिका

रामायण किसी ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित नहीं है। यह एक कल्पना तथा कथा है। इसके अनुसार राम न तो तमिलनाडु का निवासी था और न उससे किसी प्रकार से संबंधित था। उसके द्वारा मारा गया रावण लंका का राजा था।

राम में तमिल-सभ्यता का कण मात्र न था। उसकी स्त्री सीता तमिलनाडु की विशेषताओं से रहित, उत्तरी भारत की निवासिनी थी। तमिल के मनुष्यों को बन्दर और राक्षस कहकर उनका उपहास किया जाता है। यही बात स्त्रियों के प्रति भी है।

रामायण-युद्ध में उत्तरी भारत का कोई भी निवासी ब्राह्मण (आर्य) या देवता नहीं मारा गया।

एक शूद्र ने अपने जीवन का मूल्य इसलिए चुकाया था - क्योंकि एक आर्य-पुत्र बीमार होने के कारण मर गया था। (विस्तृत जानकारी के लिए 'शंबूक-वध नाटक' पढ़िए।) (वर्तमान में शंबूक वध पर एक अच्छी किताब जिसका नाम 'एक रुका हुआ फैसला शंबूक वध' बड़ी ही क्रांतिकारी पुस्तक है। उसे जरूर पढ़ें।)

वे सब लोग जो इस युद्ध में मारे गए, आर्यों द्वारा राक्षस कहे जाने वाले तमिलनाडु के मनुष्य हैं।

रावण राम की स्त्री सीता को घर ले गया - क्योंकि राम के द्वारा उसकी बहन 'सूर्पनखा' के अंग-भंग किए गए व उसका रूप बिगाड़ा गया। रावण के इस कृत्य के कारण लंका क्यों जलाई जाये। लंका निवासी क्यों मारे जाएं? इस कथा का उद्देश्य केवल दक्षिण की ओर प्रस्थान करना है। तमिलनाडु में किसी सीमा तक सम्मान के साथ इस कथा का विष-वपन अर्थात प्रचार, उपदेश तथा वहां के निवासियों के लिए निंध तथा पीड़ोत्पादक रहा है।

राम और सीता में किसी प्रकार की कोई दैवी तथा स्वर्गीय शक्ति नहीं है।

इस प्रकार कथित स्वतंत्रता प्राप्त कर चुकने के पश्चात गौरांगों (आर्यों) की प्रतिमाएं तथा प्रसिद्धताएं उन स्थानों में ले जाई गई और आर्यों के देवताओं के नाम

पर उनके नाम उनके नाम रख लिए गए। तमिलनाडु के जिन निवासियों की नसों में पवित्र द्रविड़ रुधिर खौलता है, उनका यह कर्तव्य है कि वे आर्यों की उस प्रतिष्ठा तथा सभ्यता, जो तमिलनाडु के विचारों और सम्मान को दूषित करती है, (उसे) मिटा देने की शपथ लें।

- पेरियार ई वी रामास्वामी

कथा प्रसंग

रामायण की घटनाएं और कथा-क्रम बहुत कुछ 'अरबी योद्धा' 'मदन कामराज' और 'पंच-तंत्र' नामक पुस्तकों के समान कल्पित है। वे मानवमात्र की समझ और गूढ़ विचारों से दूर हैं। इसके फलस्वरूप यह ढ़ढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि रामायण कोई वास्तविक कथा नहीं है। कोई भी कह सकता है कि रामायण में वर्णित तत्व निराधार, निरर्थक और अनावश्यक है। तथापि उन परिस्थितियों में जिसमें सद्‌गुण, दूरंदेश, करुणा तथा शुभेच्छाओं की शिक्षा, जिस असत्य तथा निर्मूल रूप में दी गई है, वह मानव-शक्ति तथा समझ के परे है, जबकि इस बात पर अत्यधिक जोर दिया गया है कि रामायण का प्रमुख पात्र 'राम' मनुष्य रूप में स्वर्ग से उतरा और उसे ईश्वर समझा जाना चाहिए। वाल्मीकि ने स्पष्ट कहा है कि राम विश्वास-घात, छल, कपट, लालच, कृत्रिमता, हत्या, आमिष-भोजी और निर्दोष पर तीर चलाने की साकार मूर्ति था। आगे पाठक स्पष्ट देखेंगे, कि राम तथा उसकी कथा में स्वर्गीय शक्ति नहीं है और उसके विषय में वर्णित गुण मानव-मात्र की समझ से बाहर है तथा वे तमिलनाडु के निवासियों एवं भारत के समक्ष शूद्रों तथा महाशूद्रों के लिए शिक्षा-प्रद एवं अनुकरणीय नहीं है।

कथा श्रोत

रामायण की कथा न तो धर्म-संगत है, न चेतन प्राणी के लिए उपयुक्त है। देवताओं ने चतुर्मुख ब्रह्मा से शिकायत की कि ''राक्षस लोग हमारे यज्ञों में विघ्न डालते हैं।'' ब्रह्मा ने यह बात अपने पिता विष्णु से कही। विष्णु ने राम के रूप में पृथ्वी पर अवतार लेने तथा राक्षसों के राजा रावण को मारने का निश्चय किया। यह रामायण की कथा का स्रोत (प्रारंभ) है। (बाल कांड, 5 वां अध्याय)

विष्णु ने पृथ्वी पर अवतार धारण करने के पश्चात बहुत से कष्टों और यातनाओं का अनुभव किया - जिनके कारणों को आर्यों के पवित्र पुराण वर्णन करते हैं- वे

कारण ये हैं कि -

विष्णु ने पहले बहुत से दुराचरण पूर्ण घृणित अमानवीय कार्य किए थे। जिसके दंड और दुष्परिणाम स्वरूप उसे उन ऋषियों, मुनियों द्वारा श्राप दिए गए - जिनके प्रति उसने अपराध किए थे। ये श्राप क्यों? क्योंकि उस विष्णु ने (बिरहु) मुनि की स्त्री को मार डालने का घृणित पाप किया था।

उस (विष्णु) ने मनुष्यों के समक्ष दिन-दहाड़े जालंधर की स्त्री का सतीत्व छला तथा लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न यदि राजा दशरथ से पैदा न होकर, कथित पुरोहितों द्वारा पैदा हुए - तथापि आर्यधर्म के अनुसार कोई दोष या पाप न हुआ। यह बात उनके शास्त्रों में लिखी है कि यदि कोई ब्राह्मण-स्त्री निःसंतान है - तो वह निश्चित दशाओं में किसी दूसरे आदमी से संतान उत्पन्न करा सकती है। इस बात के प्रमाण तथा समर्थन के लिए आर्यों की दूसरी पुस्तक महाभारत देखी जा सकती है। बिना यज्ञ के बहाने अपने परिवार के गुरू 'व्यास' द्वारा बहुत सी विधवा स्त्रियां अनुचित एवं शास्त्र विरुद्ध संबंधों से माताएं बन गई थीं। धृतराष्ट्र व पांडु इसी कोटि की संतान थी। महाभारत में इस प्रकार के बहुत से जन्म पढ़ने को मिलते हैं।

सीता को प्राप्त करने के लिए सीता की माता ने किसी अपरिचित मनुष्य से संभोग किया था और उत्पन्न बच्चे को एक जंगल में फेक दिया था। सीता ने स्वयं स्वीकार किया है, कि मेरे माता-पिता के अज्ञात होने के कारण मेरा विवाह विलंब से हुआ है।

पुराणों में एक विचित्रता और पढ़ी जाती है, कि कई स्त्रियों ने मनुष्यों से नहीं- बल्कि जानवरों से भी गर्भ धारण किए थे।

इन बातों से प्रकट है, कि संतान उत्पन्न कर सकने में 'यज्ञ' का कोई महत्व तथा शक्ति नहीं है - बल्कि ये इच्छित आनंद, उत्सव मनाने, शराब पीने और गोस्त खाने के साधन-मात्र थे।

अब हम रामायण की विशेषताओं पर ध्यान दें - जैसा कि हम उसमें पढ़ते हैं।

दशरथ

यज्ञ के पश्चात हमें दशरथ के द्वारा राम-राज्याभिषेक की तैयारी की ओर दृष्टि डालनी होगी। इस संबंधित अध्याय में राजा दशरथ की स्त्रियों, पुत्रों, मंत्रियों और गुरुओं की धर्माचरण संबंधी नीचता का वर्णन किया गया है।

1 - कैकेई से ब्याह करने के पहले दशरथ ने उससे प्रतिज्ञा की थी, कि उससे उत्पन्न पुत्र को अयोध्या की राजगद्दी दी जाएगी। कुछ कथाओं में वर्णन किया गया है कि ब्याह के समय दशरथ ने अपना राज्य कैकेई को सौंप दिया था और दशरथ उसका प्रतिनिधि मात्र होकर शासन करता था।

2 - डॉ. सोमसुद्रा बरेथियर एम.ए., बी.एल. की अपनी पुस्तक 'कैकेयी की शुद्धता और दशरथ की नीचता' में मौलिक कथा की कलई खोली गई है।

3 - राजा दशरथ के उक्त प्रभाव से राम और उसकी मां कौशल्या अनभिज्ञ न थी। वृद्ध राजा ने राम को प्रकट रूप से बता दिया था, कि राम राज्यतिलकोत्सव के समय कैकेई के पुत्र भरत का अपने नाना के घर चला जाना शुभ संकेत है। दशरथ ने भरत को उसके राज्याधिकार से च्युत रखने के नीचतापूर्ण उद्देश्य से उसे उसके नाना के यहां दस वर्ष तक रखा था। (अयोध्या कांड 14 अध्याय) अयोध्या में बिना कभी वापिस आए दस वर्ष के दीर्घ-काल तक भरत को अपने नाना के यहां रहने की कोई आकस्मिक आवश्यकता नहीं थी। 'मंथरा' के चरित्र के विषय में वाल्मीकि लिखते हैं, कि ''दशरथ ने अपनी पूर्व सुनिश्चित योजनानुसार भरत को अपने नाना के यहां भेज दिया था। भरत का अयोध्या राजधानी में शीघ्र उपस्थिति उसे (भरत को) अयोध्या' निवासियों की सहानुभूति प्राप्त करने में असमर्थ बना देती। दशरथ की यह भी धारणा थी, कि भरत को (यदि ठीक राज्याभिषेक के) समय पर उसके नाना के यहां पठवा देने में मुझ दशरथ की लोगों से शत्रुता बढ़ जावेगी।''

4 - एक दिन पूर्व ही दशरथ ने अगले दिन राम राज्याभिषेक की झूठी घोषणा

कर दी थी।

5 - यद्यपि मंत्री वशिष्ठ व अन्य गुरुजन भली-भांति और स्पष्टतया जानते थे, कि भरत राज्य-गद्दी उत्तराधिकारी है - तो भी चतुर, धूर्त व ठग लोग राम को गद्दी देने की मिथ्या हामी भर रहे थे।

6 - राम की माता कौशल्या भी अपने देवी-देवता को मनाया करती थी कि मेरे पुत्र राम को राज्य-गद्दी मिले।

7 - पुरोहितों व पंडितों को सूचना तथा उनके परामर्श के बिना और कैकेई, जनक, भरत एवं शत्रुघ्न आदि को बिना आमंत्रित किए दशरथ ने राजतिलक का शीघ्र प्रबंध कर दिया। (अयोध्या कांड प्रथम अध्याय)

8- दशरथ ने राम से गुप्त रूप से कहा था कि यदि भरत के लौट आने के पहले भरत की अनुपस्थिति में ही भरत के लिए राज-तिलकोत्सव स्थगित कर देने की स्थिति उत्पन्न हुई तो मैं दशरथ इस बात को बिना किसी विरोध के शांति-पूर्वक स्वीकार कर लूंगा, क्योंकि भरत उदार व अच्छी प्रकृति का है और सज्जन होने के नाते जो कुछ पहले हो जावेगा उसे स्वीकार कर लेगा। (अयोध्या कांड 14 अध्याय)

9 -कैकेई ने हठ किया, कि उसका पुत्र राजा बनाया जावे और इसकी सुरक्षा का विश्वास दिलाने के लिए राम को बनवास दिया जाए - तो दशरथ उसे मनाने के लिए उसके पैरों पर गिर पड़ा और उससे प्रार्थना करने लगा, कि मैं तुम्हारी इच्छानुसार कोई भी तुच्छतम कार्य करने के लिए तैयार हूं - राम को वनवास भेजने का हठ न करो। (अयोध्या कांड 12 अध्याय)

10 - दशरथ ने कैकेई से कहा कि, ''तुमने पूर्व आयोजित सभी प्रयत्न विफल कर दिए।'' उसने इस संबंध में कैकेई से एक शब्द भी नहीं कहा कि राम मेरा प्रथम पुत्र होने के कारण राज-गद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी है। जब अंत में दशरथ कैकेई को मनाने को सभी प्रयत्न निष्फल हो गए - तब दशरथ ने राम को अपने पास बुलाया और उसके कानों में चुपके से कहा, मेरा कोई बस न चल सकने के दुष्परिणाम-स्वरूप अब मैं भरत को राज-तिलक करने को तैयार हो गया हूं। अतः तुम्हारे ऊपर कोई बंधन नहीं है। तुम मुझे गद्दी से उतार कर अयोध्या के राजा हो सकते हो।

11 - सभी प्रयत्न निष्फल हो चुकने के पश्चात दशरथ ने सुमंत्र को आज्ञा दी कि कोषागार का संपूर्ण धन, खत्तियों का अनाज, व्यापारी प्रजा व वेश्याएं राम के साथ वन को भिजवाने का प्रबंध करो। (अ. का. 36)

12 - कैकेई ने इस पर भी आपत्ति प्रकट की और विवादास्पद तर्क उपस्थिति करते हुए दशरथ को असमंजस में डाल दिया कि तुम केवल देश चाहते हो न कि उसकी संपूर्ण संपत्ति भी। (अयोध्या कांड 36)

13 - दशरथ ने कोषागार में रखे हुए संपूर्ण आभूषण सीता को सौंप दिए।

14 - राम और सीता को वनवास भेजने के कारण घबड़ाकर दशरथ ने कैकेई ने ऊपर गालियों की बौछार की - किंतु दशरथ को राम के साथ लक्ष्मण को वनवास भेजने में कोई बेचैनी नहीं हुई। लक्ष्मण की स्त्री का कोई वर्णन नहीं है।

स्वर्गीय श्री सी आर श्रीनिवास आयंगर ने सन 1925 ई में प्रकाशित वाल्मीकि रामायण का संस्कृत से तमिल भाषा में अपने अनुवाद 'अयोध्या कांड पर टिप्पणी' नामक पुस्तक (के द्वितीय संस्करण) में लिखा है, कि दशरथ स्वात्मघाती था। दशरथ ने सुमित्रा व कैकेई के कार्यों पर हस्ताक्षर कर दिए थे। लेखक ने दशरथ पर बीस दोषारोपण किए हैं -

1 - दशरथ ने बिना विचार किए हुए कैकेई को दो वरदान देने की भूल की।

2 - कैकेई से विवाह करने के पूर्व दशरथ ने उससे उत्पन्न पुत्र को राजगद्दी देने की भूल की।

3 - साठ वर्ष का दीर्घ समय व्यतीत कर चुकने के पश्चात भी अपने पशुवत विचारों का दास बने रहने के दुष्परिणाम स्वरूप अपनी प्रथम स्त्री कौशल्या तथा द्वितीय स्त्री सुमित्रा के साथ वह व्यवहार न कर सका, जिसकी वे अधिकारिणी थीं।

4 - कैकेई के दिए गए मूर्खता-पूर्ण वचनों ने उससे कैकेई की खुशामद कराई।

5 - अपनी प्रजा के समक्ष राम को राज-तिलक करने की घोषणा कैकेई व उसको पिता को दिए गए वचनों का उल्लंघन है।

6 - कैकेई की स्वेच्छानुसार उसे दिए गए वरदानों के फल-स्वरूप राम को गद्दी देने की अपनी पूर्ण घोषणा से वह निराश हो गया।

7 - इन पापों ने दशरथ द्वारा भरत को राजगद्दी देने के असंभव वचनों को निरस्त कर दिया।

8 - वशिष्ठ ने परामर्श दिया था कि इक्ष्वाकु-वंशीय-परंपरानुसार परिवार के जेष्ठ पुत्र को राजगद्दी मिलनी चाहिए, किंतु कैकई के प्रेम में पागल दशरथ ने उस परामर्श को लात से ठोकर मार कर अलग कर दिया।

9 - दशरथ को अपनी मूर्खता का प्रायश्चित करना तथा कुछ मूल्य चुकाना चाहिए था - किंतु उलटे उसने कैकेयी को श्राप दिया।

10 - वह भूल गया कि मैं कौन हूं क्या हूं तथा मेरी स्थिति क्या है और कैकई के पैरों में गिर पड़ा।

11- सुमंत्र और वशिष्ठ जो दशरथ के वचनों से अवगत थे, कैकेयी के प्रति किए गए वचनों की ओर संकेत कर सकते थे, दशरथ को सचेत कर सकते थे, राम को राजगद्दी न देने का प्रमाण दे सकते थे - किंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया।

12 - वशिष्ठ ने जो कि भविष्यवक्ता थे, रामराज्य तिलकोत्सव के शुभ अवसर का शीघ्रता से निश्चय कर दिया - यद्यपि वह भली-भांति जानता था कि यह योजना निष्फल हो जाएगी।

13 - कैकेयी अपना न्यायसंगत स्वत्व अधिकार मांगती थी। किंतु सिद्धार्थ, सुमंत्र व वशिष्ठ उसे विपरीत परामर्श देने उसके पास दौड़ गए। इस पर निष्फल होने पर उन्होंने उसे फटकारा।

14 - राम के वन जाने के पहले दशरथ अपनी प्रजा व ऋषियों की अनुमति प्राप्त कर चुका था, कि राम वन को ना जावे - फिर भी उसने दूसरों की कोई चिंता किए बिना राम को बनवास भेज दिया। यह दूसरों की इच्छा का अपमान करना तथा घमंड है।

15 - इसीलिए अपमानित प्रजा व ऋषियों ने इस विषय में ना कोई आपत्ति की और ना राम को वन जाने से रोका।

16 - राम अपनी उत्पत्ति तथा दशरथ द्वारा भरत को राजगद्दी देने संबंधी कैकेई को दिए गए वचनों को भली भांति जानता था - तथापि यह बात बिना अपने पिता को बताये मौन रहा और राजगद्दी का इच्छुक बना रहा।

17 - दशरथ ने राम से कहा कि ''हमारे सभी प्रबंध और कार्यक्रम निरस्त हो जाएंगे। दूसरे भरत उदार, सरल हृदय, धर्मात्मा तथा बुद्धिमान है। भरत को अपने नाना के यहां गए हुए बहुत समय हो गया है। दृढ़ तथा निश्चय विचार वाले परदेसी व्यक्ति का भी मस्तिष्क परिवर्तित हो सकता है।'' अतः दशरथ का यह विचार था कि भरत के आने के पहले ही राम-राज्य तिलकोत्सव समाप्त हो जाए (अयोध्या कांड 4 अध्याय) इस प्रकार भरत को अपना उचित अधिकार प्राप्त करने में धोखा दिया गया और चुपके से राम को राज-तिलक करने का निश्चय किया गया। राम ने भी इस तरह चुपचाप स्वीकार कर लिया।

18 - जनक को आमंत्रण न दिया गया था - क्योंकि कदाचित भरत को राजगद्दी दे दी जाती - तो राम के राज्याधिकार होने के कारण वह असंतुष्ट हो जाता।

19 - कैकेई के पिता को निमंत्रण न दिया गया था - क्योंकि यदि भरत के प्रति किए गए वचनों को न मान कर यदि राम को गद्दी दे दी जाती तो वह नाराज हो जाता।

20 - इन्हीं उपरोक्त कठिनाइयों के कारण अन्य राजाओं को राम राज-तिलकोत्सव में नहीं बुलाया गया था। कैकेयी व मंथरा के उचित कार्यों तथा अधिकारों के विषय में पर्याप्त तर्क है। बिना इस पर विचार किए हुए कैकेई आदि पर दोषारोपण करना उन्हें गाली देना न्याय-संगत नहीं है।

राम

अब हमें राम और उसके चरित्र के विषय में विचार करना चाहिए।

1 - राम इस बात को भली-भांति जानता था कि कैकेई के ब्याह के पूर्व ही अयोध्या का राज्य कैकेई को सौंप दिया गया था, यह बात राम ने स्वयं भरत को बताई थी। (अयोध्या कांड 107 अध्याय)

2 - राम अपने पिता, कैकेई व प्रजा के प्रति सर्व-प्रिय व्यवहार, अच्छा स्वभाव एवं शील केवल राज-गद्दी को अन्याय से छीन लेने के लिए (दिखावटी) था। इस प्रकार राम सब की आस्तीन का सांप बना हुआ था।

3 - भरत की अनुपस्थिति में अपने पिता द्वारा राज-गद्दी मिलने के प्रपंचों से राम स्वयं संतुष्ट था।

4 - कहीं ऐसा न हो कि राजगद्दी मिलने के मेरे सौभाग्य के कारण लक्ष्मण मुझसे ईर्ष्या तथा द्वेष करने लगे। इस बात से डरकर, राम ने लक्ष्मण को फांस कर उससे मीठी-मीठी बातें बनाकर उससे कहा, कि 'मैं केवल तुम्हारे लिए राज-गद्दी ले रहा हूं - किंतु अयोध्या पर राज्य वास्तव में तुम्ही करोगे।' अंत में (राजा बन जाने के बाद राम ने) लक्ष्मण से राजगद्दी के विषय में कोई संबंध नहीं रखा। (अयोध्या कांड 4 अध्याय)

5 - राज-तिलकोत्सव सफलता-पूर्वक संपन्न हो जाने में राम के हृदय में आद्योपांत संदेह बना रहा था।

6 - जब दशरथ ने राम से कहा, कि "राज तिलक तुम्हें न किया जाएगा, तुम्हें वनवास जाना पड़ेगा" - तब राम ने गुप्त रूप से शोक प्रकट किया था। (अयोध्या कांड 19 अध्याय)

7 - उसने शोक प्रकट करते हुए अपनी माता से कहा था, कि 'ऐसा प्रबंध किया गया है, कि मुझे राज्य से हाथ धोना पड़ेगा। राज्य-वंशीय-भोग-विलास व स्वादिष्ट-गोश्त की थालियां छोड़कर मुझे वनवास जाना होगा और वन के कंद-

मूल-फल खाने पड़ेंगे।' - (अयोध्याकांड 20 अध्याय)

8 - उसने भारी हृदय से अपनी माता व स्त्री से कहा था, कि ''जो गद्दी मुझे मिलनी चाहिए थी, वह मेरे हाथों से निकल गई और वनवास जाने के लिए मेरा प्रबंध किया गया है।'' (अयोध्याकांड 20, 26, 94 अध्याय)

9 - उसने लक्ष्मण के पास जाकर पिता को दोषी तथा दंडनीय बताते हुए कहा कि, ''क्या कोई ऐसा मूर्ख होगा- जो अपने उस पुत्र को वनवास दे - जो सदैव उसकी आज्ञाओं का पालन करता रहा है।'' (अयोध्या कांड 56)

10 - राम ने बहुत सी स्त्रियों के साथ विवाह किया था। यह बात श्री सी.आर. श्रीनिवास आयंगर द्वारा सन् 1925 ई. में प्रकाशित वाल्मीकि-रामायण के अनुवाद के द्वितीय संस्करण में पाई जाती है। (अयोध्या कांड 8 अध्याय, पृष्ठ 28) राम ने सीता के साथ केवल रानी बनाने के लिए विवाह किया था। श्री मन्मथनाथ दातार लिखते हैं, कि आनंद लेने के लिए राम की स्त्रियां नौकरों की स्त्रियों का साथ किया करती थी। इस प्रकार कैकेई की बहू तथा भरत की स्त्री दुख में डूबी रहती थी। राम की स्त्रियों के वर्णन रामायण के अनेक स्थलों पर आया है। इस प्रकार राज-वंशीय नियमानुसार राम ने इंद्रिय का आनंद लेने के लिए दूसरी स्त्रियों के साथ विवाह किया था।

11 - यद्यपि राम के प्रति कैकेई का प्रेम संदेह युक्त न था। किंतु राम का प्रेम कैकेई के प्रति कपटी और बनावटी था।

12 - राम कैकेई के प्रति स्वाभाविक एवं सच्ची होने का बहाना करता रहा और अंत में उसने कैकेई पर दुष्ट स्त्री होने का आरोप लगाया। (अयोध्याकांड 31, 53 अध्याय)

13 - यद्यपि कैकेई दुष्टता-पूर्ण तथा नीच विचारों से रहित थी - तथापि राम ने उस पर दोषारोपण किया, कि वह मेरी माता के साथ नीचता-पूर्ण व्यवहार कर सकती है। - (अयोध्या कांड 31, 53 अध्याय)

14 - वह मेरे बाप को मरवा सकती है। इस प्रकार उसने कैकेई पर दोषारोपण किया। (अयोध्या कांड 53 अध्याय)

15 - वनवास में जब कभी राम को निकट भविष्य के दुःखपूर्ण समय से सामना करना पड़ा - तो उसने यही कहा, कि अब कैकेई की इच्छा पूर्ण हुई होगी, अब वह संतुष्ट हुई होगी।

16 - राम ने लक्ष्मण से वनवास में कहा था, कि चूंकि हमारे बाप वृद्ध व निर्बल हो गए हैं, और हम लोग वहां आ गए। अब भरत अपनी स्त्री सहित बिना किसी विरोध के अयोध्या पर शासन कर रहा होगा। इस बात को उसकी राज-गद्दी और भरत के प्रति ईर्ष्या की स्वाभाविक तथा निराधार अभिलाषा प्रकट होती है। (अयोध्या कांड 53 अध्याय)

17 - जब कैकेई ने राम से कहा, ''हे राम! राजा ने मुझे तुम्हारे पास तुम्हें यह बताने के लिए भेजा है, कि भरत को राजगद्दी मिलेगी और तुम्हें वनवास।'' तब राम ने उससे कहा, कि राजा ने मुझसे यह कभी नहीं कहा, कि ''मै भरत को राजगद्दी दूंगा।'' (अयोध्या कांड 19 अध्याय)

18 - उसने अपने पिता को मूर्ख और पागल कहा था। (अयोध्या कांड 53 अध्याय)

19 - उसने अपने पिता से प्रार्थना की थी, कि ''जब तक मैं वनवास से वापिस न लौट आऊं - तब तक तुम अयोध्या का राज्य करते रहो और किसी को राजगद्दी पर न बैठने दो।'' इस प्रकार उसने भरत के सिंहासनरूढ़ होने में अड़चन लगा दी।'' (अयोध्या कांड 34 अध्याय)

20 - राम ने यह कह कर सत्यता व न्याय का गला घोंटा, कि ''यदि मुझे क्रोध आया तो मैं स्वयं अपने शत्रुओं को मार या कुचल कर स्वयं राजा बन सकता हूं - किंतु मैं यह सोचकर रुक जाता हूं कि प्रजा मुझसे घृणा करने लगेगी।'' (अयोध्या कांड 53 अध्याय)

21 - उसने अपनी स्त्री सीता से कहा, कि ''तुम बिना भरत की रुचि समझे हुए उसके लिए भोजन बनाती हो, यह बाद में हमारे लिए बहुत लाभदायक होगा।'' (अयोध्या कांड 26 अध्याय)

22 - राम के वनवास चले जाने का समाचार सुनकर भरत उसे अयोध्या लौट जाने के लिए वन में उसके पास गया। भरत को देखकर राम ने उससे प्रश्न किया, कि ''हे भरत! क्या तुम प्रजा द्वारा खदेड़ कर भगाए गए हो? क्या तुम अनिच्छा से हमारे बाप की सहायता करने आए हो?'' (अयोध्या कांड 1000 अध्याय)

23 - राम ने भरत से पुनः कहा कि अब तुम्हारी मां का मनोरथ सिद्ध हो गया होगा, क्या वह प्रसन्न हैं। (अयोध्या कांड 1000 अध्याय)

24 - भरत ने राम को विश्वास दिलाया, कि मैंने सिंहासन प्राप्त करने के स्वत्व को त्याग दिया है। तब राम ने रहस्योद्घाटन करते हुए भरत को बताया कि दशरथ अयोध्या का राज्य पहले ही तुम्हारी मां को सौंप चुका है। (अयोध्या कांड 107 अध्याय)

25 - भरत वन में अयोध्या की राजगद्दी राम को सौंपकर और उसकी खड़ाऊ ले कर अयोध्या वापिस लौटा, उसने उन्हें सिंहासन पर रखकर चौदह वर्ष तक एक तपस्वी का जीवन व्यतीत किया, भरत इस चिंता में क्षीण-काय हो गया कि राम चौदह वर्ष के पश्चात भी अयोध्या में वापस न आएगा। अतः उसने चिता में जलने की तैयारी की।

राम ने ऐसे सज्जन और सच्चे व्यक्ति पर संदेह किया, राम चौदह वर्ष वनवास भोग चुकने के पश्चात जब वापस अयोध्या के किनारे आया- तब उसने भारत को

यह सूचित करने के लिए (सर्वश्रेष्ठ योद्धा) हनुमान को उसके पास भेजा कि अब मैं (राम) एक विशाल सेना लेकर विभीषण एवं सुग्रीव सहित आ गया हूं। इस समाचार को सुनकर भरत के मुखारविंद पर पड़े हुए प्रभाव व सभी प्रकार के भोग तथा प्रसन्नता से परिपूर्ण अयोध्या को त्याग कर उसके (राम के) पास शीघ्र चल देने की बात पर ध्यान दीजिए - क्योंकि सभी प्रकार के भोगोपभोग और सर्व-सुख-संपन्न अयोध्या को छोड़कर तत्काल (राम के स्वागत हेतु) चल देना अति दुष्कर कार्य है। (उत्तर कांड 127 अध्याय)

26 - राम सीता के चरित्र पर संदेह करता रहा और अग्नि-परीक्षा देकर उससे अपने सतीत्व को सिद्ध करने को कहा। राम की व्यवस्थानुसार सीता को यह कष्ट सहन करना पड़ा इसके बावजूद राम ने सीता को गर्भवती पाया। अतः सीता के सतीत्व का संदेह प्रजा की चर्चा का विषय बना रहा। सीता के सतीत्व के संबंध में प्रजा के इस प्रकार के विचार के कारण उसी समय सीता को वन में छोड़ देने के अपने निर्णय को बिना सीता को बताए उसे गर्भवती दशा में ही जंगल में छुड़वा दिया था।

27 - जब वाल्मीकि ने सीता के पवित्र सतीत्व के विषय में दृढ़तापूर्वक राम से कहा तो भी राम को विश्वास नहीं हुआ और सीता को पृथ्वी के अंदर समा जाना पड़ा।

28 - यह जानते हुए भी कि सुग्रीव व विभीषण अपने भाइयों को मार कर राजगद्दी पर अधिकार कर लेने के उद्देश्य से उसके पास आए हैं - फिर भी राम ने उन (स्वार्थियों) से मित्रता कर ली।

29 - उसने विश्वासघाती भाई की भलाई के लिए उस बालि को छिपकर मारा - जिसने पीठ पीछे भी राम का अहित नहीं किया था। उस राम की जो - बालि के सामने युद्ध करने का साहस नहीं कर सकता था, मूर्ख ब्राह्मणों द्वारा अत्यधिक प्रशंसा की गई है - वह भी उसे एक शूर-वीर मानकर।

30 - विभीषण द्वारा उसकी (राम को) आधीनता स्वीकार कर लेने पर भी अज्ञानतावश राम ने अपनी बुरी भावनाओं तथा छल-कपट को प्रकट कर दिया। राम ने भरत की प्रशंसा की कि भरत चाहे कितना दुष्ट व पापी क्यों न हों - किंतु उसके सदृश्य बड़े भाई का आज्ञाकारी तथा धर्म-भक्त कोई नहीं है। इस प्रकार राम ने व्यंग्यात्मक ढंग से भरत को दुष्ट कहा। (अयोध्या कांड 17 अध्याय)

31 - बालि को मारते हुए अपने इस कार्य को न्यायोचित बताते हुए राम ने उस (बालि) से व्याख्या की कि ''जहां तक जानवरों का संबंध है, यहां धर्म का विचार नहीं करना चाहिए'' - तो भी राम ने बालि को इस कारण मारा कि वह चेतन जीव के समान व्यवहार नहीं करता था। बालि के प्रति आरोपित दोषों के प्रति उसे कुछ भी कहने का अवसर नहीं दिया गया। राम ने बालि को पूर्णतया सुग्रीव के स्वार्थ-

पूर्ण कथनानुसार मारा।

32 - राम ने बहुत सी स्त्रियों के कान, नाक व स्तन इत्यादि काट कर उन्हें कुरूप बना दिया था और उन्हें बहुत यातनाएं दी। (सूर्पनखा और अयामुही)

33 - राम ने बहुत सी स्त्रियों को मार डाला था। (ताड़का और थदगाई)

34 - राम ने कई अवसरों पर स्त्रियों को गालियां दी।

35 - राम ने स्त्रियों के प्रति ऐसा कहते हुए उन्हें अपमानित किया कि उन पर विश्वास नहीं करना चाहिए। उन्हें गुप्त भेद नहीं बताना चाहिए। (अयोध्या कांड 100 अध्याय)

36 - राम हमेशा अनुचित विषय भोग में तल्लीन रहता था।

37 - राम ने अनावश्यक रूप से कई जीवों को मारा व उन्हें खा गया।

38 - राम ने कहा था, कि मैं केवल राक्षसों को मारने के लिए वन गया था। दूसरे मैंने राक्षसों के संहार करने का दूसरों को वचन दिया था। (अयोध्या कांड 100 अध्याय)

39 - राम ने राक्षसों की लड़ाई में लाने का निश्चय किया और सीता के विरोध करने पर भी उसने रावण के देश में प्रवेश किया। (आरण्य 9)

40 - कुंभकरण से लड़ते हुए राम ने कहा कि लोगों से प्रेरित होकर मैं केवल राक्षसों का वध करने हेतु वन में आया हूं। (आरण्य 29 अध्याय)

41 - स्वार्थपूर्ण उद्देश्य से राम ने अयोग्य एवं कपटी सुग्रीव को व्यर्थ ही आत्मसमर्पण कर दिया, कि मुझे स्वीकार करो। मुझ पर दया करो।

42 - यह जानते हुए कि विभीषण ने अपने भाई रावण को धोखे से पकड़ा दिया है फिर भी राम ने विभीषण का पक्ष लिया। (युद्ध कांड 17)

43 - लंका का राज्य पहले से ही विभीषण को देने का वचन देकर राम ने अंगद को रावण के पास यह सूचना देने के लिए भेजा था कि यदि रावण सीता को लौटा देगा तो मैं लंका पर चढ़ाई नहीं करूंगा और लंका उसके लिए छोड़ दूंगा। (युद्ध कांड 18 अध्याय)

44 - भरत, कैकेई, प्रजा व गुरू आदि सभी वन में राम के पास गए और राम से अयोध्या लौट चलने का आग्रह किया किंतु सहृदय राम ने उत्तर दिया कि मैंने अपने पिता के वचनों का पालन करने का निश्चय कर लिया है और मैं किसी का कहना न मानूंगा। इस प्रकार उसने लौटने से इनकार कर दिया और उसी राम ने अपने पिता के वचनों का तिरस्कार करके अयोध्या का राजा बनना स्वीकार कर लिया। (दशरथ के प्रति भरत राजगद्दी देने का वचन)(युद्ध कांड 130 अध्याय)

45 - राम केवल गद्दी प्राप्त करने का इच्छुक था - बल्कि वह अपने पिता के वचनों के अनुसार वन जाने के समय से ही, पिता के वचनों का पालन करने हुए वन में रहकर, अयोध्या लौटने पर स्वयं राजा बनना चाहता था। राम को गद्दी पर

बैठने की आशा, चिंता तथा इच्छा के अतिरिक्त कुछ ज्ञान न था। राम ने समय-समय पर ये विचार अपनी बातचीत में प्रकट किए।

46 - शूद्र होकर तपस्या करने के कारण राम ने शंबूक का कत्ल किया। (उत्तर कांड 76 अध्याय)

47 - एक साधारण मनुष्य की भांति राम-लक्ष्मण को एक नदी (गुप्तार घाट पर सरयू नदी) में फेंककर स्वयं (उसी) नदी में गिर कर मर गया। (उत्तर कांड 106 व 110 अध्याय) तत्पश्चात राम ने उपेंद्र (विष्णु) के रूप में अवतार लिया।

48 - संस्कृत श्लोक में वर्णन है कि राम ने अपने दाहिने हाथ को संबोधन करते हुए कहा कि ''क्या तू राम का अंग नहीं है? तूने बीमार ब्राह्मण-पुत्र को जीवित करने के लिए एक निर्दोष-शूद्र (शंबूक) का बिना किसी हिचकिचाहट के निर्दयतापूर्वक वध कर दिया।

संकेत - यदि आज राम सदृश्य राजा होते - तो शूद्र कहे जाने वाले लोगों की (उपरोक्त घृणित कार्य को देखकर या सुनकर) क्या मनोदशा होती?

49 - राम ने जो धनुष तोड़ा था, वह शिव का था और वह पहले से ही टूटा था। (देखिए अबिदहंस चिंतामणि नामक पुस्तक के पेज 157, 331, 571, 663, 894, 1151, 1173 व 1194)

50 - विभिन्न रामायणों और परशुराम के द्वारा समर्थन किया गया है जब राम ने धनुष तोड़ा था - उस समय राम की अवस्था माता कौशल्या के अनुसार पांच वर्ष, पिता दशरथ के अनुसार दस वर्ष और उसकी स्त्री सीता के अनुसार बारह वर्ष की थी। कुछ भी हो - विभिन्न कथाओं के अनुसार धनुष पहले से ही टूटा था।

डॉक्टर सोमसुन्द्रा बरेथियर का दृष्टिकोण –

1 - वाल्मीकि-रामायण के अनुसार राम कोई धार्मिक व्यक्ति न था। उसका अनेक कपटपूर्ण कार्यों में हाथ था।

2 - राम इस बात को पूर्णतया जानता था कि अयोध्या के राज्य का वास्तविक अधिकारी मैं (राम) न होकर भरत ही उस राज्य का कानून से अधिकारी है।

3 - राम के पिता दशरथ ने भरत की माता कैकेई से विवाह करने के पूर्व ही उसे वचन दे दिया था कि कैकेई के उत्पन्न पुत्र को ही अयोध्या का राजा बनाया जाएगा। केवल इसी शर्त पर कैकेई के पिता ने दशरथ को कैकेई दी थी।

4 - राम ने स्वयं भरत से इस बात का संकेत दिया था और राम ने भरत से प्रार्थना की थी कि वह अपनी मां पर दोषारोपण न करें। उक्त बात राम की मां, ऋषियों, गुरु व मंत्रियों को विदित थी।

5 - संक्षेप में राम की माता, ऋषि, गुरु व मंत्री अयोध्या की राजगद्दी को भरत से छीन कर उसे राम को दिलाने में दशरथ के घृणित व कपट-पूर्ण षडयंत्र के सह

अपराधी थे।

आबेल मेनन नामक एक अमेरिका निवासी के प्रकाशित रूसी समाचार-पत्र के अनुसार रामायण

अमेरिका निवासी व्याख्या करता है कि शिकागो गैंगस्टर की प्रकृति का राम और रावण नामक राक्षस द्वारा ले जाए जाने में प्रसन्न सीता तुच्छ हृदय की बालिका थी। (देखिए बीस नवंबर सन उन्नीस सौ चौवन इस्वी) वाल्यूम नंबर 13, जिल्द नंबर 263, पृ 2 का 'सोवियत यूनियन' नामक समाचार पत्र।)

सीता

आओ अब हम सीता के चरित्र का निरीक्षण करें। संपूर्ण रामायण में मुश्किल से एक शब्द सीता की प्रशंसा में लिखा गया है -

1 - वह राम की अपेक्षा आयु में बड़ी है। उसका जन्म संदेहजनक और आपत्ति युक्त था। (अयोध्या कांड 66 अध्याय)

2 - वह कहती है कि मैं धूल में पाई गई इसीलिए मेरे माता-पिता न होने की वजह से बहुत दिनों तक कोई मुझसे प्रेम करने को तैयार न होने के कारण मेरी अवस्था बड़ी हो गई।

3 - विवाह हो जाने के पश्चात कुछ समय बाद वह भरत द्वारा अलग कर दी गई।

4 - राम ने सीता को बताया कि तुम भरत द्वारा प्रशंसा की पात्र नहीं हो। (अयोध्या कांड 26 अध्याय)

5 - सीता ने राम को स्वयं बताया कि मैं उस भरत के साथ नहीं रहना चाहती, जो मुझसे घृणा करता है।

6 - वह अपने पति (राम) को सनकी तथा मूर्ख कहा करती थी।

7 - वह राम से कहती थी कि तुम मानवीय गुणों से रहित मनुष्य हो।

8 - तुम आकर्षण-शक्ति तथा हाव-भाव से रहित हो।

9 - तुम उस स्त्री व्यापारी से अच्छे नहीं हो अपनी स्त्री को किराये पर उठाकर जीविका चलाता हो, तुम मुझ से लाभ उठाना चाहते हो।

10 - सीता ने यह जानकर कि राम हमेशा मेरे चरित्र के विषय में संदेह किया करता है। सीता ने कहा - राम! तुम मुझे बचाने वाले हो, मैं केवल तुम्हारे प्रेम के अतिरिक्त किसी के प्रेम पर विश्वास नहीं करती हूं, मैंने इस बात को कई बार तुम्हारी शपथ खाकर कहा - तथापि मुझ पर विश्वास नहीं करते।

11 - राम ने कहा, मैं तुम्हारी परीक्षा कर चुका हूं। (अयोध्या कांड 3 से 11

अध्याय)

12 - राम ने सीता का ठाठ-बाट और नीचता का स्मरण कर सीता से कहा कि तुम्हे अपने आभूषण उतार देने चाहिए - यदि तुम मेरे साथ वनवास चलना चाहती हो। (अयोध्या कांड 30 अध्याय)

13 - सीता ने राम के कथनानुसार ही किया - किंतु अन्य आभूषण पहने रही। (अयोध्या कांड 39 अध्याय)

14 - कौशल्या जो कि सीता के चरित्र को जानती थी, सीता से एक सज्जन तथा सुचरित्र महिला की भांति आचरण करने को कहा, कभी अपने पति का अपमान न करना। सीता ने अपनी सास को असभ्यतापूर्ण उत्तर देते हुए कहा कि मैं यह सब जानती हूं और उसने अपने आभूषण नहीं उतारे। (अयोध्या कांड 39 अध्याय)

15 - जब राम और लक्ष्मण वल्कल वस्त्र (पेड़ों की छाल के कपड़े) धारण किए हुए थे, तब सीता ने ऐसे वस्त्र पहनने से इनकार कर दिया। (अयोध्या कांड 37 अध्याय)

16 - दूसरी स्त्रियों ने जो सीता के वन जाने की अनिच्छा से अवगत थी। सीता के प्रति दयालुता प्रकट की और उसे अपने साथ न ले जाकर यहीं (अयोध्या में) छोड़ देने की राम से प्रार्थना की तो भी राम ने सीता को छाल के कपड़े पहनने के लिए बाध्य किया और उसे वन में साथ ले गए - जैसा कि कैकेई दूसरी स्त्रियों के विचारों से सहमत न थी। (अयोध्या कांड 37-38 अध्याय)

17 - तथापि सीता ने दिए गए संपूर्ण परामर्श की ओर ध्यान न दिया। उसने सुंदर वस्त्र और आभूषण पहिने। इससे स्पष्ट है कि भरत सीता से घृणा करता था और यह कि कैकेई यह न चाहती थी कि सीता अयोध्या में रहे। सीता को वन ले जाने की यही उपरोक्त कारण है।

18 - वनवास जाते समय नदी (गंगा) पार करते हुए सीता ने गंगा नदी से प्रार्थना की थी, कि हे नदी गंगा, यदि मैं सकुशल लौट आऊंगी तो तुम्हें हजारों गाएं और मदिरा (शराब) से परिपूर्ण बर्तन चढ़ाऊंगी। (अयोध्या कांड 52 अध्याय)

19 - वनवास में जब कभी सीता निकट भविष्य के खतरे से भयभीत होती तो वह मन में कहा करती कि मेरे दुखों से कैकेई प्रसन्न और संतुष्ट होती होगी। इस प्रकार का कैकेई से अपनी शत्रुता प्रकट करती थी।

20 - जब कभी राम सीता को न देखकर उदास होता, तो लक्ष्मण कहा करता था कि तुम एक साधारण स्त्री के लिए क्यों परेशान होते हो? (अ. कां 66 अध्याय)

21 - लक्ष्मण कहा करता था, कि सीता का चरित्र आपत्तिजनक है। (आरण्य कांड 18 अध्याय)

22 - राम हिरण की खोज से बाहर गया था। सीता राम की सहायता करने के

लिए लक्ष्मण को तैयार कर रही थी। सीता ने देखा कि लक्ष्मण मुझे यहां अकेला छोड़कर जाने में हिचकिचाता है। तब सीता ने लक्ष्मण पर बुरा प्रभाव डालते हुए कहा कि राम के जीवन को बचाने में लापरवाही करके मुझे फुसलाने के लिए तुम यहां देर कर रहे हो। क्या तुम राम के सच्चे भक्त होकर वन में आए हो? (अर्थात नहीं) तुम लुच्चे तथा दगाबाज हो। तुम मेरे साथ भोग-विलास करने के उद्देश्य से राम को मार डालने के लिए यहां आये हो। क्या भरत ने इसी उद्देश्य से तुम्हें हम लोगों के साथ भेजा है? मैं तुम्हारी तथा भरत की इच्छा को कभी पूरा न होने दूंगी।

23 - जब लक्ष्मण ने सीता के प्रति मातृत्व सम्मान प्रदर्शित करते हुए, सीता से कहा कि तुम्हें ऐसी निर्लज्जता प्रकट करना शोभा नहीं देता है - तब उसने लक्ष्मण से कहा, तुम स्वावलंबी हो, तुम मेरे साथ आनंद करने के लिए मेरे साथ विश्वासघात करते हो और इस प्रकार तुम मेरा सतीत्व नष्ट करने के लिए अवसर ढूंढ रहे हो। (उपरोक्त दोनों संकेत अयोध्या कांड के 45वें अध्याय में देखा जा सकता है।)

24 - रावण ने सीता को ले जाने के उद्देश्य से उसकी मनोस्थिति को बड़े ध्यान से देखा। उसकी सुंदरता को देखकर वह उसके ऊपर मोहित हो गया और वह उसकी ओर बढ़ा। वह उसके स्तनों और जादूभरी जांघों की प्रशंसा करने लगा। इन सब बातों से सीता की क्या प्रतिक्रिया हुई होगी? क्या सीता ने रावण से घृणा की? क्या उसे अस्वीकार किया? क्या उसने उसे फटकारा? नहीं। बिलकुल नहीं। रावण की इस समय सम्मान पूर्ण अगवानी की गई (स्वागत किया गया) बिना अपनी अवस्था अधिक प्रकट किए, उसने रावण के समक्ष अपने सुंदर यौवन की प्रशंसा की। (अरण्य कांड 46, 47 अध्याय)

25 - जब रावण ने सीता को बताया कि मैं राक्षसों का प्रधान रावण हूं - तब सीता ने उससे घृणा की।

26 - जब रावण उसे अपनी गोद में लिए जा रहा था - तब वह अर्धनग्न थी। तब वह स्वयं अपने स्तन खोले हुए थी। (आरण्य कांड 54 अध्याय)

27 - जैसे ही उसने अपने पैर रावण के महल में रखे। सीता का रावण के प्रति आकर्षण उत्तरोत्तर बढ़ता गया। (आरण्य कांड 54 अध्याय)

28 - रावण ने अपने यहां सीता से कहा कि आओ हम दोनों मिलकर आनंद (संभोग) करें। तब सीता अद्धोन्मिलित आंखों-युक्त सिसकी भरती रही। (आरण्य कांड 55 अध्याय)

29 - रावण ने कहा, ''हे सीते! हमारा-तुम्हारा मिलन ईश्वरकृत है। यह ऋषियों की भी माया है।'' (अरण्य कांड 55 अध्याय)

30- सीता ने कहा कि, ''तुम मेरे अंगों को आलिंगन करने के लिए स्वतंत्र हो। मुझे उसकी रक्षा करने की आवश्यकता नहीं, मुझे इस बात का पश्चाताप नहीं कि मैंने भूल की है।'' (अरण्य कांड 56 अध्याय) इससे इस परिणाम पर पहुंचा

जा सकता है कि सीता ने रावण को उसे अपने साथ दुर्व्यवहार करने की अपनी (स्पष्ट) अनुमति नहीं दी।

31 - राम ने सीता से कहा कि रावण ने तुम्हें बिना तुम्हारा सतीत्व नष्ट किए कैसे छोड़ा होगा। राम द्वारा इस दोष आरोपित सीता ने निम्नांकित उत्तर दिया - जो कि उपरोक्त कथन की पुष्टि करते हैं।

32 - सीता ने उत्तर दिया कि, ''तुम सत्य कहते हो - किंतु तुम ही बताओ कि मैं क्या कर सकती थी? मैं केवल अबला स्त्री हूँ। मेरा शरीर उसके अधिकार में था। मैंने स्वेच्छा से कोई भूल नहीं की है - तथापि मैं मन से तुम्हारे निकट रही हूं। ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी।'' सीता ने केवल इतना ही कहा - किन्तु सीता ने दृढ़तापूर्वक यह नहीं कहा कि रावण ने मेरा सतीत्व नहीं भंग किया। (युद्ध कांड 118 अध्याय)

33 - सीता का गर्भ देखकर राम का संदेह और पुष्ट हो गया। उसने प्रजा द्वारा सीता के प्रति लगाए गए आरोपों की शरण ली और उसने उसे जंगल में छोड़ देने की लक्ष्मण को आज्ञा दी, तब सीता ने सभी को अपना पेट दिखाते हुए कहा, देखो मैं गर्भवती हूं।'' (उत्तर कांड 18 अध्याय)

34 - जंगल में उसने दो पुत्रों को जन्म दिया। (उत्तरकांड 66 अध्याय)

35 - अंत में जब राम ने इस संबंध में सीता से शपथ खाने को कहा तो अस्वीकार करते हुए वह मर गई। (उत्तर कांड 97 अध्याय)

36 - रावण ने सीता को सिर झुकाकर बड़े सम्मान पूर्वक अपनी ओर आकर्षित होने को कहा, इसका तात्पर्य यह है कि रावण ने सीता के प्रति अपनी किसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया - बल्कि सीता स्वयं उस पर मोहित हो गई थी, सीता ने रावण की विषयेच्छा का स्वयं अनुसरण किया था, रावण पर मोहित ना होने की दशा में वह सीता को छू तक नहीं सकता था, क्योंकि रावण को श्राप दिया गया था, कि यदि वह किसी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध छुएगा - तो उसका सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। ब्रह्मा का भी उसे यह श्राप था कि - यदि वह किसी स्त्री को उसकी अनिच्छा होने पर छुएगा तो वह भस्म हो जाएगा, अतः रावण ने किसी भी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध ना तो कभी छुआ, - न कभी छू सकता था।

37 - रावण से सीता को वापस प्राप्त करके तथा उसे अपनी स्त्री के रूप में पुनः स्वीकार करके राम अयोध्या में राज्य कर रहा था, उसकी साली कुकुवावती ने राम के पास जा कर कहा कि हे श्रेष्ठ! तुम अपने की अपेक्षा सीता को कैसे अधिक प्यार करते हो? मेरे साथ आओ और अपनी प्यारी सीता के हृदय की वास्तविकता को देखो। वह अब भी रावण को नहीं भूल सकी है, वह रावण के ऐश्वर्य पर गर्व करती हुई उसका चित्र अपने विजन (पंखा) पर बनाए हुए, उसे अपना छाती पर चिपकाये हुए अर्द्धोन्मिलित नेत्र-युक्त अपनी चारपाई पर लेटी हुई है।''

इसी समय दुर्मुहा नामक एक गुप्तचर ने राम के निकट आकर उसे बताया कि ''रावण के यहां से सीता को लाकर पुनः अपनी स्त्री बना लेना प्रजा में तुम्हारी निंदा और उपहास का विषय बना हुआ है।'' यह सुनते ही राम तिलमिला गया और उसे क्रोध आ गया। उस समय राम को मन ही मन अपने अपमान और दुख का अनुभव हुआ - जो कि उसके चेहरे से प्रकट होता था उसने आहें भरी और अपने साली के साथ सीता के कमरे में गया, राम ने सीता को अपने विजन पर रावण का चित्र बनाए हुए, उसे अपनी छाती पर चिपकाए हुए, सोती हुई पाया। यह बात 'श्रीमती चंद्रावती' द्वारा लिखित 'बंगाली रामायण' के पृष्ठ 191 और 200 में पाई जाती है।

घटनाओं के गंभीर अध्ययन से प्रकट होता है कि, राम ने सीता में उसके गर्भवती होने में दोष पाया। राम ने रावण के यहां से सीता को वापस लाकर पुनः उसे अपनी स्त्री के रूप में स्वीकार करके, अयोध्या वापस आने के ठीक 1 महीने के अंदर राम द्वारा सीता के गर्भवती होने का समय हो सकता है।

38 - श्री सी आर श्रीनिवास अयंगर की 'रामायण पर टिप्पड़ी' नामक पुस्तक के अनुसार राम ने सीता को रंगे हाथों पकड़ा था। क्योंकि उसने रावण का चित्र खींचा था।

39 - रामायण के अनुसार हम कह सकते हैं कि राम एक अयोग्य व्यक्ति था और सीता एक व्यभिचारिणी स्त्री थी।

राम ने सीता को अकेले जंगल में छुड़वाया, इसके प्रमाणस्वरूप बहुत से दृष्टांत हैं।

जहां तक सीता का संबंध है, रावण के साथ अनुचित संसर्ग करने के कारण धर्म-नीति के अनुसार पवित्र नहीं थी, यदि राम कृत्य उचित मान लिया जाए - तो वह सभी को स्वीकार कर लेना चाहिए, कि सीता रावण द्वारा गर्भवती हुई थी।

यदि वह मान कर, कि सीता ने कोई नैतिक अपराध नहीं किया था - वह राम के द्वारा गर्भवती हुई थी, सीता की रक्षा की जाए - तो यह सभी को स्वीकार कर लेना चाहिए कि राम द्वारा अबोध गर्भवती का जंगल में अकेले छुड़वाने का कार्य मानवोचित नहीं है, राम ने सीता के गर्भ के विषय में अन्वेषण किया था - तब ही उसने दूसरे दिन प्रातः काल उसे जंगल में छुड़वा दिया था।

ऐसी दशा में यह साबित होता है कि सीता भ्रष्ट थी और राम गुंडा तथा विश्वासघाती। राम और सीता की भ्रष्टता और नीचता क्षम्य नहीं है।

तब यह कथन कैसे सत्य कहा जा सकता है, कि राम ने आर्य धर्म नियमानुसार मानव-मात्र को उपदेश देने के हेतु तथा सीता ने स्त्री-मात्र को सदाचरण तथा सतीत्व की शिक्षा देने के निमित्त अवतार लिए।

यदि ब्राह्मणों के इस उपदेश का प्रतिपादन करने वाले दृष्टिकोण को अपनाया जाए - कि राम और सीता ने जो कुछ किया था - वह उचित ही है - तो क्या वह

बेचारे अबोध बुद्धिहीन मानव-मात्र को पथभ्रष्ट करना नहीं है? सुधारक मूर्खतापूर्ण हास्यास्पद मत को कैसे सहन कर सकते हैं? इन कारणों से हम अधिकारपूर्वक कह सकते हैं कि - ''राम और सीता चरित्रहीन थे''।

सीता का गर्भवती होना

वाल्मीकि रामायण का गंभीर तथा सूक्ष्म अध्ययन स्पष्ट प्रकट करता है कि सीता राम द्वारा गर्भवती हुई नहीं थी।

राम रावण को मारकर, सीता को साथ लाकर, अयोध्या लौटकर, तिलकोत्सव के पश्चात अयोध्या पर राज्य करने लगा - तब सुग्रीव, विभीषण और अन्य लोगों को अपने-अपने स्थान पर वापस भेज दिया। अंत में पुष्पक विमान भी वापस भेज दिया। पुष्पक विमान के चले जाने के पश्चात शीघ्र ही भरत ने दोनों हाथ जोड़कर राम से कहा - हे नाथ! तुम स्वर्गीय शक्ति हो। तुम्हारे शासन के एक मास के अंदर ही प्रजा सब प्रकार के आनंदित तथा संतुष्ट है।

कहा गया है कि दस हजार वर्ष शासन कर चुकने के पश्चात एक समय राम और सीता प्रसादीय उद्यान में बैठे हुए थे। उस समय उस (राम) ने देखा कि सीता गर्भवती है। श्री श्रीनिवास अयंगर द्वारा वाल्मीकि रामायण का अनुवाद किया गया है। उनके द्वारा अनुवादित रामायण के 'शासन के दस हजार वर्ष पश्चात, श्लोक को उत्तरकांड के श्लोक नंबर 42 पृष्ठ 163 देखिए वे अपनी संपादकीय टिप्पणी में लिखते हैं कि यह श्लोक स्वयं बाल्मीकि द्वारा नहीं रचा गया है- बल्कि बाद में जोड़ दिया गया है।

वाल्मीकि रामायण के बालकांड अध्याय 2 चरण प्रथम के अनुसार राम ने सीता को जंगल में छुड़वा देने के पश्चात दस हजार वर्ष राज्य किया। उसने बहुत से अश्वमेध यज्ञ भी किए। (देखो उत्तर कांड 99 अध्याय) यह कहा गया है कि यह श्लोक सीता को उसकी संदेहजनक स्थिति में त्राण देने के लिए घुसेड़ दिया गया है। इस पर सीता एक महीने के अंदर गर्भवती पाई गई और उसे लक्ष्मण द्वारा वन में छुड़वा दिया गया। उसी समय सीता ने वन में लक्ष्मण को अपना पेट दिखाते हुए कहा था कि - देखो यह गर्भ 4 महीने का है। और उसने लक्ष्मण को अभिवादन करते हुए विदा ली। यदि यही मान लिया जाए तो 1 महीने के गर्भ को 4 महीने का गर्भ कैसे मान लिया जाए या यह कि यह गर्भ यम (संयम, नियम या जादू) द्वारा हुआ होगा।

लक्ष्मण

जहां तक लक्ष्मण का संबंध है, हम उसके चरित्र में कोई अपूर्व तथा अलौकिक बात नहीं पाते। रामायण में अनेक स्थलों में लक्ष्मण का वर्णन केवल इसलिए किया गया है कि वह सदैव राम के साथ रहा। इस बात का वर्णन कहीं नहीं मिलता कि उसमें कोई अलौकिक शक्ति थी। बड़े आश्चर्य की बात है, कि उसे भी (शेषनाग के) अवतार का पद दिया गया।

1 - भरत से राजगद्दी छीनने के षड्यंत्र में उसका हाथ था।

2- राम ने अपने प्रति लक्ष्मण की भक्ति पर संदेह करके, उसे छल पूर्वक फुसलाया था कि राजतिलक मुझे होगा - किंतु अयोध्या का राज वास्तव में तुम्हीं करोगे। यह सुनकर वह राम के राज तिलक में प्रत्येक प्रकार से तन-मन में जुट गया। सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने क्रमशः राम और भरत का पक्ष लिया - क्योंकि वे जानते थे कि कदाचित हम दोनों को राजगद्दी नहीं मिलने को है।

3- लक्ष्मण ने अपने बाप दशरथ को गालियां देते हुए, उसे बुरा-भला तथा विश्वासघाती कहा।

4- उसने प्रस्ताव रखा, कि हमारे बाप को कारागार में डाल दिया जाए।''

5 - उसने कहा कि हमारे बाप को मार डाला जाए।

6 - उसने कहा कि मनु के अनुसार पिता को मार डालना धर्म है।

7 - उसने कहा कि मैं भरत व उसके मित्रों को बिल्कुल मिटा दूंगा। (अयोध्या कांड 21 अध्याय श्लोक 3 से 7 तक देखें)

8- राम आहें भर रहा था, कि ईश्वर की कृपा ऐसी ही थी - कि मैं राजा न हो सका। यह देखकर उसने राम की आलोचना की कि केवल कायर और मूर्ख ईश्वर की इच्छा के विषय में बात किया करते हैं।

9 - लक्ष्मण ने राम को बताया, कि मैं तुम्हें धोखा देने के लिए दशरथ और कैकेई ने अपनी पूर्व सुनिश्चित योजनानुसार, तुम्हें राजगद्दी देने में भिन्न-भिन्न मतों का अनुसरण किया है।

10 - उसने ललकार कर राम से कहा कि मैं दशरथ और कैकेई को वन में भेज सकता हूं और तुम्हें राजगद्दी पर बैठा सकता हूं।

11 - उसने राम से कहा कि यदि तुम अपना राजतिलक नहीं चाहते हो तो मैं राजगद्दी पर अधिकार करके अयोध्या का राज करूंगा। (अयोध्या कांड 23 अध्याय श्लोक नंबर 8 से 11)

12 - वनवास के लिए देश छोड़ते समय उसने कहा कि वह धन्य है जो सर्व सुख संपन्न अयोध्या में राज करता है। (अयोध्या कांड 51 अध्याय)

13 - वह इस सोच-विचार में पड़ा रहा है कि क्या हम लोग अयोध्या सुरक्षित लौट आएंगे। (अयोध्या कांड 51 अध्याय)

14 - जब भरत ने वन में जाकर राम से अनुनय-विनय की तुम लौट चलो और अयोध्या पर राज करो - तब लक्ष्मण ने क्रोधपूर्वक कहा कि अब मैं भरत को मारने जा रहा हूं। (अयोध्या कांड 16 अध्याय)

15 - विरादन को वन में देखकर उसने कहा कि मैं भरत से बदला लेने जा रहा हूं मैंने उसके ऊपर आरोप लगाया है कि उसने राजगद्दी हथिया ली है। (आरण्य कांड 2 अध्याय)

16 - उसने सूर्पनखा से कहा कि सीता चरित्रहीन है, उसकी छातियां ढल चुकी हैं। (आरण्य कांड 18 अध्याय)

17 - सीता के प्रति उसका बर्ताव सीता के संदेह के कारण बन चुका था। वह उससे प्रेम करता था और उसके साथ संभोग करना चाहता था।

18 - उसने अपने जेष्ठ भाई की स्त्री के प्रति राम से कहा कि सीता को चाहे कोई भगला ले जाए चाहे वह मर जाए। यह कोई बड़ी बात नहीं है क्या हमें ऐसी नीच स्त्री के लिए कष्ट सहने चाहिए।

19 - लक्ष्मण ने थदगाई, सूर्पनखा व अयोमुखी जैसी स्त्रियों के कान, नाक और स्तन काटकर उनका रूप बिगाड़ा था।

20- दुख में खोया हुआ राम स्वयं तुम्हारी शरण में आया है, उसके साथ दया कीजिए, ऐसा कहते हुए उसने सुग्रीव को आत्म समर्पण कर दिया।

21 - इसके कुछ समय पहले उस सुग्रीव का कत्ल करने के लिए वह राम की आज्ञा चाहता था।

22 - वह राम की इच्छानुसार सीता से झूठ बोला था और गर्भवती दशा में उसे जंगल में छल पूर्वक छोड़ आया था।

23 - राम और भरत दोनों उसके बड़े भाई थे, किंतु वह राम का सहायक व भरत का विरोधी था, इसी प्रकार वह कौशल्या का भक्त तथा कैकेई से घृणा करता था।

इन सब बातों का कारण क्या था? क्या उसकी राजगद्दी प्राप्त करने की इच्छा के अतिरिक्त कोई अन्य बात हो सकती है?

अन्य जन

अब हमें भरत, कैकेई, सुग्रीव, शत्रुघ्न, सुमंत्र, अंगद, कौशल्या, वशिष्ठ, विभीषण, सुमित्रा, हनुमान, रावण, बालि का संक्षिप्त अध्ययन करना चाहिए।

भरत

हम भरत में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं पाते हैं।

1 - वह अपने नाना के महल में दस वर्ष के दीर्घकाल तक खिलाड़ी लड़के के भांति बना रहा।

2 - वह वहां से बुलाए जाने पर ही अयोध्या लौटा, उसने अपने पिता-माता व परिवार की कोई चिंता नहीं की।

3 - अपने नाना के यहां से अयोध्या लौटने पर राम के विषय में सुन उसने छान-बीन की, कि राम किसी अन्य स्त्री को बलपूर्वक तो नहीं लिए जा रहा है। (अयोध्या कांड 72 अध्याय)

4- उसने अपनी माता को बुरा-भला कहा तथा उस पर गालियों की बौछार की, उसने कर्कशा, पिशाचिनी, वैश्या, दुष्टा व नट-खट स्त्री कहा तथा यह भी कहा कि अच्छा होता - कि वह मर जाती। इस देश से निकल जा, मुझे तेरा पुत्र होने में दुख है। इस प्रकार उसने अपनी माता को जिसने उसे राजगद्दी प्राप्त कराने में कठिनाईयां सही जो (कैकेई के विवाह के समय दशरथ द्वारा किए प्रण के) नियमानुसार उसी के लिए राजगद्दी थी, फटकारा और बुरा भला कहा। उसने वस्तु-स्थिति तथा अपनी माता को समझाने का प्रयत्न नहीं किया।

5 - उसने अपने पिता को उपद्रवी व प्रजा-पीड़क की संज्ञा दी। (अयोध्या कांड 73, 74 चरण 4-5)

6 - वन में राम से वार्तालाप करते हुए उसने उससे प्रार्थना की थी कि अयोध्या लौट कर राजगद्दी लो और राज वंशीय अन्य स्त्रियों के बीच आनंद मनाओ।

(अयोध्या कांड 105 अध्याय)

7 - भरत के भी बहुत स्त्रियां थी।

शत्रुघ्न - एक महान मूर्खता

1 - उसने अपनी सौतेली माता कैकेई को गालियां दी।

2 - उसने मंथरा को फटकारा, मारा अंग तोड़ दिए, क्योंकि वह आद्योपांत सब भेद जानती थी। वह न्याय स्थापित करने के लिए अपनी स्वामिनी के प्रति स्वामिभक्ता थी। कर्तव्य परायण थी।

संकेत : इस भेद को ध्यानपूर्वक समझने की आवश्यकता है, कि भरत और शत्रुघ्न जिन्होंने अपने माता-पिता को गालियां दी और उन्हें अपमानित किया। अपने बड़े भाई राम के प्रति भक्ति प्रदर्शित करते हैं।

कौशल्या

1 - उसके मस्तिष्क में अपने पुत्र राम को किसी न किसी प्रकार राजगद्दी मिलने की उत्कट अभिलाषा हर समय रही।

2- वह कैकेई से द्वेष रखती थी। वह उसकी शत्रु थी।

3 - उसे इस बात का दुख था कि मैं वृद्ध हो गई हूं। अब मेरे शरीर का आकर्षण समाप्त हो गया है। (अयोध्या कांड 20 अध्याय)

4 - अपने पति के प्रति तनिक भी सम्मान की भावना न रखते हुए उसने उसे गालियां दी।

सुमित्रा

उसमें वर्णन करने योग्य गुण नहीं थे।

1 - वह जानती थी, कि उसके पुत्र को गद्दी मिलनी नही हैं - इस कारण वह राम को राजा होने की इच्छुक थी।

2 - चौदह वर्ष व्यतीत होते ही राम तुरंत लौट आएगा और भरत से राजगद्दी छीन लेगा, इस प्रकार वह कौशल्या को ढांढस बंधाया करती थी। इससे प्रकट होता है - कि ये दोनों भरत के प्रति दुष्ट थी।

कैकेई

1 - वह सुंदर वीरांगना रानी थी।

2 - उसने दो अवसरों पर अपने पति की रक्षा की थी।

3 - अयोध्या का राज्य उसी का था - क्योंकि उसने अपने पति का जीवन बचाया और उससे ब्याह करते समय राजा दशरथ ने अपना राज्य उसी को सौंप

दिया था।

4 - वह भरत से हर समय कहा करती थी, कि मैं राम को राज्य सौंप दूंगी और मैं उसे सौंप चुकी हूं। इस पर उसने उससे कभी आपत्ति नहीं की।

5 - राजगद्दी प्राप्त करने के अपने अधिकार को लेने का उसने प्रयत्न किया। उसने दुष्टता पूर्ण विचारों को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया और न उसने कोई तुच्छतापूर्ण कार्य किया।

सुमंत्र

यद्यपि वह मंत्री था - किंतु वह सच्चा व धार्मिक व्यक्ति नहीं था।

1 - दशरथ के साथ उसका व्यवहार छल-कपटपूर्ण था, उसने उसे कभी भी उचित परामर्श नहीं दिया।

2 - वह राजा की रानी कैकेई से उपहासास्पद वार्तालाप किया करता था। (अयोध्या कांड 35 अध्याय)

3 -वह झूठ भी बोलता था।

वशिष्ठ

एक साधारण पुरोहित की भांति उसका कोई अच्छा व्यवहार नहीं था।

1 - वह पहले से जानते हुए कि राजगद्दी पर भरत का अधिकार है, उसने राम को राज्याभिषेक करने की युक्ति निकाली थी।

2 - भरत को राजगद्दी न मिल सकने के विषय में रचे गए षड्यंत्र को सफल बनाने के लिए उसने राज्याभिषेक की तिथि शीघ्र ही निर्धारित कर दी।

3 - उसने राम राज्याभिषेक की ऐसी शुभ तिथि निश्चित की जो अंत में राम वनवास के रूप में परिणत हो गई।

हनुमान

एक साधारण व्यक्ति था, उसने कोई बुद्धिमता का कार्य नहीं किया था, कहा गया है कि उसे यश तथा प्रसिद्धि प्राप्त हुई - वह केवल उसके मन में आश्चर्यजनक कार्यों के लिए जो तर्क के समक्ष क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकते।

1 - उसने अन्याय-पूर्वक लंका में आग लगा दी, उसने अनेक असहाय व निर्दोष मनुष्यों का वध किया और इस प्रकार उसने बहुत बरबादी की।

2 - सीता से वार्तालाप करते समय उसने निर्लज्जता तथा असभ्यतापूर्ण शब्दों का प्रयोग किया था - यहां तक कि उसने मनुष्य-लिंग के विषय में भी सीता से बातचीत की थी - जो कि उसे स्त्रियों के समक्ष नहीं करनी चाहिए थी। (सुंदर कांड 35 अध्याय)

बालि

बालि किसी प्रकार भी मारने योग्य नहीं था।

1 - वह अपने भाई को नहीं मारना चाहता था।

2 - सुग्रीव ने अनावश्यक रूप से उसके साथ झगड़ा खड़ाकर दिया था।

3 - बालि संभवतः निष्पाप था - इस कारण कोई दोष नहीं था। वह अपनी स्त्री से सुग्रीव को न मारने का प्रतिज्ञा करके युद्ध क्षेत्र में गया था।

5 - वह बहुत धैर्यवान तथा शक्तिशाली था।

6 - वह सच्चा, खरा व त्यागी था।

7 - कोई भी मनुष्य, यहां तक कि अकेला राम भी उसके साथ आमने-सामने युद्ध करने में असमर्थ था।

8 - वह बहुत से महान व्यक्तियों का प्रिय मित्र था।

9 - उसे राम को सच्चा पुरुष समझने में भ्रम हो गया था।

10 - बालि की मृत्यु पर सुग्रीव ने उसके गुणों की प्रशंसा की थी और कहा था, कि मैं अपने ऐसे भाई को खोकर जीवित नहीं रहना चाहता - अब मैं चिंता में जलकर भस्म हो जाउंगा।

बालि जैसे योग्य पुरुष को मार डालने का कार्य धर्म-संगत बताने के लिए राम ने कहा था, कि पशुओं को मार डालने में धर्म का विचार नहीं करना चाहिए। क्या वह पशु था?

सुग्रीव

उसने अपने भाई को धोखा दिया था।

वह केवल अपने भाई को मार डालने हेतु राम का दास बना। अंगद में आत्म-सम्मान की भावना नहीं थी, उसने उस राम से मित्रता की - जिसने उसके पिता को मार डाला था।

1 - वह अपने चाचा सुग्रीव के प्रति शुभेच्छु न था और न उससे प्रेम करता था।

2 - अपने आपका ज्ञान न रखने वाले दास के तुल्य उसने व्यवहार किया।

विभीषण

1 - अपने भाई रावण की मृत्यु का कारण बनकर लंका का राजा स्वयं बन जाने के लालच से प्रभावित होकर उसने अपने पारिवारिक शत्रु राम को आत्म-समर्पण कर दिया था।

2 - जब इंद्रजीत से पराजित होकर राम व लक्ष्मण धाराशायी हो गए तब अपना दुख प्रकट करते हुए उसने कहा कि राम व लक्ष्मण की शक्ति पर भरोसा कर मैं

अपना भविष्य बनाने के लिए उनके पास गया था - किंतु अब मेरी संपूर्ण आशाओं पर पानी फिर गया, राज्य खो दिया, दूसरे मैं आपत्ति में फंस गया, मेरे शत्रु रावण की प्रतिज्ञा पूरी हो जाने के कारण प्रसन्न है। इस प्रकार उसने लंका का राजा बनने के लालच की स्पष्ट प्रकट किया था। (युद्ध कांड 49 अध्याय)

3 - हनुमान, सुग्रीव तथा अन्य जनों ने राम से उक्त संकेत किया था।

4 - राम ने भी, जो इस बात को जानता था, कहा था, कि मुझे ऐसे ही नीच मनुष्य की आवश्यकता है। (युद्धकांड 17 अध्याय)

5 - रावण के जीवित रहते ही राम ने उसे राजा बना दिया था व उसने उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया था। (युद्धकांड 18 अध्याय)

6 - इसके परिणामस्वरूप उसने राम को बहुत से गुप्त भेद बताए।

7 - उसने अपने आपको राम के हवाले कर दिया और भाई को केवल वह बहाना बनाकर, कि मेरा भाई रावण सीता को हर लाया है, धोखा दिया है, लंका का राजा स्वयं बन जाने के वास्तविक कारण ने ही उसे ऐसा करने को विवश किया था - ना कि इस कारण से कि वह सच्चा और न्यायी था - यह कैसे?

8 - उसने रावण की वाटिका में अनाधिकृत रूप में प्रवेश करते हुए व वहां के जानवरों का शिकार करते हुए राम पर कोई ध्यान नहीं था।

9 - जब उसकी बहन सूर्पनखा व अन्य संबंधित स्त्रियों के नाक, कान व स्तन काट डाले गए तथा कुछ स्त्रियां मार भी डाली गई - तब उसका खून न खौला और न उसे कोई बेचैनी हुई।

10 - ऐसी भयानक भूलों के कर्ता विभीषण को एक सच्चा, न्याय और वीर मनुष्य मानकर उसकी प्रशंसा करना एवं उसके भाई रावण से जिसने पूर्ण रूप से अपनी आधीनता में हो गई सीता के साथ सम्मान-पूर्वक बर्ताव किया, एक दुष्ट मनुष्य की भांति घृणा करना। इन सब बातों में रावण को अनुचित दबाना, लंका के राज्य को अपने अधिकार में कर लेने की दूरदर्शी हैं। ये सब बातें स्वार्थ एवं विचारों की संकीर्णता के अतिरिक्त और क्या हो सकती है?

रावण

1 - रावण में नीचे लिखी गई विशेषताएं थीं -

(1) एक महान विद्वान (2) बहुत बड़ा संत (3) वेद शास्त्रों का ज्ञाता। (4) अपने संबंधियों व प्रजा का दयालुतापूर्वक पालन-कर्ता। (5) वीर योद्धा। (6) शक्तिशाली पुरुष (7) शूर-वीर सिपाही। (8) पवित्र आत्मा। (9) परमात्मा का प्रिय पुत्र। (10) वरदानी पुरुष।

वाल्मीकि ने रावण की उपरोक्त दस विशेषताओं का वर्णन किया तथा उसकी प्रशंसा कई स्थलों पर की है।

2 - अपने भाई रावण की संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्नता से द्वेष रखने वाला कमीना विभीषण उसकी मृत्यु का कारण बना। रावण शीघ्र ही मर गया - तो विभीषण उसकी अंत्येष्टि क्रिया पर मन मसोस कर अंदर ही अंदर दुखी होकर उसके योग्यता पूर्ण गुणानुवाद करता हुआ, उसके शव पर गिर पड़ा और कहा कि तुम न्याय करने में कभी असफल नहीं रहे तथा सदैव महान पुरुषों का सम्मान किया। (युद्ध कांड 111 अध्याय)

3 - अपनी बहन सूर्पनखा के प्रति की गई असहनीय दुष्टता और अपमान से कुपित होकर उसके प्रतिकार स्वरूप रावण सीता को लंका में ले गया था। सीता के प्रति अनुचित प्रेम होने के कारण नहीं न कि दूसरे की स्त्री का सतीत्व भंग करने के उद्देश्य से।

4 - हनुमान ने स्वयं रावण के प्रेम के विषय में सफाई देते हुए कहा कि रावण के महल की सभी स्त्रियों ने स्वेच्छापूर्वक उसकी रानियां होना स्वीकार किया था। उसने किसी भी स्त्री को बिना उसकी इच्छा के छुआ तक नहीं। (सुंदर कांड 9 अध्याय)

5 - रावण देवताओं और ऋषियों से घृणा करता था। क्यों? क्योंकि वे यज्ञ के नाम पर छल-कपट पूर्ण स्वधर्म नियमानुसार गूंगे पशुओं को आग में बलि देकर

हृदय विदारक जघन्य-अपराध करते थे। वह किसी अन्य कारणों से घृणा नहीं करता था।

6 - वाल्मीकि ने खुद कहा है कि राम व लक्ष्मण के द्वारा सूर्पनखा के प्रति किए गए दुर्व्यवहार के दुष्परिणाम-स्वरूप गंभीर चिढ़ तथा अनुत्तर-दायित्व पूर्ण उकसाए जाने पर भी रावण ने अपनी बहन सूर्पनखा के प्रतिकार-स्वरूप सीता की छातियां, नाक और कान नहीं काटे।

7 - पूर्व आयोजित ध्येयानुसार सीता को एकांत जंगल में छोड़ दिया गया था - ताकि उस सीता को रावण द्वारा ले जाने में सुविधा हो - क्योंकि सीता की भी अभिलाषा थी, कि रावण उसे ले जावे, इसीलिए उसने तैयारियां भी की थी इस विषय पर कई अनुवादकों की व्याख्या से यह दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है।

8 - उसने अपने मंत्रियों की जो सभाएं आमंत्रित की थी - उसमें हुए विचार विमर्श उसके दयाशील शासन के उदाहरण हैं।

संकेत : रामायण के चरित्र, आचरण और योग्यता का निरूपण वाल्मीकि द्वारा निर्मित रामायण तथा स्वयं ब्राह्मणों द्वारा तमिल भाषा में अनुवादित पुस्तकों पर आधारित है, इससे पाठक विश्वास कर लेंगे कि रामायण के वे आदर्श चरित्र जिनकों कि पाठक ग्रहण किए हुए हैं। स्पष्ट और संक्षिप्त बात यह कि रामायण में ठीक तथा उचित विचारकों को अयोग्य, अधर्मी और इसके विपरीत मिथ्यावादी, विश्वासघाती एवं गुंडों को ऊंचा उठाया गया है। सम्मानित किया गया है, उनमें स्वर्गीय शक्ति मानी गई है।

इस पुस्तक का उद्देश्य इन मिथ्या विचारों को भोले-भाले आदमियों से हटाना तथा यह बताना है कि केवल भेष से कोई साधु नहीं हो जाता है।

बंगाली रामायण

बंगाली रामायण के 'लंकावतार सूत्र' में वर्णन किया गया है, कि रावण द्रविड़ राजा था, जिसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर रखा था और वह अरस्तू तथा प्लेटो के समान दर्शनशास्त्र का ज्ञाता था। चूंकि बौद्ध साहित्य में रावण की अति प्रशंसा की गई है। इसी कारण ब्राह्मणों तथा पंडितों द्वारा निर्मित रामायण में उसकी अनुचित ढंग से आलोचना तथा निंदा की गई है। कृतिवास के रामायण में कहा गया है कि रावण प्रेम एवं सम्मानपूर्वक अपने देश में शासन करता था।

रावण ने रणक्षेत्र में मरते समय राम को अपने पास बुलाकर दयालुता के सिद्धांतों तथा राम द्वारा उसके साथ किए गए छल-कपट युद्ध के विषय में उसके कानों में बताया था। इस प्रकार हम कृतिवास के रामायण में पाते हैं कि रावण सत्यता का उपदेश देता था, और वह न्यायी था। (पृ. 124)

रामायण काल के मादक पेय पदार्थ

डॉक्टर एस.एन. व्यास ने दिल्ली में दिनांक पंद्रह अगस्त सन उन्नीस सौ चौवन इस्वी में कारवां नामक प्रकाशित पुस्तिका में रामायण काल के मादक पेय पदार्थों का वर्णन किया है।

1 - किथ्यसुरा - यह कुछ वस्तुओं को उबाल कर बनाई जाती है।

2 - मोराय्या - यह मसालों से तैयार की जाती है।

3 - मद्य - बेहोश तथा मतवाला बना देने वाला पेय पदार्थ।

4 - मंधा - यह साधारण मादक पेय पदार्थ था। यह पिथमंध भी कहलाता था। यह अधिक नशीली न होती थी। इसे पीना सभी पसंद करते थे।

5 - सुरा या सुराबानम - यह उपरोक्त पेयों से भिन्न थी। यह कृत्रिम विधि से निथार कर बनाई जाती थी तथा यह प्राकृतिक मादक पेय थी। यह सर्व साधारण का पेय पदार्थ थी। पुराणों में इस विषय में बहुत वर्णन है।

6 - सिंधु - यह गुड़ के शीरे से बनाई जाती थी।

7 - सोब्बक्राक - यह धनहीनों की पेय थी।

8 - वारुणी - यह पेय पदार्थों में सब से कड़ी और गहरी होती थी। इसे पीते ही लोग लड़खड़ाने लगते थे और धनवान इसका प्रयोग करते थे।

राम और सीता के चरित्र

(वाल्मीकि रामायण के आधार पर)

ब्राह्मणों के साथ ही साथ छापे खाने (प्रिंटिंग प्रेस) भी हम लोगों के रामायण के वर्णित मिथ्या तथा दुराचार पूर्ण बातों के प्रकट करने में हमारे शत्रु हैं। वे समाचार पत्रों में जो कुछ मैं तर्कपूर्ण बातें उपस्थित करता हूं - बिना उससे संबंधित तर्क-पूर्ण संदर्भ को प्रकट करते हुए (मेरे लिखे हुए) समाचार के एक या दो पत्र फाड़कर (शेष अधूरे लेख को) भोलेपन से यह छपवा देंगे, कि पेरियार ई.व्ही. रामास्वामी कहते हैं कि राम गुंडा तथा सीता वेश्या थी, इसका अर्थ क्या है? इसका तात्पर्य केवल यह है कि भ्रमोत्पादक काट-छांट और (भ्रमोत्पादक) तर्क से लोगों को हमारे विरुद्ध खड़ा करना।

रामायण केवल कपोल कल्पित गप्प है, यह ईश्वर की कथा नहीं है, जैसा कि सर्व साधारण लोगों द्वारा समझी जाती है, इस बात को बहुत पुरुषों द्वारा स्वीकार किया गया है, श्री गांधी ने स्वयं कहा था, कि मेरा राम रामायण के राम के समान नहीं है।

श्री टी.के. चिदंबरनाथ मुदलियर जिनका उन्हें चिढ़ाने वाला उपनाम कलियुग कंबा है, ने घोषणा की है, कि रामायण कोई स्वर्गीय कथा नहीं है। बिड़ला जैसे धनवान एवं विद्वानों की सहायता से संचालित बंबई की भारत इतिक्षा समाधि के सदस्यों ने वैदिक युग नामक स्वलिखित पुस्तक में वर्णन किया गया है कि किसी भी पुराण की न कोई ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है, न वे शिक्षा प्रद हैं, न उसके पात्रों के चरित्र अनुकरणीय हैं। केवल मिथ्या गप्प है। श्री सी राजगोपाचार्य ने घोषित किया है कि राम ईश्वर नहीं है - वह केवल एक योद्धा है।

क्या राम ईश्वर का अवतार है?

अनुसंधान के अन्य विद्यार्थी तथा विद्वान इसी विचार के समर्थक हैं। वे राम

को न तो ईश्वर का अवतार मानते हैं और न रामायण को इस प्रकार के स्वर्गीय-पुरुष का जीवन-इतिहास। वाल्मीकि के साथ ही साथ मौलिक रामायण के अन्य लेखक ने भी अपनी पुस्तक में राम को उतना सम्मानित नहीं किया है।

सर्वप्रथम उद्‌गम पृष्ठभूमि जहां से कथा प्रारंभ होती है, अनर्थक तथा हास्यास्पद है। यहां वर्णन किया गया है कि विष्णु ने 'बिरहू' मुनि की स्त्री को मार डाला। इसके दुष्परिणाम स्वरूप मुनि ने उसे श्राप दिया कि तू भविष्य में मनुष्य के रूप में पैदा होगा और तेरी स्त्री हर ली जावेगी और इस प्रकार मेरी भांति तू भी स्त्री-वियोग का दारुण दुख सहेगा। एक कथा तो इस प्रकार है।

दूसरी कथा इस प्रकार चलती है कि वहीं विष्णु जालंधर की पत्नी वृंदा पर मोहित हो गया और वह उसके प्रति जालंधर को छल-कपटपूर्वक मार डालने में सफल हो गया। तब उसने जालंधर का भेष धारण कर उसकी स्त्री का सतीत्व लूटा। विष्णु द्वारा इस प्रकार ठगी जाने का रहस्य जान कर जालंधर की स्त्री ने उसे श्राप दिया कि ठीक यही दुखद घटना तेरी स्त्री के प्रति हो। इसी श्राप के फलस्वरूप उसे पृथ्वी पर पुनर्जन्म ग्रहण करना पड़ा।

तीसरी कथा का स्रोत इस प्रकार है कि एक बार विष्णु अपनी थिरूमगल नाम की पत्नी के साथ दिन-दहाड़े रति क्रिड़ा में विमग्न था। उसी समय शिव का प्रधान गण वहां आन पहुंचा। इस पर तनिक भी ध्यान न देते हुए विष्णु अपने विषय भोग में लगा रहा। अपने इस अपमान से कुपित होकर वह गण नंदी के पास गया और अपने अपमान का संपूर्ण समाचार शिव से निवेदन किया इस पर शंकर ने उसे श्राप दिया कि वह पुनः पृथ्वी पर जन्म ले और अपनी स्त्री के हरण किए जाने का शोक सहन करे। इस कारण उसने पृथ्वी पर पुनः अवतार लिया।

राम के पृथ्वी पर अवतार धारण करने के कारण कितने निरर्थक तथा हास्यास्पद हैं।

अब हमें उस परिवार को देखना है, जिसमें राम ने अवतार लिया। राम के पिता राजा दशरथ की अपनी तीन राजवंशीय स्त्रियों के अतिरिक्त साठ हजार स्त्रियां थी, यह आदर्श पिता है, जिसका पुत्र राम हुआ। रामायण में वर्णन किया गया है कि राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न यज्ञ की विधिवत सम्पूर्ति और समाप्ति के फलस्वरूप पैदा हुए।

अब हम यज्ञ की विशेषताओं पर ध्यान दें। कई प्रकार की चिड़ियां, जानवर, कीड़े-मकोड़े और जंगली जानवर मारे जाते थे और सभी मृत जीवों को आग में भूनकर कबाब बना दिया जाता था और ब्राह्मण लोग उसे खाते थे। तत्पश्चात दशरथ की तीनों स्त्रियों को उन पुरोहितों को सौंप दिया गया, जिन्होंने यज्ञ किया था।

रामायण के अनुवादक बंगाल निवासी पंडित मन्मथनाथ दातार लिखते है कि कौशल्या ने बड़ी उत्सुकतापूर्वक एक घोड़े के तीन टुकड़े कर डाले और बिना किसी

मनोव्यथा के उस मृत घोड़े के साथ संपूर्ण रात बिता दी। होता, अदवर्य, उक्था और अन्य रिंकविका पुरोहितों ने तीनों रानियों के साथ संभोग किया इस प्रकार दशरथ के पुत्रों की जन्म-कथा है।

क्या यह कोई अवतार लेने के ढंग हैं? क्या कोई कथा इस प्रकार बेढंगे तरीके से लिखी जानी चाहिए?

दशरथ का कमीनापन

कौशल देश के मूर्खतापूर्ण उद्देश्यों एवं प्रयत्नों पर राम को राजगद्दी देने तथा तत्संबंधी योजनाओं व प्रबंधों पर यदि हम विचार करते हैं - तो दशरथ का कमीनापन प्रकट हो जाता है। भरत को उसके नाना के यहां भेज दिया गया था और लगभग दस वर्ष तक नहीं बुलाया गया था - ताकि कहीं ऐसा न हो, कि उसकी उपस्थिति राम के राज्याभिषेक में रोड़ा बन जाए, इसीलिए राज्याभिषेक का प्रबंध कर दिया था। कैकय देश के राजा को कोई आमंत्रण नहीं दिया था, इस उत्सव की सूचना भरत को भी नहीं दी गई थी। दशरथ ने अपनी गुप्त वार्ता में राम से कहा था, कि भरत का अपने नाना के घर में होने के कारण उसकी अयोध्या में अनुपस्थिति तुम्हारे राज्याभिषेक निर्विघ्नतापूर्वक हो जाने के पक्ष में है, यह काम भरत के लौट जाने के पहले ही हो जाना चाहिए। कल ही वह कार्य होना है। तुम्हारे मित्र तुम्हारी रक्षा करेंगे - ताकि आज रात को कोई अप्रिय घटना न होने पाए। राजवंशीय लोगों के साथ लोग इस उत्सव पर प्रसन्न थे, कैकेई तक को, जो कि राम तथा भरत को समान रूप से चाहती थी, दशरथ द्वारा अंधकार में रखी गई थी - तो भी दशरथ के कपट-पूर्ण प्रबंध को जान कर उसने स्वयं हठ किया, कि भारत को राजगद्दी और राम को वनवास मिले। कैकेई को बिना कोई सूचना दिए इस मामले को गोपनीय रखने के लिए दशरथ ने उसे कोई समुचित उत्तर नहीं दिया - किंतु निर्लज्जतापूर्वक कैकेई के चरणों में गिर पड़ा और गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि ये दोनों वरदान न मांगो। दशरथ ने कैकेई पर दोषारोपण किया कि उसने उत्सव संबंधी सभी योजनाओं को विफल कर दिया।

दशरथ ने राम से गुप्तरूप से बताया कि मेरी इच्छा तुम्हें वनवास देने की नहीं है - किंतु यह सब केवल प्रकट रूप से दिखावे के लिए है, कि मैं कैकेई के प्रति किए गए वचनों को पूरा करने के लिए तैयार हूं। आगे दशरथ ने राम को यह भी उकसाया कि तुम मेरी आज्ञाओं को न मानकर गद्दी पर अधिकार कर सकते हो। यह चाहता था कि राज्य का सभी खजाना, सेना व सामान आदि राम के साथ बन जाए।

कैकेई के साथ विवाह करते समय दशरथ ने उसे वचन दिया था कि उससे उत्पन्न पुत्र को ही अयोध्या की राजगद्दी दी जाएगी। अपने इस न्यायसंगत वचन का

खंडन कर उसने राम को राजगद्दी देने की योजना बना डाली और यह जानते हुए कि अयोध्या के राज्य का अधिकारी भरत है, सत्यवादी व न्यायी परमात्मा राम राजगद्दी लेने को तैयार हो गया था। दशरथ के गुरू, मंत्रीगण सुमंत्र व वशिष्ठ आदि ने भी दशरथ को धर्म-विरुद्ध परामर्श दिया। दशरथ द्वारा राम को वनवास की घोषणा कर दिए जाने के पश्चात लक्ष्मण अपने बाप दशरथ पर कुपित हुआ और बोला, मैं तुम्हें मार डालूंगा। कौशल्या ने भी अपने पुत्र राम से दशरथ की आज्ञा न मानने वाली तथा अयोध्या में रहने की बात कही थी।

एक साधारण श्रेणी में राम

इस प्रकार रामायण में कई स्थलों पर राम को साधारण कोटि का मनुष्य कहा गया है।

जहां तक राम की विशेषताओं का संबंध है, हमें यह कहना पड़ता है कि उसने अबोध ताड़का का छल से कठोरतापूर्वक वध कर दिया - क्योंकि वह अपने राज्य में अनधिकृत रूप से प्रवेश करके वहां पर यज्ञ संपादित करने वाले पुरोहितों को ऐसा करने के लिए मना करती थी।

जब राम वनवास जाने को था - तब उसने गंभीर दुख का अनुभव किया और उसने अपनी माता व स्त्री को बताया कि - जो राज्य मुझे मिलने वाला था - वह मेरे हाथों से निकल गया और मुझे वनवास दे दिया गया है।

राम ने लक्ष्मण से वनवास में कहा था कि क्या कोई ऐसा मूर्ख होगा जो कर्तव्य-परायण तथा आज्ञा पालक अपने पुत्र को वन में भेज दे? इस प्रकार अयोध्या का राज्य न मिल सकने के कारण शोक-विमग्न राम ने अपने पिता को निंदनीय शब्द कहे।

वनवास में राम ने सूर्पनखा के कान और नाक काट लेने का अपराध किया - क्योंकि वह उससे प्रेम करती थी, वन में आकर राक्षसों का वध करने के निश्चय को अपना लक्ष्य बनाकर उसने स्वेच्छापूर्वक व्यर्थ में लड़ाई मोल ली, सुग्रीव की भलाई के लिए उसने आड़ में छुपकर कायरता पूर्वक बालि को मारा - जिसने राम के प्रति अपकार नहीं किया था। इस बात को भली भांति तथा पूर्णतया जानते हुए कि दुष्ट और विश्वासघाती विभीषण अपने भाई रावण का वध कर स्वयं लंका का राज्य हथियाने के कपटपूर्ण उद्देश्य से मेरी शरण में आया है, राम ने लंका पर राज्य करते हुए रावण का वध करके विभीषण को वहां का राजा बनाया था।

राम का कपट पूर्ण विचार

संपूर्ण रामायण में देखा जा सकता है कि राम पाखंडी, छली, कपटी और दुष्ट था, वह अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए कोई भी घृणित कार्य करने पर उतारू हो

गया था।

जब सीता उसके साथ वन में जाने को प्रस्तुत थी - तब राम ने अपनी इच्छा प्रकट की थी, कि तुम भरत की सभी प्रकार की इच्छानुसार अयोध्या के महलों में रहो - क्योंकि इस प्रकार हम लोग कुछ अधिक प्राप्त कर सकने में सफल हो सकेंगे। इस पर सीता ने राम पर क्रोध करते हुए फटकारा और कहा कि तुम कायर तथा अशक्त हो। तुम मनुष्य के भेष में स्त्री हो। मेरे पिता ने मेरा विवाह तुम्हारे साथ किया है। तुम अपनी स्त्री को दूसरों को सौंपकर अनुचित जीव को पैदा करने वाले मनुष्यों में से हो। इस पर राम ने अपने असली विचारों को छिपाते हुए कहा कि मैं केवल तुम्हारे मन की स्थिति का परीक्षण कर रहा था। तब वह उसे अपने साथ वनवास ले गया।

जब कभी राम वनवास में अनुभव करता कि भविष्य में कोई घटना होने वाली है - तब वह कैकेई पर बुरी तरह से दोषारोपण करता, कि मेरे दुख से अब कैकेई सुख व प्रसन्नता का अनुभव करती होगी। वह मन ही मन असंतुष्टता-पूर्वक बड़बड़ाया करता था कि मैं यहां वन में चला आया हूं, मेरा पिता वृद्ध हो गया है, अब भरत पूर्ण रूपेण स्वतंत्रतापूर्वक राज्य कर रहा होगा, उसके विरुद्ध कोई कुछ नहीं कर सकता है।

आगे राम ने और क्या किया। शूद्र होकर तपस्या करने के कारण उसने शम्बूक का वध किया। ऐसे अयोग्य, नीच व छली व्यक्ति को ईश्वर का अवतार कैसे माना जाए। धूर्त ब्राह्मणों ने झूठे अशक्त, अयोग्य व चरित्रहीन एक साधारण व्यक्ति को ईश्वर बताकर हम लोगों की उससे प्रेम करने और उसकी पूजा करने को बाध्य किया है। क्या हम लोगों को यह उचित नहीं है, कि हम लोगों को समझ और बुद्धि पर जो मिथ्या बातें बलात लादी गई है हम उसका गंभीरतापूर्वक निरीक्षण करें।

सीता का जन्म

अब हमें सीता की ओर अपना ध्यान आकर्षित करना चाहिए, उसे संपूर्ण रामायण में कुलीन वंश के उचित गुणों -रहित एक साधारण स्त्री माना गया है। उसके माता-पिता पर संदेह है। हमें नहीं पता कि उसके माता-पिता कौन हैं?

ऐसा वर्णन किया गया है कि राजा जनक ने हल चलाते हुए उसे पृथ्वी में पाया था। उसे कलंक से बचाने के लिए साहित्यिक भाषा का प्रयोग करते हुए वर्णन किया गया है कि वह महालक्ष्मी पैदा भी नहीं हुई - बल्कि वह पृथ्वी पर एक स्वयं बालिका के रूप में प्रकट हुई।

उसके माता व पिता के विषय में संदेह होने के कारण पूर्ण यौवनावस्था प्राप्त कर चुकने के पश्चात भी वह कई वर्षों तक कुंवारी बनी रही थी, उसने इस बात को वन में दुख प्रकट करते हुए स्वयं स्वीकार किया था। क्या कहा जाए, महालक्ष्मी

का जन्म भी निराधार तथा हास्यास्पद है, रामायण की संपूर्ण कथा में उसके चरित्र के विषय में कोई प्रशंसनीय बात नहीं है।

सीता की मूर्खता

जब राम ने वनवास जाने का निश्चय किया तब सीता ने कहा कि मेरे विषय में भविष्य वक्ताओं ने पहले ही कहा था कि मुझे वन में रहना होगा। उसने यह भी कहा कि मैं अपने पति के साथ वनवास जाना चाहती हूं। राम और लक्ष्मण वल्कल वस्त्र धारण किए हुए थे - किंतु सीता ने वह भेष पसंद नहीं किया। इस पर दशरथ ने आज्ञा दी कि आवश्यक वस्त्र और आभूषण जितने चौदह वर्ष के लिए पर्याप्त हों सीता के प्रयोग के लिए उसके साथ भेज दिए जाएं। उसने अति प्रसन्नतापूर्वक उन्हें पहना और अपने आप को सुंदरता पूर्वक सुसज्जित किया - किंतु पति का तापस-भेष और उसकी स्त्री का राजवंशीय भेष इस प्रकार से वनवास को चल दिए। चूंकि दशरथ ने केवल राम को वनवास दिया था - सीता को नहीं। इसलिए वन जाते समय वशिष्ठ, सुमंत व अन्य पुरुषों ने सीता को वन जाने से रोका - किंतु इस पर कैकेई सहमत नहीं हुई। अतः उसे अपने पति के साथ जाना पड़ा। इस प्रकार सती तथा आदर्श कहलाने वाली सीता के कार्य-कलाप यहीं पर समाप्त नहीं हो जाते। राम की माता अर्थात सीता की सास ने सीता की आभूषणों व बहू-मूल्य वस्त्रों और रुचि देखकर यह कहते हुए उसने सीता को शिक्षा दी कि अपने पति की प्रेम-पात्र होने योग्य काम करो। मति-हीन न बनो। इस पर सीता ने अपनी सास को तपाक से उत्तर दिया, कि मैं प्रत्येक बात जानती हूं, मुझे तुम से सीखना कुछ भी शेष नहीं है।

सीता के लिए भरत के साथ रहने की इच्छा प्रकट करते हुए राम ने सीता से कहा कि तुम भरत के साथ रहो। इस पर उसने राम को निंदनीय उत्तर दिया, मैं उस भरत के साथ नहीं रहना चाहती - जो मुझसे घृणा करता है।

वनवास में जब कभी उस पर किसी कठिनता या अन्य कष्ट का सामना करना पड़ता तब वह बुरी तरह से कैकेई पर दोषारोपण किया करती थी।

जब राम ने मृग का पीछा किया व मृग अति पीड़ा से चिल्लाया, सीता! लक्ष्मण! तब सीता ने लक्ष्मण से राम के पास जाने तथा उसकी सहायता करने को कहा, इस पर लक्ष्मण ने उसको उत्तर दिया, कि मेरे भाई के ऊपर कोई दुख नहीं आ सकता है, इस पर वह क्रोधित होकर उबल पड़ी और लक्ष्मण पर दोष लगाया कि क्या राम की मृत्यु हो जाने पर तुम मुझे फुसलाना और पथ-भ्रष्ट करना चाहते हो? क्या तुम इसी उद्देश्य से वन में आए हो? मैं तुम्हें जानती हूं और भरत ने मुझे बिगाड़ने का षड्यंत्र रचा है। इस पर लक्ष्मण कांपने लगा और उसने हाथ जोड़कर कहा कि हे माता, मैंने तुम्हारे पैरों के अतिरिक्त तुम्हारा कोई अंग नहीं देखा है। कृपा करके

ऐसी बात न करो। सीता ने इसी कौम को कैसे पूरा किया? उसने पुनः लक्ष्मण से प्रश्न किया, क्या तुम मुझ पर अपनी आंखें गड़ाए रहकर केवल समय व्यतीत करना चाहते हो?

जगत माता तथा देवी के मुख से निकले हुए उपरोक्त शब्दों को सुनिए, एक शक्तिशालिनी स्त्री भी इस प्रकार बातें कर सकती है - तो भी सीता ने ऐसे शब्द कहे और वह शक्ति-शालिनी स्त्री, सर्वव्यापी एवं त्रिकाल दर्शी की अर्द्धांगिनी कही जाती है। वह लोगों को आदर्श जीवन व्यतीत करने हेतु शिक्षा देने के लिए अवतरित समझी जाती है। सीता के जीवन की महत्ता इतनी ही नहीं है जितनी यहां की गई है। किंतु अभी बहुत कुछ और भी है।

रावण द्वारा सीता की सुंदरता की प्रशंसा

सीता रावण को भोजन भी परोसती थी। सीता की तुच्छता पर कुपित होकर उसमें कोई सुशीलता तथा महानता न पाकर लक्ष्मण ने उससे मुख मोड़ लिया था। रावण मानो अपनी पूर्व नियोजित योजनानुसार साधु भेष में शीघ्रतापूर्वक प्रकट हुआ। सीता ने उसका हृदय से सत्कार किया। इस पर रावण सीता की आंखों, दांतों, चेहरे तथा जंघाओं की प्रशंसा करने लगा और उसके स्तन की तुलना नारियल से करने लगा। वह सीता के शरीर की प्रशंसा करता हुआ कहने लगा कि ज्यों-ज्यों मैं तुम्हारे अंगों-प्रत्यंगों को देखता हूं त्यों त्यों अपने आप को संभालने में असमर्थ हो जाता हूं। तुम्हारी सुंदरता मेरे हृदय को खरोंचे डाल रही है। जैसे नदी के किनारों को कोई नाला खरोंच डालता है।

इस प्रकार वह सीता के एक एक अंग की प्रशंसा करता रहा। यदि वास्तव में सीता आदर्श चरित्र वाली सती स्त्री होती तो वह प्रत्येक की ईर्ष्या का कारण बन जाती। उसने क्या किया है? क्या कोई मनुष्य हमारी स्त्रियों से इस प्रकार की बातें कर सकता है? और यदि वह ऐसा करता है - तो क्या वह बच सकता है? किंतु सीता ने क्या किया? रावण द्वारा अपने शरीर की सुंदरता का बखान सुनकर निहाल सीता रावण को खाना परोसती थी।

सीता अपने को युवती बताकर रावण से अवस्था छिपाती थी

खाना परोस चुकने के पश्चात सीता रावण से बातें किया करती थी कि मैं जनक की पुत्री और राम की स्त्री हूं। उसने रावण को अपनी वास्तविक अवस्था से कम अवस्था बताई थी। जब वह वन में आई और रावण से बातें कर रही थी -तब वह तेरह वर्ष की थी, उसने पुनः उसे बताया, कि मेरा विवाह हो जाने के बाद मैं बारह वर्ष अयोध्या में रही, उसने पुनः कहा कि जब मैं वनवास में आई - तब मैं अठारह वर्ष की थी, यह कैसी है अनुकूलता? वह अपने विवाह के पश्चात बारह वर्ष

अयोध्या में रही उसके शब्दों के अनुसार पूर्ण यौवनावस्था को प्राप्त हो चुकने के कई वर्ष बाद तक कुंवारी दशा में वह अपने पिता के घर रही - किंतु रावण के सम्मुख जो कुछ उसने कहा, उसके अनुसार उसका विवाह छठवीं वर्ष में हो गया होगा। क्या सीता केवल छह वर्ष में यौवनावस्था प्राप्त कर सकती थी। छह वर्ष में यौवनावस्था को प्राप्त करने के पश्चात कई वर्षों तक कुंवारी दशा में उसके अपने पिता के घर रहने की बात यदि स्वीकार कर भी ली जाए तो उसने इस प्रकार केवल हां हूं क्यों की? वह केवल अपनी वृद्धावस्था को छिपाना है।

वह साधारण तौर पर पैंतालीस वर्ष की थी - चूंकि चुवती हो जाने के कई वर्ष बाद तक अपने पिता के घर रही। इसलिए विवाह के समय व बीस वर्ष की रही होगी। (बारह वर्ष अयोध्या में, तेरह वर्ष वनवास में, बीस वर्ष अपने पिता के घर में। अतः इस प्रकार पैंतालीस वर्ष हो गए।)

लक्ष्मण ने भी यह बात दृढ़तापूर्व कही थी कि सीता बड़े पेट वाली एक वयोवृद्ध स्त्री है। यह बात उसने कब कही? सूर्पनखा राम से प्रेम करती थी, और उससे विवाह करना चाहती थी। राम ने इस पर कहा कि मेरा विवाह पहले ही हो चुका है। तू कुंवारे लक्ष्मण के पास जा।

अतः यह उसके पास गई किंतु लक्ष्मण ने इस कारण से उससे विवाह करने से इंकार कर दिया कि मैं राम का दास हूं और यह कहते हुए कि राम की स्त्री बड़े पेट वाली वृद्धा है, अतः तू उसी के पास लौट कर जा। वह तुझसे विवाह कर लेगा।

जैसा कुछ हो कथा के अनुसार जब रावण सीता को मिला - तब वह सुंदर, किंतु वृद्धा थी। वृद्धा होते हुए भी जब रावण आनंद लेता हुआ उसके अंगों-प्रत्यंगों की प्रशंसा करने लगा था - तब उसने अपनी अवस्था क्यों छिपाई? पाठक तनिक इस पर विचार करें। क्या एक सती दैवी शक्ति की कथा ऐसी ही है। तत्पश्चात क्या हुआ। रावण ने अपने आपको प्रकट किया। (कपट भेष उतार दिया कि तात्पर्य है पूर्ण परिचय दिया) और सीता से उसके साथ लंका को चलने को कहा। सीता ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। रावण ने क्षण भर में एक हाथ से उसके बाल पकड़े तथा दूसरे हाथ से उसकी जांघों को पकड़कर उठा लिया और अपनी जांघों पर बैठाकर उसे ले गया। वह चिल्लाती है। इस प्रकार कथा चलती है।

मेरा भौतिक शरीर कहीं – किंतु मन तुम्हारे साथ

द्वितीय ध्यान देने योग्य बात यह है कि रावण को दो श्राप दिए गए थे। प्रथम यह कि यदि वह किसी स्त्री को बिना उसकी आज्ञा के छुएगा - तो वह भस्म हो जाएगा। द्वितीय यह है कि उसके हृदय में किसी स्त्री के प्रति कुविचार उत्पन्न होते ही उसके सिर के सहस्रों टुकड़े हो जाएंगे।

तमिलनाडु के कवि कंबा लिखते हैं कि रावण सीता को बिना अपने हाथों से

स्पर्श किए जिस स्थान पर वह खड़ी थी उस स्थान सहित उसे ले गया।

इन श्रापों के प्रमाण स्वरूप द्वितीय श्लोक में कहा गया है कि रावण वास्तविक सीता को नहीं ले गया था - अपितु वह उसकी मायावी प्रतिमा पात्र ले गया था - किंतु वाल्मीकि की मौलिक पुस्तक में स्पष्ट वर्णन है कि रावण सीता को अपनी गोद में दबाए हुए उसके शरीर को पूर्णतया स्पर्श करते हुए ले गया।

यदि इन श्रापों में कोई शक्ति होती - तो सीता को ले जाते हुए रावण का शरीर मिट्टी में मिल जाता - किंतु उसके प्रति कोई घटना न घटी। वह लंका में सुरक्षित पहुंच गया था और वहां पहुंच कर उसने सीता को अपने महल के चारों ओर घुमाया। वहां भी रावण के प्रति कोई दुर्घटना न हुई। तब श्राप का क्या अर्थ है?

कलकत्ता विश्वविद्यालय के सदस्य तथा बंगाली इतिहास के अनुसंधान के प्रतिष्ठित विद्यार्थी राय साहब दिनेशचंद्र सेन, बी.ए. इस पर यह लिखते हैं कि मेरा यह निर्णय है कि इस बात में कोई सत्यता नहीं है कि रावण सीता को बलात हर ले गया। मेरे इस निर्णय पर कट्टर हिंदू धर्मावलंबी व्यक्ति क्रोध से भड़क सकते हैं - किंतु इस पर मैं अपना दृष्टिकोण परिवर्तित नहीं कर सकता। यदि पाठक इस पुराण अर्थात रामायण की साहित्यिक सुंदरता का पर्दा हटा दे - तो उसमें देखने को ढांचा मात्र रह जाएगा।

लंका में सीता सहित बैठे रावण ने उससे कहा, सीते! लज्जा न करो। हमारा तथा तुम्हारा मिलाप दैवी योजनानुसार है। इसका स्वागत संपूर्ण ऋषि और मुनि करेंगे। इस पर सीता ने उत्तर दिया कि तुम मेरे शरीर का यथेच्छ भोग कर सकते हो। मुझे अपने शरीर की चिंता नहीं।

रावण को मारकर सीता सहित लौटते हुए राम ने सीता से पूछा कि तुम रावण के संरक्षण में बहुत दिनों तक रही हो। उसने बिना तुम्हें स्पर्श किए तथा बिना तुम्हारे साथ संभोग किए, तुम्हें कैसे छोड़ा होगा। सीता ने उत्तर दिया, मैं क्या कर सकती थी। मैं एकाकी थी। दूसरे मैं अबला स्त्री हूं। वह शक्तिशाली है मेरी स्वेच्छानुसार कोई काम नहीं हुआ है। मेरे शरीर के सिवाय मेरा मन तुम्हारे साथ था और रहेगा।

उसने कोई यथार्थ बात नहीं बताई। वह बंगलें झांक रही थी और उत्तर दिया, मेरा अपने शरीर पर कोई अधिकार न रह गया था। किंतु मैं अपने मन की पवित्रता के संबंध में तुम्हे विश्वास दिला सकती हूं।

इन सुसज्जित शब्दों के साथ उत्तर दिया। अंत में अयोध्या आ जाने पर राम ने सीता से उसकी पूर्ण पवित्रता की शपथ ग्रहण करने को कहा। उसने ऐसा नहीं किया किंतु वह पृथ्वी में समाकर आलोप हो गयी थी। दूसरे शब्दों में उसने आत्महत्या कर ली थी।

राम के अनुचर निंदनीय हैं

जहां तक सीता के पति राम का संबंध है वह पाखंडी, कपटी, विश्वासघाती, स्त्रीवत-निर्बल, किंबहुना, मेहरा और झूठा था।

उसका भाई लक्ष्मण उपद्रवी व प्रजा-पीड़क था- जिसने अपने पिता को मारने का साहस किया था। वह लुच्चा व लंपट था जो गद्दी प्राप्त करने हेतु कोई भी कार्य करने में न हिचकिचाया।

साठ वर्ष की अवस्था के बाद भी उसका पिता भ्रष्ट था। उसने अपने पुत्रों को समान रूप से प्यार न करते हुए एक को प्यार किया तथा दूसरे से घृणा की।

राम की माता अपने पति के प्रति कोई प्रेम नही करती थी। यही बात सुमित्रा के विषय में थी, जब दशरथ मृत्यु शैया पर लेटा था तब निकट ही कौशल्या और सुमित्रा गंभीर निद्रा-विमग्न थी। उसकी मृत्यु से शोकाकुल रोते हुए व्यक्तियों द्वारा वे जगाई गई। इससे स्पष्ट है कि वे अपने पति के प्रति कितना उदासीन रहती थी।

सुग्रीव व विभीषण जिन्होंने अपने-अपने भाइयों को धोखे से मरवा कर उनका राज्य कपट-छल तथा धोखे से छीन लेने के घृणित उद्देश्य से राम से मित्रता की। विश्वासघाती व आलसी थे।

राम की संपूर्ण मंडली में इस प्रकार के धूर्त, ठग, अधर्मी, विश्वासघाती तथा भातृद्रोही भरे पड़े थे। तो भी वे देवता माने गए हैं। किंतु रामायण की कथा के अनुसार इन कथित दैवीशक्ति के विरोधियों (सुग्रीव आदि सभी) को सत्यवादी और सभ्य कहकर उनकी प्रशंसा की गई।

रावण की महानता

रावण की वीरता की प्रशंसा सर्वव्यापी थी, उसके महल की भव्यता और विशालता की प्रशंसा स्वयं हनुमान ने की है। उसने अपने शयनागार में सुंदर महिलाओं के मध्य शयन करते हुए रावण की उपमा तारागणों के मध्य विचरण करते हुए चंद्रमा से दी है। हनुमान ने कहा है कि ये सभी स्त्रियां रावण की सुंदरता, बुद्धिमता व वीरता से आकर्षित होकर स्वेच्छापूर्वक उसके पास आ गई थी। उनमें से कोई भी स्त्री बलात नहीं लाई गई थी। कहा गया है कि हनुमान स्वयं इस बात में विचार विमग्न हो गया था, कि यदि सीता अपने विवाह के पूर्व ही रावण द्वारा ले जायी जाती - तो यह अति प्रशंसनीय होती।

वाल्मीकि ने रावण के विषय में कई स्थलों पर उसकी प्रशंसा के पुल आसमान में बांध दिए हैं। यथा - रावण एक महान विद्यार्थी था। उसने कई घोर तपस्याएं की थीं। वह वेदों का ज्ञाता अपनी प्रजा तथा संबंधियों का सत्य पालक था। वह एक वीर योद्धा था। वह शक्तिशाली व हृष्ट-पुष्ट, निष्कपट-भक्त, ईश्वर-कृपा पात्र और वरदानी था।

राम की भांति रावण को कहीं तुच्छ नहीं बताया है, जिस प्रकार राम ने सूर्पनखा

के अंग भंग कर उसका रूप बिगाड़ दिया था - उसी प्रकार रावण भी सीता के साथ व्यवहार कर सकता था। किंतु इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप ऐसा करने का कोई भी विचार वह अपने मन में अशोक वन में रखा था। वह बहुत भला और सज्जन पुरुष था। वाल्मीकि ने कहा है, रावण ब्राह्मणों को यज्ञ करने से तथा उन्हें सोम रस पीने से रोकता था।

ऐसा सज्जन, रावण तथा उसके लोगों को इस कारण मात्र से कि वे ब्राह्मणों के शत्रु थे, दुष्ट राक्षस कहा गया है।

वाल्मीकि रामायण

रामायण की कथा कदापि सत्य नहीं है, यही विचार कई धर्म धुरंधरों तथा बुद्धिमानों द्वारा व्यक्त किए गए हैं।

वाल्मीकि ने स्वयं कहा है कि राम न तो ईश्वर था, न उसमें कोई स्वर्गीय शक्ति थी। ऐसी स्थिति में भी हिंदू रामायण तथा उसमें वर्णित आर्य-पात्रों को महत्वपूर्ण समझते हैं।

ऐसा क्यों ताकि ब्राह्मण लोग, ब्राह्मणों के अतिरिक्त दूसरे मनुष्यों से सम्मान पाने का प्रचार कर सकें। कुछ भी हो, हमें रामायण निम्नांकित बातों का पुनर्निरीक्षण करना चाहिए।

1- क्या राम स्वर्गीय शक्ति है तथा क्या वह साधारण मानव मात्र से विशेष है।
2 - क्या राम सत्यवादी है?
3 - क्या वह वीर योद्धा है?
4 - क्या राम एक बुद्धिमान पुरुष है? क्या वह नीच वर्णों से उच्च है?
5 - क्या सीता सच्चरित्र-स्त्री है?
6 - क्या सीता में साधारण स्त्रियों से न्यूनतम साधारण गुण हैं? क्या रावण दुष्ट है?
7 - क्या रावण सीता को हर ले गया?
8 - क्या रावण ने सीता का सतीत्व बिगाड़ा?

भागवत में वर्णित विष्णु के संपूर्ण अवतारों में से जो रावण राक्षस को मारने के उद्देश्य से विष्णु का अवतार हुआ है। वह वैशवती राम है। तुलना कीजिए।

विष्णु के अवतार

1 - मच्छ अवतार, 2 - कच्छप अवतार, 3 - शूकर अवतार, 4 - गंगा अवतार, 5 - वामन अवतार, 6 - परशुराम अवतार, 7 - राम अवतार, 8 - कृष्ण अवतार, 9 - बलराम अवतार।

यह वर्णन किया गया है कि इन सभी नौ अवतारों का अर्थ ब्राह्मणों के हित में

उनके शत्रु द्रविड़ राजाओं (शूद्र, महाशूद्र राजाओं) का संहार करना है। इन नौ अवतारों में से ब्राह्मणों ने राम के अवतार को अपनी रामायण की कल्पित कथा का आधार बनाया है। रामायण की यह कथा नम्बियांदर नंबी तथा दूसरे सैवित संतों पर आधारित पैरिया पुराण के समकक्ष है।

लीला मृदु के समकक्ष यह पैरिया पुराण ईश्वर भक्ति हेतु सैवितों द्वारा रची गई, में पूर्व प्रकाशित वैशवती संतों की कथा है।

किंतु रामायण की कथा सैवितों के स्कंद पुराण से ली गई है - जिसका नाम परिवर्तित कर रामायण रख दिया गया है। स्कंद पुराण में आर्यों द्वारा कहे जाने वाले द्रविड़ राक्षसों (शूद्रों) के प्रति दर्शाई गई घृणा की अपेक्षा रामायण में उन्हें (आर्यों) के अत्याधिक माने जाने का दृष्टिकोण अपनाया गया है।

रामायण की अपेक्षा स्कंध पुराण का निर्माण बहुत समय पूर्व हुआ। इसी कारण से वह केवल एक व्यक्ति द्वारा लिखी गई थी।

चूंकि रामायण बहुत समय पश्चात लिखी गई, वह भी भिन्न समय में भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा। फलस्वरूप कई स्थलों पर भिन्न-भिन्न विचार एक दूसरे लेखक से विभिन्न प्रकट किए गए हैं। रामायण के प्रमुख पात्र राम और सीता के विषय में दिए गए वर्णनानुसार उन्हें चरित्रहीन बताया गया है। छह वर्ष की अवस्था में ब्याह हो जाने तथा पांच वर्ष की अवस्था में किसी स्थान पर छिप कर ताड़का का वध कर डालने से बालक राम की कथा प्रारंभ होती है।

उपरोक्त दो घटनाओं के कारण बालक राम को प्रकाश में लाने का कोई कारण नहीं रहा है। जब राम अठारह वर्ष का था - तब उसके पिता दशरथ ने उसे अयोध्या का राज्य देने के तिलकोत्सव संस्कार मानने का षड्यंत्र को गुप्त रूप से उससे मिलकर रचा था। तथापि लोक भली-भांति जानते थे - कि दशरथ द्वारा कैकेई को दिए गए वरदान या वचन के अनुसार कैकेई तथा उसका पुत्र राजगद्दी का कृत्रिम अधिकारी है।

हमारा यहां पर दशरथ का कपटपूर्ण षड्यंत्र से कोई संबंध नहीं है, क्योंकि दशरथ को न उत्तम व्यक्तित्व-युक्त और न कोई सैद्धांतिक पुरुष कहा गया है। यहां हमारा संबंध उस राम से है जिसको निपदो-चरित्र युक्त कहा गया है तथा जिसके आदर्शों का अनुसरण सर्व साधारण द्वारा सच्चा वीर योद्धा समझकर किया जाना चाहिए - किंतु रामायण वक्ताओं तथा धर्म के प्रमुख ठेकेदारों ब्राह्मणों ने इस समस्या को संतोषजनक ढंग से नहीं सुलझाया है।

श्री सी राजागोपालाचार्य ने अंग्रेजी पुस्तक सम्राट का पुत्र में संतोषजनक ढंग से उपरोक्त त्रुटियों का वर्णन किया है। अतः हम केवल इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि राम केवल एक साधारण मनुष्य हैं तथा मध्य श्रेणी के मनुष्य से भी हीन है।

निम्नलिखित तथ्य प्रकट करते हैं कि राम शूर वीर नहीं अपितु कायर है। उसने

सुशील स्त्रियों को न केवल छेड़ा - बल्कि उन्हें मार डाला है। उसने बिना किसी प्रामाणिक कारण के ताड़ के पेड़ों की ओट में छिप कर बालि को मारा। वह भी जब बालि दूसरे व्यक्ति से लड़ने में संलग्न था। रामायण की संपूर्ण कथा में यह कहीं नहीं प्रकट होता है कि राम कोई विवेकशील मनुष्य था।

दशरथ ने राम को निम्नलिखित लालचपूर्ण परामर्श किया था - कि हे राम! मैंने अपनी मूर्खतावश अपना राज्य कैकेई को देने का वचन दे दिया है। इसी के दुष्परिणामस्वरूप मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध तुम से वनवास जाने को कह रहा हूं- किंतु मैं तो अपने वचनों के अनुसार ऐसा करने को बाध्य हूं - परंतु तुम ऐसा करने को बाध्य नहीं हो। अतः मेरे द्वारा वनवास दिए जाने पर भी तुम यह घोषणा कर दो कि मैंने अपने पिता को गद्दी से उतार दिया है। अब मैं राज्य करूंगा।

दशरथ द्वारा राम को ऐसा परामर्श देने पर तथा यह जानते हुए कि यह उचित नहीं है, राम ने कहा, यदि मैं ऐसा करता हूं तो जब वास्तविकता समझ लेगी तो वह मेरे प्रति विद्रोह कर देगी। अतः उसने अपने पिता से (पुनः स्पष्ट) कहा कि तुम राज्य करते रहो और मेरा राजतिलकोत्सव स्थगित कर दो।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि राम बुद्धिमान नहीं था - बल्कि वह पद-लोलुप था। आगे और सुनिए। जब मारीच कपट भेष धारण कर स्वर्ण-हिरण बनकर राम, लक्ष्मण और सीता के समक्ष दंडक वन से होकर निकला तब उस हिरण के लिए सीता की प्रार्थना पर उसने उसे पकड़ना चाहा। यद्यपि हिरण के पकड़ने के फलस्वरूप भविष्य की दुर्घटना के विषय में लक्ष्मण ने राम को संकेत किया था - तो भी वह उसके पीछे उसे पकड़ने चला गया।

इन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि राम के पास दिमाग नहीं था। हम किस कारण से यहां उपरोक्त बातें करते हैं? इस प्रयोजन से कि हमें देखना है कि क्या रामायण और राम हमारी श्रद्धा तथा सम्मान के पात्र हैं और यह बताने के लिए कि किस प्रकार ब्राह्मण ने ब्राह्मण न कहे जाने वाले संपूर्ण लोगों को धोखा दिया है। ठगा है। बेवकूफ बनाया है तथा अपने तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति के लिए अपनी स्थिति और अज्ञानता का अद्भुत ढंग से वर्णन किया है। वे आज भी इस वैज्ञानिक सभ्य युग में वही खेल (रामलीला) तथा नाटक खेल रहे हैं। हम चाहते हैं कि लोग इन त्रुटियों के संबंध में रामायण वक्ताओं से प्रश्न करें।

आओ। अब हम लोग सीता की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करें। सीता का जन्म ही अनिश्चित तथा संदेह-युक्त है। अर्थात् उसके माता-पिता का ही पता नहीं है। वह जंगल में पड़ी पाई गई थी। इस संबंध में कई श्लोक हैं। वाल्मीकी ने वर्णन किया है कि सीता ने स्वयं कहा था कि ज्यों ही मैं पैदा हुई - मुझे वन में फेंक दिया गया था। राजा जनक ने मुझे पा लिया और मेरा पालन-पोषण किया। तरूणावस्था प्राप्त कर चुकने के पश्चात मेरे साथ लगे हुए उपरोक्त कलंक के कारण किसी भी

राजकुमार ने मेरे साथ विवाह करने की इच्छा न की। ढूंढने पर सीता के लिए कोई योग्य वर न मिल सकने के कारण राजा जनक अपने मित्र विश्वमित्र के पास इस संबंध में गया। विश्वमित्र ने इस पांच वर्ष के राम का विवाह इस पच्चीस वर्ष की सीता के साथ करा दिया और सीता ने इस छोटे तथा अयोग्य वर (पति) पर कोई आपत्ति नहीं की।

वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त दूसरी रामायण में कहा गया है कि राम तथा सीता का विवाह संस्कार हो जाने के पूर्व जनक की स्त्री स्वंयवर स्थल पर आई और वहां एकत्रित जनसमूह के सामने चिल्लाकर घोषणा की कि सज्जनों, आप लोग यहां उपस्थित रहते हुए भी किस प्रकार यह हेय तथा घृणित उत्सव (स्वयंवर) देख रहे हो।

जैसे ही सीता सहित सब बराती अयोध्या लौटकर गए। भरत ने सीता से घृणा की। वाल्मीकि ने कहा है कि सीता ने स्वयं इस बात को कहा था।

वनवास जाने के पहले जब राम ने सीता को अयोध्या में ही रहने तथा जिस प्रकार भरत सीता से प्रसन्न रहे - वैसा भरत के प्रति व्यवहार करने का सीता को परामर्श दिया, तब उसने राम को असभ्यता तथा घमंड पूर्वक उत्तर दिया। मुझे क्या करना चाहिए, भरत मुझ से घृणा करता है। मैं उसके साथ कैसे रह सकती हूं। सीता के इन शब्दों का वर्णन उसके ही शब्दों में वाल्मीकी करते हैं, हे राम ! तुम वीर योद्धा नहीं। कायर तथा अशक्त हो। तुम मुझसे भरत द्वारा व्यभिचार कराना चाहते हो। मानों मैं वैश्या हूं। ताकि तुम अयोध्या का राजा बनने का लाभ उठा सको। उस समय राम सत्तरह वर्ष का था।

वाल्मीकि द्वारा श्लोकों के रूप में कौशल्या के मुख से निम्न तथ्य वर्णन किया गया है। जब राम वन जाने के लिए अपनी माता कौशल्या से आज्ञा लेने गए - तब वह कहती है हे राम! मैं तेरे पिता अर्थात् अपने पति और अपनी सौत कैकेई द्वारा अपमानित की गई हूं। मैंने इस सत्तरह वर्षों में बहुत कष्ट सहा है - किंतु मैं तुम्हारे लिए मरने को तैयार हूं। इससे हम निर्णय निकालते हैं कि उस समय राम सत्तरह वर्ष का था।

जब विश्वामित्र ने दशरथ से प्रार्थना की राम को ताड़का का वध करने के लिए मेरे साथ भेज दीजिए। तब दशरथ ने उसे निम्न उत्तर दिया। हे ऋषि, मेरी गोद में खेलता हुआ राम अभी शिशु है। अभी उसका मुंडन-संस्कार भी नहीं हुआ। मैं छोटे शिशु को युद्ध आदि कार्यों के लिए कैसे भेज सकता हूं। इससे स्पष्ट है कि विवाह के समय राम केवल पांच वर्ष का था।

इससे स्पष्ट है कि पूर्ण यौवनावस्था प्राप्त सीता तथा राम जैसे शिशु के साथ विवाह करने के लिए सहमत हो गई। यही कारण है कि सीता, राम के साथ असभ्यतापूर्वक व्यवहार करती थी।

और भी वनवास जाने के पहले जब राम ने सीता से बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण त्यागने व तपस्वी के समान वल्कल चीर धारण करने को कहा तब उसने अस्वीकार कर दिया। तब उसकी सास कैकेई ने राम को तापस भेष में देखकर, अपनी बहू सीता से कहा, पहले से पहिने हुए बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषणों के ऊपर तापसोचित वस्त्र पहन लो।

जब राम ने शिकार करने के लिए कपटी हिरन का पीछा किया और उसे मार डाला, तब हिरण हे लक्ष्मण, हे लक्ष्मण चिल्लाया। तब सीता ने लक्ष्मण को संबोधित करते हुए कहा कि मुझे ऐसा लगता है कि राम के प्रति कोई दुर्घटना हो गई है, शीघ्र जाओ और देखो क्या बात है। इस पर लक्ष्मण ने उसे उत्तर दिया, हे माता! यह उसी कपटी हिरन का शब्द है, चिंता न करो, किसमें शक्ति है, जो राम का कुछ भी अहित कर सके, वह बहुत शक्तिशाली हैं, मेरे भाई ने उस हिरन को मार डाला होगा और वही हिरन इस प्रकार चिल्ला रहा है। लक्ष्मण ने अपनी यथा शक्ति तथा योग्यतानुसार उत्तर दिया और सीता को समझाया - किंतु वह उसके समझाने पर संतुष्ट न हुई और सीता ने कहा, अरे पापी, क्या तू समझता है कि राम की मृत्यु के पश्चात तू मेरे साथ संभोग का आनंद ले सकता है? क्या भरत ने इसी उद्देश्य से तुझे मेरे साथ वन में भेजा है? कि भरत और तू स्वयं मुझे अपनी स्त्री बनाएगा? यह सुनकर लक्ष्मण शीघ्र ही राम की सहायता करने चला गया।

सीता

जब हम लोग सीता के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं - उस समय हमारा उद्देश्य सीता का अपमान करना नहीं है। पाठक इस पर ध्यान दें। यह बात गंभीरतापूर्वक कही जाती है।

हम विशेषतया रामायण में वर्णित सीता की स्थिति पर विश्वास नहीं करते हैं कि कथित सीता कल्पित सीता है। यह कल्पना मूर्खतापूर्ण वर्णन पर आधारित है। ध्यान दीजिए कि रामायण लेखक को यह लिखने से तनिक भी कष्ट का अनुभव नहीं हुआ कि सीता, सती वीरांगना, बुद्धिमती तथा अपने सतीत्व की रक्षा करने वाली थी। दूसरी ओर यह भी वर्णन पाया जाता है कि सीता एक चरित्रहीन स्त्री थी। इससे भिन्न रामायण न केवल कल्पित कथा है - बल्कि उसका आधार ही काल्पनिक तथा असंभव पृष्ठभूमि है।

रामायण में सीता का वर्णन साधारण स्त्री की भांति किया गया है। रामायण के अनुसार सीता के जन्म से लेकर, जनक द्वारा उसके पृथ्वी में पाए जाने, पृथ्वी में समा जाने तथा आत्महत्या कर लेने तक हम उसमें केवल साधारण स्त्री मात्र की ही विशेषताएं पाते हैं। हम उसमें कोई स्वर्गीय व उच्च मानवीय गुणों को नहीं पाते हैं। अतः रामायण की सीता एक साधारण स्त्री है।

यह सुनकर कि उसने अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिए अग्निकुंड में प्रवेश किया। कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है - क्योंकि हम आज के युग के मंदिरों में मनाए जाने वाले त्योहारों के अवसर पर साधारण मनुष्यों को भी आग पर चलते हुए देखते हैं। न केवल वेश्याएं बल्कि लुच्चे व दुष्ट प्रकृति वाले आज भी आग में चलते हुए देखे जाते हैं।

हम यदि वाल्मीकि रामायण का सतर्कता-पूर्वक अध्ययन करें तो हम उस समय सीता को तीन मास की गर्भवती पाते हैं। अब हम इसकी व्याख्या करेंगे, कि वह तीन मास की गर्भवती कैसे थी? जैसे ही सीता की अग्नि-परीक्षा का कार्य समाप्त हो गया, राम सीता को अयोध्या ले गया। एक मास तक अयोध्या का राज्य कर चुकने के पश्चात एक दिन राम और सीता दोनों प्रेमी-प्रेमिका की भांति एक पुष्प वाटिका में बैठे हुए आनंद से समय व्यतीत कर रहे थे - कि अचानक राम की दृष्टि सीता के पेट पर, जो कि बड़ा और उभरा हुआ था, पड़ी। राम ने तुरंत सीता से पूछा कि, तुम्हारा पेट इतना बड़ा क्यों हैं? इस पर सीता ने उसे उत्तर दिया, यह चार या पांच मास का गर्भ है। यह सुनकर राम चिंता और दुख से शीघ्र वहां से चला आया और उसे जंगल में छोड़ देने पर विचार करने लगा। वहां से उठकर वह अपने महल के सामने के आंगन में बैठा हुआ पाया गया। तब महल के उजड्डु तथा मूर्ख लोगों ने प्रहसन पूर्ण वार्तालाप करते हुए उसकी मनोदशा को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया तो भी राम उसी स्थिति में बना रहा। इस बात को उसके भाइयों ने भी देखा - तो वे उसके उदास होने के कारण का पता लगाने लगे। इस राम ने अपने भाइयों से कहा कि तुम लोग सीता के विषय में क्या दृष्टिकोण रखते हो। उन्होंने उत्तर दिया कि लोग यह कह रहे हैं कि राम का सीता के साथ रहना अपमानजनक है। ऐसा सुनकर राम ने तुरंत अपने भाई लक्ष्मण को बुलाया और उससे कहा कि वह सीता को दूसरे दिन प्रातःकाल जंगल में किसी अज्ञात स्थान में छोड़ आए। राम के कथनानुसार लक्ष्मण ने ऐसा ही किया अर्थात् सीता अकेले जंगल में छोड़ दी गई। लक्ष्मण ने लोकापवाद के भय से राम द्वारा सीता को जंगल में छोड़ देने की आलोचना की। किंतु सीता ने उत्तर दिया कि आलोचना करना उचित नहीं है - क्योंकि वह गर्भ पांच मास का है, वह मेरे कर्म का दोष है। सीता ने लक्ष्मण को पेट भी दिखाया।

अतः हम इस बात पर विश्वास नहीं कर सकते कि सभी स्त्रियां जो कि आग पर चलने की बात करती हैं, सत्यवती व पतिव्रता है या उसमें कोई स्वर्गीय शक्ति है। अतः सीता एक साधारण स्त्री मात्र हैं।

अतएव सीता सदृश्य एक साधारण स्त्री अधिकतम सौ वर्ष या इससे अधिक दस बीस वर्ष और जीवित रह सकती है - यदि वह हष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ्य है। किंतु रामायण में ढूंढने से पता चलता है कि सीता सहस्रों वर्ष जीवित रही। तत्पश्चात राम की कथा के विषय में विचार करें। रामायण के अध्ययन करने से पता चलता है कि

राम सहस्र वर्ष जीवित रहा। किंतु हम लोग समझ या कह नहीं सकते कि यह सीता, राम के साथ इतने दीर्घ काल तक कैसे जीवित रही। इतने दीर्घ काल तक जीवित बने रहने का वरदान उसको किसके द्वारा दिया गया? वह इतने समय तक जीवित रहने योग्य कैसे हो गई? हम रामायण में इन प्रश्नों का उचित उत्तर न पा सके।

इन बातों को छोड़कर अब हम रामायण के अंश पर विचार करेंगे - जहां पर सीता व रावण का संबंध है। वहां हम सीता में एक सती स्त्री की भांति शुद्ध रूप में कोई विशेषताएं नहीं पाते हैं।

यदि हम रावण के प्रति निर्दिष्ट इस अभियोग का मामला, कि उसने सीता का सतीत्व भ्रष्ट किया, वह उसे छल से ले गया, खुफिया विभाग के किसी अधिकारी को अनुसंधान के लिए सौंप दें तथा खुफिया विभाग के किसी निष्पक्ष न्यायाधीश के समक्ष निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाए और यदि राम को अभियोगी तथा रावण को अभियुक्त समझकर राम की सुविधानुसार ही मामले का निर्णय दिया जाए - तो हमें पूर्ण विश्वास है कि न्यायाधीश रावण के पक्ष में ही अपना निर्णय देगा कि रावण निर्दोष तथा निष्कलंक है - उसे डरा व धमका कर निरपराध ही फांस दिया।

और भी यदि कोई शिकारी किसी शेर को प्रलोभन देकर उसे फांसने के उद्देश्य से एक मोटे-ताजे हिरन को किसी पिंजड़े में बंद कर के पिंजड़े को जंगल में रख दे। वह यदि कोई शेर पिंजड़े के अंदर घुस आए और पिंजड़ा बंद हो जाए तो यही कहा जाएगा कि शेर स्वेच्छापूर्वक पिंजड़े में घुसा। खुफिया विभाग की उपरोक्त यही रिपोर्ट होगी।

अनुवादक

दयाराम जैन : लखनऊ के दयाराम जैन 'मानसी' पत्रिका के संपादक तथा 'वर्धमान साहित्य मंदिर, वर्धमान प्रेस, प्रगति प्रकाशन केंद्र अदि अनेक संस्थाओं के संपादक रहे। उन्होंने चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु की 'बहुजन कल्याण माला' के अंतर्गत 1970 में हिंदी में पहली बार 'पेरियार रामास्वामी नायकर' शीर्षक से संग्रहित पेरियार के जीवन परिचय, लेखों व भाषणों का अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद किया। उनके कुछ अनुवाद वहीं से प्रस्तुत किताब के खंड तीन में संकलित किए गए हैं।

टी. मार्क्स : टी. मार्क्स पांडिचेरी विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं। उन्होंने प्रथम तमिल दलित उपन्यास 'पीरागु' (लेखक : पोमाली) तथा पेरियार के भाषणों-लेखों व अनेक महत्वपूर्ण तमिल पुस्तकों का अंग्रेजी अनुवाद किया है। उनके द्वारा पेरियार के लेखों व भाषणों का किया गया अनुवाद 'ऑन कास्ट एंड रिलीजन, थंथई पेरियार' शीर्षक से अंग्रेजी में प्रकाशित है। प्रस्तुत किताब में खंड दो - 'पेरियार : जाति और धर्म पर' में संकलित लेख व भाषण उपरोक्त किताब से ही लिए गए हैं। इस खंड का अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद पत्रकार पूजा सिंह ने किया है।

पूजा सिंह (जन्म : 1 जुलाई 1983) : समतामूलक समाज के स्वप्न के साथ 10 वर्षों से पत्रकारिता में सक्रिय पूजा सिंह नेटवर्क 18, तहलका से जुड़ी रही हैं। आदिवासी, स्त्री और वंचित वर्ग के मुद्दों पर विशेष रिपोर्टिंग की है। संप्रति शुक्रवार पाक्षिक में मध्यप्रदेश प्रतिनिधि के रूप में कार्यरत।

संजय जोठे (जन्म : 20 सितंबर 1978) : फोर्ड फाउंडेशन इंटरनेशनल फेलो और लीड इंडिया फेलो संजय जोठे समाज कार्य में देवी अहिल्या विश्वविद्यालय से एम.ए. के बाद ब्रिटेन की ससेक्स यूनिवर्सिटी से अंतरराष्ट्रीय विकास में एम.ए. हैं। वर्तमान में टीआईएसएस, मुम्बई से पीएचडी कर रहे हैं। सामाजिक विकास के मुद्दों पर पिछले 14 वर्षों से विभिन्न संस्थाओं के साथ कार्यरत हैं। इनकी एक किताब 'जोतिबा फुले : जीवन और विचार' प्रकाशित हो चुकी है और एक अन्य किताब प्रकाशनाधीन है। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं और ब्लॉग्स में बहुजन समाज और दलित विमर्श के मुद्दों पर शोध आधारित लेखन करते हैं। उन्होंने इस पुस्तक के खंड एक में संकलित ब्रजरंजन मणि के अंग्रेजी लेख का हिंदी अनुवाद किया है।

लेखक

ब्रजरंजन मणि : ब्रजरंजन मणि की ताज़ा पुस्तक है 'नॉलेज एंड पॉवर : ए डिस्कोर्स फॉर ट्रांसफार्मेशन' (2014)। उनकी सबसे प्रसिद्ध रचना 'डीब्राह्मनाईजिंग हिस्ट्री' (2005) कई बार मुद्रित हो चुकी है और अब उसका पूर्णतः संशोधित संस्करण (2015) उपलब्ध है। वे इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस स्टडी, शिमला के पूर्व फेलो रहे हैं, वहां उनके शोध प्रबंध का शीर्षक था 'डॉ. आंबेडकर्स प्रेडेसेसर्स ऑन द पाथ टूवड्र्स नवायन'। वैकल्पिक इतिहास, सामाजिक आंदोलन और ज्ञान के निर्माण और उसके प्रसार पर शोध में उन्हें विशेषज्ञता हासिल है। वे दिल्ली में रहते हैं और मानवाधिकार व शिक्षा के प्रजातांत्रिकरण के लिए काम कर रहे कई संगठनों और समूहों के सक्रिय सदस्य हैं।

ललिता धारा मुंबई के डॉ आंबेडकर कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकोनॉमिक्स के सांख्यिकी विभाग की अध्यक्ष रही हैं। उन्होंने कई शोधपूर्ण पुस्तकों का लेखन किया है, जिनमें 'फुलेज एंड विमेंस क्वेश्चन', 'भारत रत्न डॉ बाबासाहेब आंबेडकर एंड विमेंस क्वेश्चन', 'छत्रपति शाहू एंड विमेंस क्वेश्चन', 'पेरियार एंड विमेंस क्वेश्चन' व 'लोहिया एंड वीमेनस क्वेश्चन' शामिल हैं। इसके अतिरिक्त सावित्रीबाई फुले के पहले काव्य संग्रह का उनका अनुवाद भी 'काव्य फुले' शीर्षक से प्रकाशित है।

टी. थमराईकन्नन : पेरियादवादी सामाजिक कार्यकर्ता टी. थमराईकन्नन 'कात्तारु : वैज्ञानिक संस्कृति का तमिल प्रकाशन' की संपादकीय-व्यवस्थापकीय टीम के संयोजक हैं। उनकी संस्था 'कात्तारु' नाम से एक तमिल मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी करता है।

सत्य सागर को प्रिंट और ब्रॉडकास्ट पत्रकार व स्वास्थ्य संप्रेषक के रूप में विश्व के विभिन्न देशों, मुख्यतः दक्षिण व दक्षिण-पूर्व एशिया, में 30 वर्ष से अधिक से काम करने का अनुभव है। उन्होंने अपने पत्रकारीय जीवन की शुरुआत द इंडियन एक्सप्रेस व इकनोमिक टाइम्स से की थी। वे सन 1992 से लेकर 2004 तक थाईलैंड में रहे, जहाँ उन्होंने नई दिल्ली टेलीविज़न (द वर्ल्ड दिस वीक कार्यक्रम) के विशेष संवाददाता व एशिया टाइम्स के बैंकाक ब्यूरो चीफ, इंटर प्रेस सर्विस के थाईलैंड संवाददाता व यूनाइटेड नेशनस इकोनोमिक एंड सोशल कमीशन फॉर एशिया एंड द पेसिफिक के कम्युनिकेशन्स व सोशल डेवलपमेंट ऑफिसर बतौर काम किया।

सुरेश पंडित : हिंदी के आलोचक और साहित्य-संस्कृति के विद्वान दिवंगत सुरेश पंडित ने विविध विषयों पर विपुल लेखन किया है। अलवर (राजस्थान) निवासी श्री पंडित की गहन रुचि दलित-ओबीसी मुद्दों में भी थी। वर्ष 2014 में 84 वर्ष की अवस्था में उनका निधन हो गया।